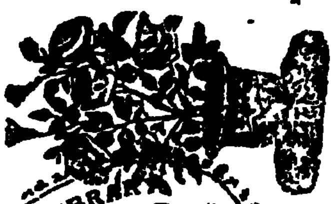
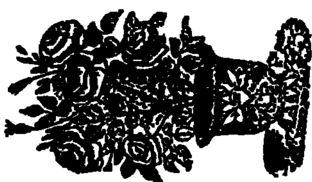






श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायण, नरोत्तम नर अथवा नरोंमें उत्तम नर नारायणको और देवी सरस्वती तथा व्यासदेवजीको प्रणाम करके जय शब्द ( पुराण आदिक ) उच्चारण करै ॥ १ ॥ सूतजी बोले—पूर्वकथा सुननेके अनन्तर अंबरीषराजा, परमेष्ठी ब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदमुनिसे पुण्यदायक वैशाखमासका माहात्म्य पूछते भये ॥ १ ॥ राजाअंबरीष बोले—हे ब्रह्मन् ! सब महीनोंका माहात्म्य आपने वर्णन किया, सो जिसप्रकार आपने कहा, उसीप्रकार हमने पहले सुना ॥ २ ॥ उनमें " वैशाखमास सबसे उत्तम है " ऐसा निश्चय है, इसकारण वैशाखमासका माहात्म्य विस्तारपूर्वक ॥ ३ ॥ सुननेकी हमको बडी अभिलाषा है. यह महीना विष्णुभगवान्को क्यों प्यारा है ? इस महीनामे कौन कौन

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ भूयोऽप्यंगभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत ॥ १ ॥ ॥ अंबरीष उवाच ॥ ॥ सर्वेषामपि मासानां त्वत्तो माहात्म्यमंजसा ॥ श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन् यदा चोक्तं तदा त्वया ॥ २ ॥ वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ॥ इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ॥ ३ ॥ श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन् कथं विष्णुप्रियो ह्यसौ ? ॥ के च विष्णुप्रिया धर्मा मासे माधववल्लभे ॥ ४ ॥ तत्राप्यस्य तु कर्तव्या के धर्मा विष्णुवल्लभाः ॥ किं दानं किं फलं तस्य किमुद्दिश्याचरेदिमान् ॥ ५ ॥ कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे ॥ एतन्नारद विस्तार्य मह्यं श्रद्धावते वद ॥ ६ ॥

धर्म विष्णुभगवान्को प्यारे हैं ? ॥ ४ ॥ तहाँ कौन कौन धर्म करनेके योग्य हैं जो विष्णुको प्यारे हैं और कौनसा दान करनेके योग्य है ? क्या इसका फल है, तथा इस वैशाखमासमें किसप्रकार अथवा कौनसी रीतिसे उपासना करनी उचित है ? ॥ ५ ॥ कौन वस्तुवोंसे माधव ( विष्णुभगवान् ) की पूजा वैशाखमासमें करै अर्थात् वैशाखमें भगवान्के पूजाकी सामग्री क्या है ? हे नारदजी ! यह सब विस्तारकरके मुझ श्रद्धावान्के आगे वर्णन करौ ॥ ६ ॥

यह प्रश्न सुनकर श्रीनारदजी कहने लगे कि— पहले ब्रह्माजीसे हमने मासधर्मसम्बन्धी यही प्रश्न किया; तब पुरातनसमयमें भगवान्ने लक्ष्मीजीसे जो कहा, वही ब्रह्माजीने हमारे आगे वर्णन किया, सो सुनो ॥ ७ ॥ बारह महीनोंमें कार्तिक, माघ और वैशाख ये तीन मास उत्तम हैं. इन तीनोंमेंभी वैशाखमास परम उत्तम कहा है ॥ ८ ॥ माताके समान सब जीवोंको सदैव इच्छानुसार फल देनेवाला है. इस मास ( वैशाख ) में दान, यज्ञ, व्रत और स्नान करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है ॥ ९ ॥ यह मास धर्म और

श्रीनारद उवाच ॥ ॥ मया पृष्टः पुरा ब्रह्मा मासधर्मान्पुरातनान् ॥ व्याजहार पुरा प्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना ॥७॥ ततो मासा विशिष्टोक्ताः कार्तिको माघ एव च ॥ माधवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तमं व्यधात् ॥ ८ ॥ मातेव सर्व जीवानां सदैवेष्टप्रदायकः ॥ दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ॥ ९ ॥ धर्मयज्ञक्रियासारस्तपःसारः सुरार्चितः ॥ विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा ॥ १० ॥ भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् ॥ शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ॥ ११ ॥ देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ प्राणवत् प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां यथा ॥ १२ ॥ आपगानां यथा गंगा तेजसां तु रविर्यथा ॥ आयुधानां यथा चक्रं धातूनां कांचनं यथा ॥ १३ ॥

यज्ञक्रियाका साररूप है, तथा तपका सार है; एवं देवताओंकरके अर्चित है. सब विद्याओंमें वेदविद्यारूप है. मंत्रोंमें जैसे प्रणव ( ओंकार ) श्रेष्ठ ॥ १० ॥ वृक्षोंमें कल्पवृक्ष श्रेष्ठ, गौवोंमें कामधेनु श्रेष्ठ, नागोंमें शेषनाग श्रेष्ठ वैसे सब मासोंमें यह वैशाखमास श्रेष्ठ है. जैसे पक्षियोंमें गरुड ॥ ११ ॥ देवताओंमें जैसे विष्णु, वर्णोंमें जैसे ब्राह्मण, प्रिय वस्तुवोंमें जैसे प्राण, सुहृद्वर्गमें जिसप्रकार स्त्री ॥ १२ ॥ नदियोंमें जैसे गंगा, तेजवान् पदार्थोंमें जिसप्रकार सूर्य, आयुधों (हथियारों) में जैसे सुदर्शनचक्र, धातुवोंमें जैसे सुवर्ण ॥१३॥

वैष्णवोंमें जैसे रुद्रभगवान् ( सदाशिवजी ) और रत्नोंमें जैसे कौस्तुभमणि ऐसेही सब महीनोंमें धर्मके हेतु वैशाखमास उत्तम है ॥ १४ ॥ इसके समान जगत्में विष्णुभगवान्का प्रीतिपात्र अन्य कोई महीना नहीं है. वैशाखमास ' मेषके सूर्य ' में जो मनुष्य सूर्यके उदयसे पहले नियमपूर्वक स्नान् करता है ॥ १५ ॥ उस मनुष्यपर लक्ष्मीसहित भगवान् अर्थात् लक्ष्मीनारायण प्रसन्न होते हैं. जिसप्रकार अन्नसे प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १६ ॥ उसीप्रकार वैशाखस्नानसे विष्णुभगवान् निस्सन्देह प्रसन्न होते हैं और वैशाखस्नानमें

वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥ मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ॥ १४ ॥ नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥ वैशाखस्नाननिरतो मेषो प्रागर्यमोदयात् ॥ १५ ॥ लक्ष्मीसहायो भगवान् प्रीतिं तस्मिन् करोत्यलम् ॥ जंतूनां प्रीणनं यद्वदन्नेनैव हि जायते ॥ १६ ॥ तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः ॥ वैशाखस्नाननिरताञ्जनान्दृष्ट्वाऽनुमोदते ॥ १७ ॥ तावताऽपि विमुक्तोपैर्विष्णुलोके महीयते ॥ सकृत्स्नात्वा मेषसंस्थे सूर्ये प्रातः कृताह्निकः ॥ १८ ॥ महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ॥ १९ ॥ सोऽश्वमेधयुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ अथवा कूटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम् ॥ २० ॥ सोऽपि क्रतुशतं पुण्यं लभेदेव न संशयः ॥ यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ ॥ २१ ॥

तत्पर मनुष्यको देखकर अनुमोदन करते हैं ॥ १७ ॥ तथा वह प्राणी सब पापोंसे छुटकर विष्णुलोकमें जाता है. मेषके सूर्यमें प्रातःसमय नियमसे स्नान कर जो नित्यकर्म करता है ॥ १८ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्की सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होता है. वैशाखमासमें स्नान करनेके अर्थ जो एक पग चलता है ॥ १९ ॥ वह दशहजार अश्वमेधयज्ञ करनेका फल निस्सन्देह पाता है अथवा सावधानमनसे जो कोई संकल्पमात्र करता है ॥ २० ॥ वहभी सौ यज्ञ कियेका पुण्यफल निश्चयकरके पाता है, तथा जो

मेषके सूर्यमें स्नाननिमित्त एक धनुषकी मर्यादातक जाता है ॥ २१ ॥ वह सब बन्धनसे छूटकर विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त होता है. तीनों लोकोंमें ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितने
तीर्थ हैं ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! वे सब तीर्थ बाहर थोडेही जलमें आजाते हैं. तबतक लिखित पाप यमराजकी आज्ञामें रहकर गर्जते हैं ॥ २३ ॥ जबतक प्राणी वैशाखमें जलविषे
स्नान नहीं करता है. हे राजन् ! तीर्थोंके सब अधिष्ठाता देवता वैशाखमासमें ॥ २४ ॥ बाहर जलके आश्रय सदा समीपही सूर्योदयसे छे घडी दिन चढे पर्यन्त ॥ २५ ॥

सर्वबंधविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडांतर्गतानि च ॥ २२ ॥ तानि सर्वाणि राजेन्द्र सन्ति
बाह्येऽल्पके जले ॥ तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ॥ २३ ॥ यावन्न कुरुते जंतुर्वैशाखे स्नानमंभसि ॥ तीर्थाधिदेवताः सर्वा वै-
शाखे मासि भूमिप ! ॥ २४ ॥ बहिर्जलं समाश्रित्य सदासीन्निहिता नृप ॥ सूर्योदयं समारभ्य यावत् षड् घटिकावधि ॥ २५ ॥ तिष्ठंति
चाज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ॥ तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ २६ ॥ स्वस्थानं यांति राजेन्द्र ! तस्मात्स्नानं समा-
चरेत् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ॥
न माधवसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥ न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गंगया समम् ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥

विष्णुकी आज्ञासे मनुष्योंके हितके अर्थ जाकर ठहरे रहते हैं, उस समयतक जो पुरुष स्नान करनेको नहीं आते हैं, उनको दारुण शाप देकर ॥ २६ ॥ अपने स्थानको चलेजाते
हैं. इसकारण, हे राजेन्द्र ! छे घडी दिन चढेतक अवश्य स्नान करलेवे ॥ २७ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गतवैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥श्री॥
नारदजी राजा अम्बरीषसे बोले—वैशाखमासके तुल्य कोई महीना नहीं है. सतयुगके समान युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है, गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है ॥ १ ॥

जलके समान दूसरा दान नहीं है, स्त्रीके समान कोई सुख नहीं है, खेतीके समान धन नहीं है और जीवनके समान दूसरा लाभ नहीं है ॥ २ ॥ उपवासके तुल्य तप नहीं है, दानसे अधिक कोई सुख नहीं है, दयाके तुल्य दूसरा धर्म नहीं है, नेत्रोंके समान कोई ज्योति नहीं है ॥ ३ ॥ भोजनके तुल्य कोई तृप्ति नहीं है, खेतीके समान दूसरा व्यापार नहीं है, धर्मके समान कोई मित्र नहीं है, सत्यके समान कोई यश नहीं है ॥ ४ ॥ आरोग्यताके समान कोई हर्ष नही है, केशवभगवान्‌से बढकर कोई रक्षक नहीं है,

न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीविता त्परः ॥ २ ॥ न तपोऽनशनात्तुल्यं न दानात्परमं सुखम् ॥ न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥ ३ ॥ न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥ ४ ॥ नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः ॥ न माधवसमं लोके पवित्रं कवयो विदुः ॥ ५ ॥ माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियः सदा ॥ अव्रतेन क्षपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम् ॥ ६ ॥ तिर्यग्योनिं स यात्याशु सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ अव्रतेन गतो येषां माधवो मर्त्यधर्मिणाम् ॥ ७ ॥ इष्टापूर्ते वृथा तेषां धर्मो धर्मभृतां वरः ॥ प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणां माधवे नियमे कृते ॥ ८ ॥ अवश्यं विष्णु-सायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ संतीह बहुदानानि व्रतानि विविधानि च ॥ ९ ॥

माधवके समान लोकमें कोई पवित्र नहीं है ऐसा कविजन कहते हैं ॥ ५ ॥ वैशाखमास परमोत्तम है; शेषशायी भगवान्‌को सदा प्यारा है. जो इस माधवप्रिय मासको विनाव्रत किये व्यतीत कर देते हैं ॥ ६ ॥ वे शीघ्रही पशुयोनिमें जन्म पाते है और सर्व धर्मसे न्यारे हो जाते हैं. जिन मनुष्यधर्मवालोंका वैशाखमास विना व्रतके व्यतीत हो जाता है ॥ ७ ॥ उनका कुवाँ-बावली बनवाना, बागीचा लगवाना आदि जितने धर्म हैं सब वृथा हैं. जे वैशाखमासमें नियमपूर्वक भोजनादि करते हैं ॥ ८ ॥ उनको निःसन्देह विष्णु भगवान्‌की सायुज्यमुक्ति

प्राप्त होती है. इस संसारमें अनेक प्रकारके दानादि और अनेक प्रकारके व्रत हैं ॥ ९ ॥ उनके करनेसे देहको परिश्रम होता है और फिर जन्म लेना पडता है. परंतु वैशाखमासमें केवल स्नान करनेसेभी फिर पृथ्वीपर जन्म नही होता है ॥ १० ॥ सब प्रकारके दान करनेसे जो पुण्य होता है और सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह सब फल वैशाखमासमें जलदान करनेसे प्राप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ जो जलदान करनेकी सामर्थ्य न हो तो दूसरेको प्रेरणा करके जलदान करावै. ऐश्वर्यकी कामनावाले पुरुषोंके निमित्त यह कर्मभी सब दानोसे अधिक है ॥ १२ ॥ तुला ( तराजू ) पर एक ओर सब प्रकारके दान और एक ओर जलदान धरकर तोलनेसे जलदानका पलडा भारी

देहायासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च ॥ वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥ १० ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत् फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥ ११ ॥ जलदानासमर्थेन परस्यापि प्रबोधनम् ॥ कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हि तत् ॥ १२ ॥ एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः ॥ तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते ॥ १३ ॥ मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानं करोति हि ॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४ ॥ देवानां च पितॄणां च ऋषिणां राजसत्तम ! ॥ अत्यंतप्रीतिदं सत्यं प्रपादानं न संशयः ॥ १५ ॥ प्रपादानेन संतुष्टो येनाध्वश्रमकर्षिताः ॥ तोषितास्तेन देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १६ ॥ सलिलं सलिलाकांक्षी छायां छायामपीच्छताम् ॥ व्यजनं व्यजनाकांक्षी वैशाखे मासि भूमिप ! ॥ १७ ॥

होता है, अर्थात् जलदान विशेष जानना ॥ १३ ॥ जो पुरुष मार्गमें यात्रियोंके निमित्त प्याऊ बिठाके जलका दान करता है, वह अपने करोडों कुलका उद्धार करके विष्णुलोकको जाता है ॥१४॥ हे राजसत्तम ! प्याऊ लगाकर जलदान करनेसे देवता, पितर और ऋषिलोग अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ जे मार्गमें प्याऊ बिठाकर जलदानसे मार्गसे थके हुये यात्रियोंको तृप्त करते हैं, उनके उस शुभकर्मसे ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि सब देव प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् !

वैशाखमासमें जलकी इच्छावालोंको जल, छायाकी इच्छावालोंको छाया, व्यजनकी इच्छावालेको व्यजन ( पंखा ) देवै ॥ १७ ॥ जलदान, छत्रदान, व्यजनदान ये दान विशेष है. वैशाखमासमें कुटुंबी ब्राह्मणके अर्थ ॥ १८ ॥ जो जलसे भरा हुवा घडा नहीं देता है, वह पृथ्वीपर पपैहा होता है. जो प्यासे महात्माको शीतजल पान करता है ॥ १९ ॥ उसको हे राजेंद्र ! दशहजार राजसूय यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है. तथा घामके परिश्रमसेपीडित ब्राह्मणको पंखेसे वायु करता है ॥ २० ॥ वह उतनेही शुभ

जलं छत्रं च व्यजनं दानमेषां विशिष्यते ॥ माधवे मासि संप्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुंबिने ॥ १८ ॥ अदत्वोदककुंभं च चातको जायते भुवि ॥ यो दद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने ॥ १९ ॥ तावन्मात्रेण राजेंद्र राजसूयायुतं लभेत् ॥ घर्मश्रमार्तविप्राय वीजयेद्व्यजनेन यः ॥ २० ॥ तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत् ॥ अदत्वा व्यजनं भूप वैशाखे तु द्विजातये ॥ २१ ॥ वातरोगशताकीर्णो नरकानेव विंदति ॥ यो वीजयेत्पटेनापि पथि श्रांतं द्विजोत्तमम् ॥ २२ ॥ तावताऽथ विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ यस्तालव्यजनं वाऽपि दत्त्वा शुद्धेन चेतसा ॥ विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २३ ॥ सद्यः श्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं नरः ॥ नारकीं यातनां भुक्त्वा कश्मलो जायते भुवि ॥ २४ ॥

कर्मसे पापरहित होकर गरुडसमान हो जाता है. जो वैशाखमासमें ब्राह्मणको व्यजनदान नहीं करता है ॥ २१ ॥ वह सैकडों वातरोगोंसे पीडित होकर नरक भोगता है. जो मार्गसे थकेहुये ब्राह्मणकी पंखासे वायु करता है ॥ २२ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्की सायुज्यताको प्राप्त होता है. जो शुद्ध मनसे ताडके व्यजनका दान करता है, वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २३ ॥ जो मनुष्य तत्काल श्रम हरनेवाले व्यजन ( पंखा ) का दान नहीं करता है, वह अनेक प्रकारकी नरकपीडाको

भोगकर पृथ्वीपर पापी होता है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! आध्यात्मिक दुःखोंकी शान्तिके अर्थ वैशाखमासमें छतरीका दान यत्नपूर्वक करना योग्य है ॥ २५ ॥ विष्णुभगवान्के प्यारे वैशाखमासमे जो मनुष्य छतरीका दान नहीं करता है, वह छायाहीन पृथ्वीपर महापिशाच होता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य, माधवके प्यारे माधवमासमें उत्तम पादुकाओं-(खडाओं)का दान करता है, वह यमदूतोंका तिरस्कार कर विष्णुलोकको जाता है॥ २७॥ जो वैशाखमासमें पादत्राण (जूता) का दान करता है, उसको नरकपीडा नहीं होती

आध्यात्मिकादिदुःखानां शांतये मनुजेश्वर ॥ छत्रं दद्यात्प्रयत्नेन वैशाखे मसि वा सकृत्॥२५॥ अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधव-प्रिये ॥ छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचो भुवि जायते ॥ २६ ॥ यो दद्यात्पादुके दिव्ये माधवे माधवप्रिये ॥ यमदूतौ निराकृत्य विष्णु-लोकं स गच्छति ॥ २७ ॥ पादत्राणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे ॥ न तस्य नारको लोको न क्लेशा ऐहिकाश्च ये ॥ २८ ॥ पादुके याचमानाय यो दद्याद्ब्राह्मणाय च ॥ स भूपालो भवेद्भूमौ कोटिजन्मन्यसंशयः॥२९॥ अनाथमंडपो मार्गे श्रमहारी करोति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते॥३०॥ मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तमतिथिं भोजयेद्यदि ॥ न तस्य फलविश्रांतिर्ब्रह्मणापि निरूपिता॥३१॥

और इससंसारके क्लेशभी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥ खडाऊं मांगनेवाले ब्राह्मणको जो खडाऊं दान करता है, वह मनुष्य निरसन्देह पृथ्वीपर कोटीजन्मपर्यन्त राजा होता है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य, मार्गमें श्रम (थकावट) को दूर करनेके अर्थ, मंडप (स्थान) बनवाता है, उसके उस पुण्यफलका वर्णन करनेको ब्रह्माजीभी समर्थ नहीं ॥ ३० ॥ मध्याह्न (दो पहर) के समय यदि ब्राह्मण अतिथि मिल जाय उसको भोजन करावे, तो उस भोजन करानेके फलकी हद श्रीब्रह्माजीभी वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! अन्नका दान तत्काल मनुष्योकी तृप्ति करनेवाला होता है; इस कारण संसारमें अन्नदानके समान दूसरा दान नहीं है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य मार्गे चलनेसे थकेहुये
ब्राह्मणको आश्रय देता है, उसके पुण्यफलके कहनेको ब्रह्माजीभी समर्थ नहीं ॥ ३३ ॥ स्त्री–पुत्र–घर–आदि और वस्त्रआभूषण–धारण ये कुछभी भूखे मनुष्यको नहीं
सुहाते हैं और पेटभरनेपर सब सुहाते हैं ॥ ३४ ॥ इसकारण, अन्नदानके समान न कुछ हुवा; न होगा. जिसने वैशाखमासमें थके हुये ब्राह्मणको अन्नदान नही दिया ॥ ३५ ॥

सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप ॥ तस्मान्नान्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ॥ ३२ ॥ मार्गश्रांताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति
यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि न शक्यते ॥ ३३ ॥ दारापत्यगृहादीनि वासोऽलंकारभूषणम् ॥ असह्यं नाश्नतः पुंसः सह्यं
भुक्तवतो ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ वैशाखे येन चादत्तं मार्गश्रांते च भूसुरे ॥ ३५ ॥ स पिशाचो
भवेद्भूमौ स्वमांसान्येव खादति ॥ यथा विभूत्या दातव्यं तस्मादन्नं द्विजातये ॥ ३६ ॥ अन्नदो मातृ–पित्रादीन् विस्मारयति
भूमिप ! ॥ तस्मादन्नं प्रशंसंति लोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः ॥ ३७ ॥ मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः ॥ अन्नदं पितरं लोके
प्रवदंति मनीषिणः ॥ ३८ ॥ अन्नदे सर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः ॥ अन्नदे सर्वधर्माश्च तिष्ठन्त्यरिधराजय ! ॥ ३९ ॥
॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दाननिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ ॥

वह पृथ्वीपर पिशाच होता है और अपनाही मांस खाता है. इसकारण, अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको अन्नदान प्रदान करना उचित है ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! अन्न
देनेवाला मातापिताका विस्मरण करा देता है, अर्थात् मातापिताको भूलकर अन्नदाताहीको याचक सब कुछ समझता है. इसकारण, त्रिलोकीके सबलोग अन्नकीही प्रशंसा
करते हैं ॥ ३७ ॥ माता और पिता तो केवल जन्मके हेतु हैं, परंतु पंडितजन संसारमें अन्न देनेवालेकोही पिता कहते हैं ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! अन्नके देनेवालेमेंही सब

तीर्थ और अन्नके दातामेंही सब देवता, तथा अन्नके दातामेंही सब धर्म निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणांतर्गतवैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे दानिनिरूपणं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीनारदजी बोले— जो मनुष्य, श्रेष्ठ ब्राह्मणको शय्या दान करता है और वह ब्राह्मण उस शय्यापर सुखपूर्वक शयन करता है तथा शीतल
पवनसे ब्राह्मणकी सेवा होती है ॥ १ ॥ तो सब धर्मोंका साधनभूत ब्राह्मणशरीर आरोग्य रहता है. इस दानसे सब प्रकारके ताप शान्त हो जाते हैं और पाप दूर हो जाते
हैं ॥ २ ॥ तथा वह दानी मनुष्य उस अखंड पदवीको प्राप्त होता है, जो योगिजनोंकोभी दुर्लभ है. वैशाखमासमें घामसे सन्तप्त और थके हुये ब्राह्मणको ॥ ३ ॥ जो श्रमनाशक

॥ नारद उवाच ॥ ॥ यो मर्त्यो द्विजवर्याय पर्यंकं तु ददाति हि ॥ यत्र स्वस्थः सुखं शेते शीतानिलनिषेवितः ॥ १ ॥ धर्मसाधनभूतो
हि देहो निरुजमासते ॥ तं दत्त्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः ॥ २ ॥ अखंडपदवीं याति योगिनामपिदुर्लभाम् ॥ वैशाखे
घर्मतप्तानां श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यंकं मनुजेश्वर ! ॥ न जातु सीदते लोके जन्ममृत्युजरा-
दिभिः ॥ ४ ॥ गृहीत्वा ब्राह्मणो यत्र शेते चाजीवमास्थितः ॥ आसीने सकलं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ॥ ५ ॥
विलयं याति राजेन्द्र ! कर्पूर इव चाग्निना ॥ शयने ब्रह्म निर्वाणं स नरो याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ यो दद्यात्कशिपुं
मासे वैशाखे माधवल्लभे ॥ सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ ७ ॥

उत्तम शय्याका दान करता है, हे राजन् ! वह संसारमें जन्म-मरण और वृद्धावस्थाआदि क्लेशोंको नहीं भोगता है ॥ ४ ॥ उस शय्याका दान लेकर उसपर उस ब्राह्मणके
शयन करनेसे दानीके ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे कियेहुये सब पाप ॥ ५ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्निके स्पर्शसे कपूर नष्ट हो जाता है और वह दानी पुरुष
अवश्यमेव ब्रह्मपदको चला जाता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य, विष्णुप्रिय वैशाखमासमें शय्यादान करता है, वह इसी जन्ममें सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त होता है ॥ ७ ॥

उसके कुलकी वृद्धि होती है; रोगआदि पीडा उसको कभी नहीं होती, तथा आयु भी उसकी बढ जाती है और परम आरोग्यताकी प्राप्ति होती है. यश और धैर्य मिलता है ॥८॥ उसकी सौ पीढीतक कोई अधर्मी नहीं होता है और सम्पूर्ण भोगोको भोगकर वह दानी पुरुष, शरीरत्याग करता है ॥ ९ ॥ वह मनुष्य सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मपद पाता है. जो वेदपाठी ब्राह्मणको तकिया दान करता है ॥ १० ॥ विना तकिया दान किये मनुष्य सुखनिद्रासे नहीं सोता है. इसके दान करनेसे मनुष्य सबका आश्रयभूत होकर पृथ्वीपर राज्य भोगता है

सान्वयो वर्तते नूनं रागादिभिरनाहतः ॥ आयुष्यं परमारोग्यं यशो धैर्यं च विंदति ॥ ८ ॥ नाधार्मिकः कुले तस्य जायते शत-
पौरुषम् ॥ भुक्त्वा तु सकलान्भोगांस्ततः पंचत्वमेष्यति ॥ ९ ॥ निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥ श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय
यो दद्यादुपबर्हणम् ॥ १० ॥ सुखं निद्रां विना येन न नृणां जायते क्वचित् ॥ सर्वेषामाश्रयो भूत्वा भुवि साम्राज्यमश्नुते ॥ ११ ॥
पुनः सुखी पुनर्भोगी पुनर्धर्मपरायणः ॥ आसप्तजन्म राजेंद्र जायते सर्वदा जयी ॥ १२ ॥ पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
तार्णं कटं तु यो दद्यात्कटमन्यदथापि वा ॥ १३ ॥ तत्र शेते स्वयं विष्णुः पत्रस्थः परमेश्वरः ॥ यथा जलगता चोर्णा न जलैर्भिद्यते
क्वचित् ॥ १४ ॥ तथा संसारगो जंतुः संसारे नैव बध्यते ॥ आसने शयने शक्तः कटदः सर्वतः सुखी ॥ १५ ॥

॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! तकिया देनेवाला मनुष्य सातजन्मपर्यन्त जबजब जन्म धारण करता है, तबतब सुखी, भोगी और धर्मात्मा, तथा सदा विजय पानेवाला होता है ॥ १२ ॥ फिर अपने सातौ कुलसहित ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है. जो मनुष्य चटाई अथवा किसीप्रकारकाभी आसन दान करता है ॥ १३ ॥ जिसपर पत्रशायी विष्णु भगवान् स्वयं विराजते हैं, जैसे जलमें पडी ऊन जलकरके नहीं भीगती है ॥ १४ ॥ वैसेही संसारी जीव सांसारिक बंधनमें नहीं बंधता है. चटाई देनेवाला मनुष्य आसन

प्रश्रये यशनार्थायं यो दद्यात्कटकं बलम् ॥ तावन्मात्रेण मुक्तः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ निद्रया हीयते दुःखं निद्रया हीयते श्रमः ॥ सा निद्रा कटसंस्थस्य सुखं संजायते ध्रुवम् ॥१७॥ यो दद्यात्कंबलं राजन् वैशाखे माधवागमे ॥ अपमृत्योः कालमृत्यो-र्मुक्तो जीवति वै शतम् ॥ १८ ॥ दद्याद्वस्त्रं सूक्ष्मतरं द्विजेन्द्रे घर्मकर्षिते ॥ पूर्णमायुः समाप्नोति परत्र च परां गतिम् ॥ १९ ॥ अंतस्तापहरं दिव्यं कर्पूरं तु द्विजातये ॥ दत्त्वा मोक्षमवाप्नोति दुःखशांतिं च विंदति ॥ २० ॥ कुसुमानि च यो दद्यात्कुंकुमं च द्विजातये ॥ सार्वभौमो भवेद्राजा सर्वलोकवशंकरः ॥ २१ ॥ पुत्रपौत्रादिभोगांश्च भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ त्वगस्थिगतसन्तापं सद्यो हरति चन्दनम् ॥ २२ ॥ तापत्रयविनिर्मुक्तस्तद्दत्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥ औशीरं चांपकं कौशं यो दद्याज्जलवासितम् ॥ २३ ॥

और शय्यापर शयन करनेसे सबप्रकार सुखी रहता है ॥ १५ ॥ शयन करनेके अर्थ जो चटाई कंबल देता है, वह मनुष्य मुक्त हो जाता है; इसमें विचार नहीं करना ॥ १६ ॥ निद्रासे दुःख दूर हो जाता है; निद्रासे परिश्रम दूर हो जाता है; वही निद्रा चटाईपर सुखसे आती है, इसमें संशय नहीं ॥ १७ ॥ हे राजन्! वैशाखमासमें जो मनुष्य कंबल दान करता है, वह अकालमृत्यु और कालमृत्युसे छूटकर सौ वर्षपर्यन्त जीता है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य धूपसे व्याकुल ब्राह्मणको वारीक वस्त्र दान करता है, वह इस लोकमें पूर्ण आयुको प्राप्त होता है और परलोकमें परम गति पाता है ॥ १९ ॥ अन्तःकरणके तापको हरनेवाले दिव्य कपूरका दान ब्राह्मणको देवै. कपूरके दानसे मोक्ष मिलती है और दुःख शान्त हो जाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको फूल और कुंकुमका दान करता है, वह सब लोगोंको वशमें करनेवाला सार्वभौम राजा होता है ॥ २१ ॥ और पुत्र-पौत्रआदि भोगोंको भोगकर मोक्ष पाता है. त्वचा और हड्डीके सन्तापको चन्दन शीघ्र हर लेता है ॥ २२ ॥ अतः चन्दन दान करनेसे मनुष्य तीनों प्रकारके तापसे छूट जाता है और मोक्षकीभी प्राप्ति होती है. इस कारण चन्दनका दान अवश्य करै. जलसे छिडककर सुगन्धित खस, चंपा और कुशाका दान जो देवै ॥ २३ ॥

तो हे राजन् ! वह दानी सब प्रकारके भोगोंको भोगता है. देवता उसके सहायक होते हैं; सब पाप और दुःखोंसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो धर्मात्मा पुरुष, वैशाखमासमें गोरोचन और कस्तुरीका दान करता है वह तीनौं तापोंसे छूटकर निर्वाणपद पाता है ॥ ॥ २५ ॥ जो मनुष्य मेषकी संक्रांति ( वैशाखमास ) में तांबूल ( पान ) कपूरसहित दान करता है, वह सार्वभौम ( चक्रवर्ती राजा ) के समान सुख भोगकर अन्तसमय मोक्षपदको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य वैशाखमासमें

सर्वभोगेषु राजेन्द्र ! स तु देवसहायवान् ॥ पापहानिं दुःखहानिं प्राप्य निर्वृतिमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ गोरोचं मृगनाभिं च दद्याद्वै-
शाखधर्मवित् ॥ तापत्रयविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥ २५ ॥ तांबूलं च सकर्पूरं यो दद्यान्मेषगे रवौ ॥ सार्वभौमसुखं भुक्त्वा
परं निर्वाणमृच्छति ॥ २६ ॥ शतपत्रीं च यूथीं च मेषमासे ददन्नरः ॥ स सार्वभौमो भवति पश्चान्मोक्षं च विंदति ॥ २७ ॥
केतकीं मल्लिकां वाऽपि यो दद्यान्माधवागमे ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥ २८ ॥ पूगीफलं तु यो दद्यात्सुगन्धं
तु द्विजातये ॥ नारिकेलफलं राजंस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २९ ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो
विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३० ॥

सेवती और जुहीका दान करता है, वह सार्वभौम होता है और अन्तसमय मोक्षपद पाता है ॥ २७ ॥ तथा जो वैशाखमासमें केतकी और मल्लिकाका दान करता है, वह माधवभगवान्‌की आज्ञासे मोक्षपद पाता है ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मणको सुपारी और सुगन्धित वस्तु प्रदान करता है और नारियल फल देता है, हे राजन् ! उसके पुण्यफलको सुनो ॥ २९ ॥ कि वह दानी सातजन्मतक धनवान्, वेदपारंगत ब्राह्मण होता है फिर सातों कुलसहित विष्णुलोकको जाता है ॥ ३० ॥

तथा जो विश्राममंडप बनाकर ब्राह्मणको देता है, हे राजन् ! उसके पुण्यफलके कहनेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ ३१ ॥ जो पुरुष छायामंडप बनवाय, उसमें वालू बिछवाकर तहाँ प्याऊ लगा देता है, तो वह दानी लोकस्वामी होता है ॥ ३२ ॥ एवं जो मनुष्य मार्गमें बागीचा, तालाव अथवा कुवां, मंडप बनवाता है वही धर्मात्मा है. उसके पुत्रोंकरके क्या फल है ? अर्थात् ऐसा सद्धर्मही उसका पुत्र है ॥ ३३ ॥ कुवां, तालाव, बागीचा, मंडप तथा पौशाला बनवाना, सद्धर्म करना और पुत्र यह सात प्रकारकी संतान कही

विश्राममंडपं यस्तु कृत्वा दद्याद्द्विजन्मने ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्तोऽस्मि भूपते ॥ ३१ ॥ सुच्छायामंडपं यस्तु सिकताकीर्णमञ्जसा ॥ सप्रपं कारयेद्यस्तु स तु लोकाधिपो भवेत् ॥ ३२ ॥ मार्गोद्यानं तडागं वा कूपं मंडपमेव च ॥ यः करोति स धर्मात्मा तस्य पुत्रैस्तु किं फलम् ॥ ३३ ॥ कूपस्तडाग उद्यानं मंडपश्च प्रपा तथा ॥ सद्धर्मकरणं पुत्रः संतानं सप्तधोच्यते ॥ ३४ ॥ एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः ॥ सच्छास्त्रश्रवणं तीर्थ-यात्रा सज्जनसंगतिः ॥ ३५ ॥ जलदानं चान्नदानमश्वत्थारोपणं तथा ॥ पुत्रश्चेति च संतानं सप्त वेदविदो विदुः ॥ ३६ ॥ नासंतति र्लभेल्लोकान्कृत्वा धर्मशतान्यपि ॥ तस्मात्संतानमन्विच्छेत्संतानेष्वेकतो व्रजेत् ॥ ३७ ॥ पशूनां पक्षिणां चैव मृगाणां चैव भूरुहाम् ॥ नोर्ध्वलोकं सुखं यांति मनुष्याणां तु का कथा ? ॥ ३८ ॥

है ॥ ३४ ॥ इनमेंसे जिस मनुष्यको एकभी नहीं हो वह मनुष्य स्वर्गलोकको नहीं जाता है. उत्तम शास्त्रोंका सुनना, तीर्थयात्रा, सज्जनोंका संग ॥ ३५ ॥ जलदान, अन्नदान, पीपलवृक्ष लगाना तथा पुत्रका होना ये सात प्रकारकी संतान वेदके जाननेवाले पंडितोंने कही है ॥ ३६ ॥ मनुष्योंको अन्य सैकडों धर्म करनेपरभी संतान नहीं प्राप्त होती है. इसकारण, सन्तानकी इच्छावालोंको इनमेंसे एक कर्म तो अवश्य करना योग्य है ॥ ३७ ॥ पशु, पक्षी, मृग और वृक्षोंकोभी स्वर्गसुख प्राप्त नहीं होता है; फिर

मनुष्योंका तो कहनाही क्या है ? ॥३८॥ जो पुरुष सुपारी–नागवल्लीदल–कपूर–अगरुसहित उत्तम तांबुल दान करता है ॥ ३९ ॥ वह निस्सन्देह शरीरसंबंधी सब पापोंसे छूट जाता है. तांबूलदानसे दानी पुरुष यश, धैर्य और ऐश्वर्यको निश्चय प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ रोगी दान करै तो रोगसे छूट जाता है और आरोग्य पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है. वैशाखमासमें जों पुरुष तापनाशक छाछका दान करता है ॥ ४१ ॥ वह पृथ्वीपर विद्यावान् व धनवान् होता हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है. घामकी गरमीके समय छाछदानके समान श्रेष्ठ दूसरा दान नहीं जानना ॥ ४२ ॥ इसकारण मार्गसे थकेहुये ब्राह्मणको श्रम दूर करनेके अर्थ, छाछका दान देवै तथा जो मनुष्य लवण मिलाकर जंभी-

पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ कर्पूरागरुसंयुक्तं दद्यस्तांबूलमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ तांबूलदो यशो धैर्यं श्रियं चाप्नोति निश्चितम् ॥ ४० ॥ रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् ॥ वैशाखे मासि यो दद्यात्तक्रं तापविनाशनम् ॥ ४१ ॥ विद्यावान् धनवान् भूमौ जायते नात्र संशयः ॥ न तक्रसदृशं दानं घर्मकालेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रांतद्विजातये ॥ जम्बीरसुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥ ४३ ॥ यस्तक्रमरुचिघ्नं तु दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ यो दद्याद्दधिमंडं तु वैशाखे घर्मशान्तये ॥ ४४ ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूमिप ! ॥ यो दद्यात्तंदुलान् दिव्यान् मधुसूदनवल्लभे ॥ ॥ ४५ ॥ स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ यो घृतं तेजसो रूपं गव्यं दद्याद्द्विजातये ॥ ४६ ॥

रीका निर्मल रस दान देता है ॥ ४३ ॥ जो छाछ अरुचिको नाश करता है तो ऐसे लवणजंभीरीरससहित छाछके दानसे वह दानी मोक्ष पाता है. जो वैशाखमासमें घामके तापसे व्याकुल ब्राह्मणको दधिका मंड पान कराता है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! उसके पुण्यफलके कहनेको मैं समर्थ नही हूं. जो मधुसूदन भगवान्के प्रिय वैशाखमासमें दिव्य तंदुल ( उत्तम चावल ) दान करता है ॥ ४५ ॥ वह मनुष्य पूर्णआयुष्यवाला होता है और सब यज्ञ करनेका फल पाता है. जो तेजोरूप गौके घीका दान ब्राह्मणको देता

है ॥ ४६ ॥ वह अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पाता है और विष्णुमन्दिरमें आनन्दको प्राप्त होता है और जो वैशाखमासमें मेषके सूर्यमें ककडी और गुडका दान करता है ॥ ४७ ॥ वह सब पापोंसे छूट जाता है और निश्चय श्वेतद्वीपमें निवास करता है. जो पुरुष सायंकालमें दिनकी तापको शांत करनेके अर्थ, ईखका दान ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणको देता हैं, उसको अनंत पुण्य होता है. जो सायंसमय वैशाखमें श्रमशान्तिके अर्थ पना देता है ॥ ४९ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त होता है तथा जो

सोऽश्वमेधफलं प्राप्य मोदते विष्णुमंदिरे ॥ उर्वारुगुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ ॥४७॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम् ॥ यश्चेक्षुदंडं सायाह्ने दिवातापोपशांतये ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनंतकम् ॥ वैशाखे पानकं दत्त्वा सायाह्ने श्रमशांतये ॥ ४९ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ सफलं पानकं मेष–मासे सायं द्विजातये ॥ ५० ॥ दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः ॥ वैशाखे पानकं चूतसुपक्वफलसंयुतम् ॥ ५१ ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनाशं यांति निश्चितम् ॥ यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुंभं पूर्णं तु पानकैः ॥५२॥ गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः ॥ कस्तूरीकर्पूरोपेतं मल्लिकोशीरसंयुतम् ॥ ५३ ॥ कलशं पानकं पूर्णं चैत्रदर्शे तु मानवः ॥ दद्यात्पितॄन् समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पानादिदाननिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ छ ॥

वैशाखमासमें सायंकालमें ब्राह्मणको फल और पना ॥ ५० ॥ दान देता है, उसके पितरोंको उसके उस दानसे अवश्य सुधापान मिलता है. वैशाखमें आमके पके फलसहित पनेका दान जो करता है ॥ ५१ ॥ उसके सब पाप निश्चयकरके नाश हो जाते हैं. जो चैत्रकी अमावसको पान करने योग्य पदार्थसे पूर्ण घडाका दान करता है ॥ ५२ ॥ उसने निस्संदेह सौ गयाश्राद्ध किये; तथा कस्तूरी, कपूर, मल्लिका और खससहित ॥ ५३ ॥ पेय वस्तुसे पूर्णघट चैत्रकी अमावसको पितरोंके निमित्त देता है, वह छ्यानवे श्राद्ध-

करनेका पुण्य पाता है ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पानादिदानवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ नारदजी कहते हैं कि–तैलमर्दन, दिनके समय शयन, कांसेके पात्रमें भोजन, खाटपर शयन, घरमें स्नान, निषिद्ध भोजन ॥ १ ॥ दोवार भोजन और रात्रिमें भोजन इन आठ बातोंका वैशाखमासमें त्याग करै. वैशाखमासमें जो व्रती पुरुष कमलके पत्रपर भोजन करता है ॥ २ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर वैकुंठको जाता है. तथा वैशाखमासमें दोपहरके समय थकेहुये ब्राह्मणोंकी ॥३॥ चरणसेवा करता है, उसने मानो सब व्रतोंसे परमोत्तम व्रत कर लिया और जो मार्गसे थकेहुये और दोपहरके समय अपने घर आये ब्राह्मणको ॥ ४ ॥ उत्तम आसनपर बिठाकर

नारद उवाच ॥ ॥ तैलाभ्यंगं दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् ॥ खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ १ ॥ वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् ॥ पद्मपत्रे तु यो भुंक्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः ॥ २ ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रांतानां तु द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं सुव्रतोत्तमम् ॥ अध्वश्रांतं द्विजं यस्तु मध्याह्ने स्वगृहागतम् ॥ ४ ॥ उपवेश्यासने रम्ये कृत्वा पादावनेजनम् ॥ धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबंधनः ॥ ५ ॥ गंगादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम् ॥ अस्नायी वाप्यपत्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ॥ ६ ॥ रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरी भवेत् ॥ दृढांगो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः ॥ ७ ॥

उसकी चरणसेवा करता है और चरण धोयं चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह सब बन्धनोंसे छूट जाता है ॥ ५ ॥ और उसको गंगाआदि सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल निश्चयकरके प्राप्त हो जाता है. वैशाखमासमें जो स्नान नहीं करै और कमलपत्रपर भोजन नहीं करै ॥ ६ ॥ वह गर्दभीकी योनिको प्राप्त होकर पश्चात् खच्चरीकी योनिमें जन्मता है. तथा पुष्ट और औरोग्यशरीर व स्वस्थ ऐसा होनेपरभी जो मनुष्य ॥ ७ ॥ वैशाखमासमें घरमें स्नान करता है, वह चांडालयोनिमें जन्मता है. हे राजेन्द्र !

जो वैशाखमास–मेषकी संक्रांतिमें ॥ ८ ॥ बाहर ( तीर्थपर ) स्नान नहीं करता है, वह सौवार श्वानका जन्म पाता है. जिसने वैशाखमास विना स्नान किये और विना दान दिये व्यतीत किया ॥ ९ ॥ वह पिशाच होता है और नरकको जाता है. वैशाखमासमें जो लोभी मनुष्य जल और अन्न नहीं देता है ॥ १० ॥ वह निश्चयकरके पाप और दुःखसे छुटकारा नहीं पाता है. जो वैष्णव, वैशाखमासमें नदीस्नान करता है ॥ ११ ॥ वह तीन जन्मोंके संचित पापोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं. तथा जो

वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चांडालीं योनिमाप्नुयात् ॥ वैशाखे मासि राजेन्द्र मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ ८ ॥ न करोति बहिःस्नानं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ ९ ॥ स पिशाचो भवेन्नूनमवैशाखादधो व्रजेत् ॥ यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमानसः ॥ १० ॥ पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोति न संशयः ॥ नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः ॥ ११ ॥ जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ समुद्रगानदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये ॥ १२ ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ कुर्यादुषसि यः स्नानं सप्तगंगासु मानवः ॥ १३ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ जाह्नवी वृद्धगंगा च कालिन्दी च सरस्वती ॥ १४ ॥ कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगंगाः प्रकीर्तिताः ॥ देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम् ॥ १५ ॥

प्रातः सूर्योदयसमय समुद्रसे मिलनेवाली नदीमें स्नान करता है ॥ १२ ॥ वह सात जन्मके किये पापोंसे तुरंत छूट जाता है. जो पुरुष उषःकालमें अर्थात् पाँच घडी रातों रहे सप्तगंगामें स्नान करता है ॥ १३ ॥ वह कोटिजन्मोंके किये पापोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं. जाह्नवी, वृद्धगंगा, कालिन्दी, सरस्वती, ॥ १४ ॥ कावेरी, नर्मदा और

वेणी ये सात गंगा कहाती हैं. जो मनुष्य वैशाखमासमें मातःसमय देवखात अर्थात् किसी देवमन्दिरके समीप जलाशय अथवा किसी देवताके नामवाले जलाशयमें स्नान करता है ॥ १५ ॥ वह जन्मसे उस समयतक किये हुये पापोंसे निस्सन्देह छूट जाता है. जो वैशाखमासमें बावडीमें ॥ १६ ॥ मातःसमय स्नान करता है, हे महाराज उसके महापाप नाश हो जाते हैं. जो घरसे बाहर कहीं गौके चरण रखनेमात्र जल भरा हो तो उसमेंभी ॥ १७ ॥ गंगाआदि सब नदियाँ निवास करती हैं यह निश्चय है. इस बातको निश्चय जाननेसे सब तीर्थोंसे अधिक फल माप्त होता है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! रसोंमें दूध अधिक प्रभाववाला है, दूधसे दही अधिक प्रभाववाला होता है;

जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ वैशाखे मासि संप्राप्ते यो वापीस्ववगाहनम् ॥ १६ ॥ प्रातः कुर्यान्महाराज महापातकनाशनम् ॥ अपि गोपदमात्रेषु बहिःस्थेषु जलेषु च ॥ १७ ॥ तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गंगाद्या इति निश्चयः ॥ इति जानन् समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥१८॥ क्षीरं रसाधिकं क्षीरादधिकं दधि भूमिप ! ॥ दध्नोऽधिकं घृतं यद्वदूर्जो मासोऽधिकस्तथा ॥१९॥ कार्तिकादधिको माघो माघाद्वैशाख उत्तमः ॥ तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्धते वटबीजवत् ॥ २० ॥ आढ्यो वाऽतिदरिद्रो वा परतंत्रोऽथवा नरः ॥ यद्वस्तु लभते तेन तद्दातव्यं द्विजातये ॥ २१ ॥ कंदं मूलं फलं शाकं लवणं गुडमेव च ॥ कोलं पत्रं जलं तक्रमानंत्यायोपकल्पते ॥ नादत्तं लभते क्वापि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २२ ॥

दहीसे अधिक उत्तमता घीमें जिसमकार है, इसी मकार महीनोंमें कार्तिक मास उत्तम है ॥ १९ ॥ कार्तिकसे उत्तम माघ और माघसे उत्तम वैशाखमास है. इस ' वैशाख ' महीनामें जो धर्म किया जाता है, वह वडके बीजके समान बढ़ता है ॥ २० ॥ धनवान् हो अथवा अतिदरिद्री हो, अथवा पराधीन हो, उसको जो वस्तु माप्त हो जाय वही ब्राह्मणको देवै ॥ २१ ॥ कन्द, मूल, फल, शाक, लवण, गुड, वेर, पत्र, जल, छाछ जो वस्तु दान करी जायगी, वह अनन्त होकर माप्त होगी. विनादिये ब्रह्मा

आदि देवताओंकोभी प्राप्त नहीं होती ॥ २२ ॥ जो मनुष्य कुछ दान नहीं करता, वह दरिद्री होता है. दरिद्री होनेसे पाप करने लगता है. पाप करनेसे नरकको जाता है. इससे सदा सुखकी इच्छावालेको अवश्य दान करना चाहिये ॥ २३ ॥ जैसे सुन्दर बडा घर हो, उसमें सब सामग्री उपस्थित हो; परन्तु छत न हो तो शोभाको नहीं प्राप्त होता, वैसेही सब महीनोंमें धर्म करनेवाला मनुष्य यदि वैशाखमासमें कुछ धर्म न करै, उसका धर्म करना वृथाही है ॥ २४ ॥ जिसप्रकार सब लक्षणोंसे युक्त कन्या पतिके विद्यमान होते स्त्रीलक्षणवती होती है, इसीप्रकार हे राजन्! वैशाखसहित धर्म करनेसे सांगोपांग क्रिया पूर्ण होती है और विना वैशाखमासके सब धर्मक्रियायें

दानेन हीनस्तु भवेदकिंचनो निष्किंचनत्वाच्च करोति पापम् ॥ पापादवश्यं नरकं प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता सदा ॥२३॥ यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा ॥ मासेषु धर्मः सकलेष्वनिष्ठितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति ॥ २४ ॥ यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणा हि ॥ क्रियापि सांगात्सकलापि राजन् वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥ २५ ॥ दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रिया ॥ शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम् ॥ २६ ॥ वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः ॥ यद्वद्विभूषा सुकृता न शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा ॥ २७ ॥ क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुंभिर्न भासते तन्मधुमासहीनम् ॥ २८ ॥

वृथाही हो जाती हैं ऐसा जानना ॥ २५ ॥ जैसे दया नहीं होनेसे सर्व गुण वृथा हैं, इसीप्रकार वैशाखमें धर्म नहीं करनेसे सब क्रिया वृथा हैं और जैसे सब मसालाओंसे युक्त शाक विना लवणके स्वादिष्ट नहीं होती ॥ २६ ॥ वैसेही वैशाखमें पुण्य नहीं करनेसे उत्तम फल प्राप्त नहीं होता है. विनावैशाखधर्मके किये हुये धर्म साधु रीतिसे सेवनीय नहीं जानना जैसे सुंदरी स्त्री आभूषण धारण करनेपरभी विना वस्त्रके शोभाको नहीं प्राप्त होती है वैसेहि ॥ २७ ॥ पुरुषोंकरके किये हुये सम्पूर्ण क्रियाओंसे युक्त धर्मभी वैशाखके

धर्मसे हीन होनेपर शोभाको प्राप्त नहीं होता है ॥ २८ ॥ इसकारण सब उपायोंसे जैसे बनै वैसे, प्राणीको वैशाखमासमें धर्म अवश्य करना चाहिये, ऐसा निश्चय जानना ॥ २९ ॥ मधुसूदन भगवान्का ध्यान कर 'मेषकी संक्रांतिमें' प्रातःकाल स्नान करके विष्णुका पूजन करै; ऐसा नहीं करनेसे वैष्णव नरकको जाता है ॥ ३० ॥ वैशाखमास सब महीनोंमें उत्तम है; इसकी देवता मधुसूदनभगवान् है. इसमें तीर्थयात्रा, तप, यज्ञ, दान, होम करनेसे अधिक फल प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ प्रार्थनाका मंत्र यह है कि—" हे मधुसूदन ! हे

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि जंतुना ॥ धर्मो वैशाखमासे तु कर्तव्य इति निश्चयः ॥ २९ ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वाऽर्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥ वैशाखः सकलो मासो मधुसूदनदैवतः ॥ तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥ ३१ ॥ प्रार्थनामंत्रः—मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ ॥ प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव ॥ ३२ ॥ अर्घ्यमंत्रः— वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः ॥ अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन ॥ ३३ ॥ गंगाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये ॥ प्रगृह्णन्तु मया दत्तमर्घ्यं सम्यक् प्रसीदथ ॥ ३४ ॥ ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥ ३५ ॥

देवेश ! वैशाखमास मेषकी संक्रांतिभर प्रातःकाल स्नान करूंगा. हे माधव ! यह हमारा नियम निर्विघ्न पूर्ण कर देना "॥३२॥ अर्घ्यका मंत्र यह है, कि—'वैशाखमासमेषसंक्रांतिमें प्रातः-स्नान करके आपको अर्घ्यप्रदान करता हूं, सो हे मधुसूदन ! आप ग्रहण करो ॥३३॥ गंगाआदि सब नदी, सब तीर्थ व सब जलाशय मेरे इस दिये हुये अर्घ्यको ग्रहण करै और सम्यक् प्रकारसे प्रसन्न होवैं ॥३४॥ हे भगवन् ! आप पापियोंपर शासन करनेवाले, श्रेष्ठ, समानदृष्टिसे देखनेवाले और सबके नियंता हो, मेरे दिये हुये अर्घ्यको ग्रहण करौ और यथोक्त

फल देओ ॥३५॥ इसप्रकार अर्घ्य देकर स्नान करै. फिर वस्त्र पहिनकर अपने सब नित्यकर्मको करै; तदनन्तर ॥ ३६ ॥ वैशाखमें उत्पन्न हुये फूलोंसे मधुसूधन भगवान्की पूजा करके वैशाखमासमें सुननेयोग्य विष्णुभगवान्की दिव्य कथा सुनै ॥ ३७ ॥ ऐसा करनेवाला मनुष्य, करोड जन्मोंके पापोंसे छूटकर मोक्ष पाता है और भूमि, स्वर्ग और पातालमें कहींभी उसको खेद नहीं होता है ॥ ३८ ॥ तथा कभी गर्भमें नहीं आता है, न फिर माताके स्तनका दूध पीनेवाला होता है और जो वैशाखमासमें काँसेके पात्रमें भोजन करता

इत्यर्घ्यांश्च समर्प्याथ पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥ ३६ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥ ३७ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ न जातु खिद्यते भूमौ न स्वर्गे न रसातले ॥ ३८ ॥ न गर्भे जायते क्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ वैशाखे कांस्यभोजीयस्तथा चाश्रुतसत्कथः ॥ ३९ ॥ न स्नातो नापि दाता च नरकानेव गच्छति ॥ ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथंचन ॥ ४० ॥ वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति ॥ स्वाधीनेन च कायेन ह्यप्सु स्वातंत्र्यवर्तिषु ॥ ४१ ॥ स्वाधीनजिह्वयोच्चार्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ न कुर्याद्यदि वैशाखे प्रातःस्नानं नराधमः ॥ ४२ ॥

है तथा उत्तम कथा नहीं सुनता है ॥ ३९ ॥ न स्नान करता है और न दान करता है, वह नरकमें जाता है. हजार ब्रह्महत्याओंका पाप किसीप्रकार दूरभी हो जाय ॥ ४० ॥ परन्तु वैशाखमासमें जिसने स्नान नहीं किया, उसका पाप कभी दूर नहीं होता है. जो मनुष्य अपने शरीरको आधीन कर स्वतंत्र होकर जलमें स्नान करता है ॥ ४१ ॥ और अपने आधीन जिह्वासे 'हरि' इन दो अक्षरोंका सतत उच्चारण करता है, यदि वह वैशाखमासमें प्रातःसमय स्नान नहीं करै तो उसको मनुष्योंमें अधम जानना ॥ ४२ ॥

और उसे जीतेही मरा समझना चाहिये, इसमें संशय नहीं. जिसने वैशाखमासमें किसी उपायसे भी मधुसूदन भगवान्की ॥ ४३ ॥ पूजा नहीं करी, वह मूढात्मा पुरुष शूकरकी योनिको प्राप्त होता है. जो वैशाखमें तुलसीदलसे मधुसूदनभगवान्की पूजा करता है ॥ ४४ ॥ वह चक्रवर्ती राजा होकर करोड जन्मापर्यंत भोगोंको भोगता है. अनन्तर कोटि कुलोंसहित विष्णुभगवान्की सायुज्यताको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ नार-

जीवन्नेव च पंचत्वमागतो नात्र संशयः ॥ येनकेनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम् ॥ ४३ ॥ नार्चयेद्यदि मूढात्मा सौकरीं योनि-माप्नुयात् ॥ योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम् ॥ ४४ ॥ नृपो भूत्वा सार्वभौमकोटिजन्मसु भोगवान् ॥ पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो वि-ष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ॥ ४ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ ॥ वैशाखः सर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्य एव च ॥ कथं स सर्वमासेभ्यो दानेभ्योऽप्यधिको भवेत् ॥ १ ॥ तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ शृणु चैकमना भव ॥ कल्पान्ते देवराड्विष्णुः शेषशायी महाप्रभुः ॥ २ ॥ कुक्षिस्थलोकसंघोऽयं स शेते प्रलयार्णवे ॥ अनेको ह्येकतां प्राप्य भूतिभिर्योगमायया ॥ ३ ॥ निमेषस्यावसाने तु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः ॥ कुक्षिस्थजीवसंघानां रक्षां चक्रे दयानिधिः ॥ ४ ॥

दजी बोले— हे राजा अंबरीष ! वैशाखमास , सब धर्मोंसे और तपधर्मोंसे, सब महीनोंसे तथा सब दानोंसे अधिक कैसे है ॥ १ ॥ सो मैं कहता हूं; महाप्राज्ञ ! सावधानमन होकर सुनो. कल्पके अन्तमें देवताओंके राजा शेषशायी महाप्रभु विष्णु भगवान् ॥ २ ॥ ॥ इस सम्पूर्ण जगत्को अपने उदरमें लेकर प्रलयके समुद्रमें शयन करते हैं और योगमायारूपी विभूतिद्वारा अनेकसे एकताको प्राप्त होकर ॥ ३ ॥ एक निमेषके बीत जानेपर वेदोंने जगाया. तब दयानिधि भगवान्ने अपने उदरस्थित जीवोंकी

रक्षा करी ॥ ४ ॥ और उन जीवोंके किये कर्मोंके अनुसार फल प्राप्त होनेके अर्थ, सृष्टि रचनेकी इच्छा करी. तव भगवान्‌की नाभिसे त्रिलोकीका आश्रयरूप सुवर्णमय कमल प्रगट हुआ ॥ ५ ॥ उस कमलसे विराड्रूप ब्रह्माजी प्रगट हुये. तव उस विराट्पुरुषमें भगवान्‌ने चौदह लोक प्रगट किये ॥६॥ फिर भिन्नभिन्न कर्मोंवाले अनेक जीवोंके समूह रचे. अनन्तर ' सत–रज–तम ' इन तीनौ गुणोंको और प्रकृतिमर्यादा तथा लोकोंके स्वामियोंको रचा ॥ ७ ॥ और वर्ण व आश्रमोंका विभाग किया. तथा धर्मकी

तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृष्यान् स्रष्टुं मनो दधे ॥ तस्य नाभेभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम् ॥ तस्मिन् ससर्ज भगवान् भुवनानि चतुर्दश ॥ ६ ॥ भिन्नकर्माशयप्राणिसंघांश्च विविधान् बहून् ॥ त्रिगुणान् प्रकृतिं लोके मर्यादाश्चाधिपांस्तथा ॥ ७ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मक्लृप्तिं च सोऽकरोत् ॥ वेदैश्चतुर्भिस्तंत्रैश्च सहितान् स्मृतिभिस्तथा ॥ ८ ॥ पुराणैरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः ॥ ऋषीन् प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥ ९ ॥ तैः प्रवर्तितधर्मास्तु वर्णाश्रमविभागजाः ॥ प्रजाः श्रद्दधिरे सर्वाः स्वोचितान् विष्णुतोषदान् ॥ १० ॥

कल्पना करी. तदनन्तर चारौ वेद, तंत्र, तथा स्मृति ॥ ८ ॥ पुराण इतिहास इनको रचकर देवदेव महेश्वर भगवान्‌ने धर्मरक्षार्थ इनके प्रवर्तक अपने आज्ञारूप ऋषियोंको प्रगट किया ॥ ९ ॥ उन ऋषियोंने चार वर्ण ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ), चार आश्रम ( ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ) इनके पृथक् पृथक् धर्मोंको प्रवृत्त किया. उन अपने अनुसार विष्णुके प्रसन्न करनेवाले धर्मोंपर सब प्रजा श्रद्धा करने लगी ॥ १० ॥

" वह सब प्रजा अपने आश्रमधर्ममें प्रवृत्त है, अथवा नहीं " यह देखनेके अर्थ अन्तर्यामी अविनाशी भगवान् साक्षात् ईश्वरभय दिलानेके अर्थ परीक्षा लेने आये, ॥ ११ ॥ "कि सब प्रजा कुशलपूर्वक धर्ममें प्रवृत्त होवै ऐसा कौन समय है ? " इस प्रकार चिंता करते हुये प्रभु भगवान् विचार करने लगे ॥ १२॥ वर्षाकाल मैने रचा, इसमें प्रजा लोग दुखी हैं; कींच आदिमें फँसनेके कारण धर्मोंको नहीं करते हैं ॥ १३ ॥ उनको देखकर क्रोध उत्पन्न होता है, उनमें मेरे मनकी प्रसन्नता नहीं होती है. मेरे देखते क्लेशित नहीं

तांस्तु प्रवर्तमानांस्तु स्वाश्रमान् द्रष्टुमीश्वरः ॥ हृदिस्थोऽप्यव्ययःसाक्षाद्विभीषार्थं परीक्षया ॥११॥ अनूनान् कुशलान् यत्र धर्मान् कुर्वन्ति वै प्रजाः ॥ स कालः को भवेद्विद्वानिति तं चिंतयन् प्रभुः ॥ १२ ॥ वर्षाकालो मया सृष्टः सीदंत्यस्ता इमाः प्रजाः ॥ तत्रानूनं न कुर्वन्ति धर्मान् पंकाद्युपद्रुताः ॥१३॥ तान् दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्न मे भवेत् ॥ मयेक्षिता न सीदन्तु तस्मात्तानवलोकये ॥१४॥ शरद्यदि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते ॥ केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद्वृष्टिभिरर्दिताः ॥ १५ ॥ केचिच्छीतार्दिता राजंस्तान् दृष्ट्वा रोष एव मे ॥ वैगुण्यं पश्यमानस्य न मे तोषोऽभिजायते ॥ १६ ॥ उत्थापनं तु नेष्यंति प्रातर्हेमंत आगते ॥ कोपो मेऽनुत्थितान् दृष्ट्वा प्रातः सूर्योदये सति ॥ १७ ॥

होवैं इसकारण इनको देखै ॥ १४ ॥ यदि शरत्कालमें धर्म करैं तो सब खेत पक जाते हैं; उनके काटनेंमे लगनेसे धर्मको पूर्ण रीतिसे नहीं कर सकते हैं. कोई पके फलोंमें आसक्त हो रहे हैं. कोई वर्षाकी, चिंतासे पीडित है ॥१५॥ कोई शीतसे पीडित हैं. इनको देखकर मुझको रोष उत्पन्न होता है. इनके औगुणको देखकर मुझको सन्तोष नहीं है ॥ १६ ॥ हेमन्तऋतुके आनेपर शीतके कारण प्रातःकाल उठते हैं; सूर्यके उदयसे पहले नहीं उठते हैं. प्रातः सूर्योदयसमय उठनेवालोंको देखकर मुझको क्रोध आता है ॥ १७ ॥

शिशिरऋतुमेंभी इसी प्रकार प्रजाजन प्रातःसमय शीतसे पीडित रहते हैं, तथा पके फलोंके खानेमें निरन्तर आसक्त रहते हैं ॥ १८ ॥ फिर जे शीतसे पीडित होनेसे प्रातःसमय स्नाननिमित्त केवल विचारही किया करते हैं, उनके कर्मोंका लोप हो जाता है; उनकी पूर्ति कभी नहीं होती है ॥ १९ ॥ यह समय विचारपूर्वक व्यतीत करनेका नहीं ऐसा चिंतवन कर प्रभुभगवान्ने इस वसन्तऋतुको सब दुःखोंसे निवृत्त करनेवाला माना ॥ २० ॥ स्नानमें, दानमें तथा यज्ञमें

शिशिरेपि तथैवार्ताः प्रातःकाले इमाः प्रजाः ॥ तथा पक्वफलादानसक्ता ह्यनिशमंजसा ॥ १८ ॥ पुनः शीतार्दिताः प्रातःस्नानार्थमिति चिंतिताः ॥ तेषां तु कर्मलोपः स्यान्नैव पूर्तिः कथंचन ॥ १९ ॥ प्रेक्षायाः समयो नायमिति चिंताकुलो विभुः ॥ वसंतसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥ २० ॥ स्नाने दाने तथा योगक्रियायां भोग एव च ॥ नानाधर्मविधाने च ह्यनुकूलो ह्ययमृतुः ॥ २१ ॥ अप्रयासेन लभ्यानि द्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम् ॥ येन केन च द्रव्येण तुष्टिस्तनुभृतां भवेत् ॥ २२ ॥ विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम् ॥ वसन्ते सकलं द्रव्यं प्राणिनां तु सुखावहम् ॥ २३ ॥ दानयोग्यं धर्मयोग्य भोगयोग्यं तु सर्वशः ॥ निर्धनानां तु पंगवादिविकलानां महात्मनाम् ॥२४॥ द्रव्याणि च सुलभ्यानि जलादीनि न संशयः ॥ द्रव्यैरेतैः स्वात्महितं धर्मं कुर्वंति मत्प्रियाः ॥ २५ ॥

क्रियामें, भोगमें एवं अनेक धर्मविधानमें यह ऋतु अनुकूल है ॥ २१ ॥ धनवान् पुरुष इस ऋतुमें विनापरिश्रमही सब वस्तुओंको पाते हैं. जिस किसी प्रकारसे धनद्वारा शरीरधारियोंकी प्रसन्नता हो जाती है ॥ २२ ॥ विष्णुके आधारभूत प्राणियोंके धर्मका साधन द्रव्यही है; वसन्तऋतुमें सब द्रव्य प्राणियोंको सुखदायक होते हैं ॥ २३ ॥ दानयोग्य, धर्मयोग्य और सबप्रकारके भोगोंके योग्य निर्धनी, लंगडेआदि व्याकुल तथा महात्माओंको ॥ २४ ॥ सब द्रव्य और जलादिक सुलभतासे प्राप्त होते हैं; इसमें संशय

नहीं है. इन द्रव्योंसे मेरे प्यारे भक्त अपने हितार्थ धर्मसाधन करते है ॥ २५ ॥ पत्र, पुष्प, फल, अन्य शाकआदि, प्रिय वाणी, माला, तांबूल, चन्दनादिसुगन्ध, चरणप्रक्षालन आदि करके ॥ २६ ॥ तथा विनयभावसे जो मेरा आराधन करते हैं, मैं उनको वरप्रदान करता हूं. इसप्रकार कहते और विचारतेहुये विष्णुभगवान् लक्ष्मीसमेत ॥२७॥ वनमें चारों ओर देखते हुये चले. जहां भांतिभांतिके फूल खिल रहे हैं, तथा जो वन हृष्टपुष्ट जीवोंसे युक्त और मतवाले भ्रमर व पक्षियोंकरके सेवित ॥ २८॥ महात्माओंके आश्रम व ग्राम-

पत्रैः पुष्पैः फलैरन्यैः शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः ॥ स्रक्तांबूलैश्चंदनाद्यैः पादप्रक्षालनादिभिः ॥ २६ ॥ प्रश्रयाद्यैरहं तेषां वरदोऽह-
मितीरयन् ॥ संचिंत्य भगवान् विष्णुः प्रतस्थे रमया सह ॥ २७ ॥ वनानि सर्वतः पश्यन् विकसत्कुसुमानि च ॥ हृष्टपुष्टजनाकी-
र्णमत्तालिद्विजसेवितम् ॥ २८ ॥ आश्रमाणां महार्हाणां वनग्रामनिवासिनाम् ॥ प्रांगणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च
॥ २९ ॥ रमायै दर्शयन् विष्णुः सहदेवैर्मुनीश्वरैः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः ॥ ३० ॥ स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान् वर्णा-
श्रमनिवासिनाम् ॥ मीनादिकर्कटांतं वै स तिष्ठन् रमया सुरैः ॥ ३१ ॥ सार्द्धं प्रतीक्ष्य पुरुषान् कृताकृतसपर्यया ॥ तत्र धर्मवतां
पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् ॥३२ ॥ मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम् ॥ यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां परमात्मनः ॥ ३३ ॥

वासियोंके बडे आंगन और रमणीय उद्यान और स्थल ॥ २९ ॥ श्रीलक्ष्मीजीको दिखाते हुये देवता, मुनीश्वर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस इनकरके ॥ ३० ॥ स्तुति किये हुये, वर्णाश्रमवासियोंके घरोंमें जाकर मीनसे कर्ककी संक्रांतिपर्यन्त लक्ष्मी और देवताओंसहित निवास करके ॥ ३१ ॥ पुरुषोंके कर्तव्याकर्तव्य कर्मोंका निरीक्षण करते हैं. तहां धर्मात्मा पुरुषोंको इच्छाके अनुसार फल देते हैं ॥३२॥ और जो पुरुष मदसे उन्मत्त हैं उनको न सहकर उनकी आयु और धन आदिकको हरते हैं. जो पुरुष

वैशाखमासमें परमात्माकी पूजा करते हैं ॥३३॥–तहांभी चलमूर्तिमान् जो साधुजन हैं,–जिनमें भगवान् विराजते हैं,–उनकी सेवा जो पुरुष करते हैं और अन्य महीनोंमें नहीं करते हैं, उनके उस अपराधको भगवान् सह लेते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे देशमें आयेहुये राजाको देखकर प्रजाजन बहुमूल्य भेंट और सत्कारसे राजाकी पूजा करते हैं ॥ ३५ ॥ तब राजा उस पूजाकी सामग्रीके द्वारा यह जान लेता है कि–"किसकी पूजा न्यून अथवा पूर्ण है.' पूर्ण पूजा होनेसे प्रसन्न होकर उसको इच्छानुसार फल देता है ॥ ३६ ॥

तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनां यत्र वै विभुः ॥ मासेष्वन्येषु यजातं कर्मलोपं सहिष्यति ॥ ३४ ॥ यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जन-
पदाः प्रजाः ॥ यदि तं चोपतिष्ठंति प्रश्रयाद्यैर्महार्हणैः ॥ ३५ ॥ तदाकारादिकं न्यूनं पूर्णं जानाति पार्थिवः ॥ पुनरप्यधिकं चेष्टं
तुष्टो दास्यति निष्ठितम् ॥ ३६ ॥ तदा स्वकृतपूजानां दंडं तेषां करोति च ॥ तथा विष्णुः स्वकीयानां वैशाखे माधवागमे ॥ ३७ ॥
सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् ॥ अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनि हरत्यलम् ॥ ३८ ॥ धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्य शा-
र्ङ्गिणः ॥ परीक्षाकाल एवायं तस्मान्मासोत्तमो ह्ययम् ॥३९॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठ-
त्वनिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छ ॥

जिसकी पूजा भेंट ठीक नहीं होती उसको दंड देता है ॥ तैसेहि विष्णुभगवान् वैशाखमासमें अपने भक्तोंको ॥ ३७ ॥ जो कि भलीभांति पूजा करते हैं उनको इच्छानुसार फल देते हैं और जो पुरुष पूजन नहीं करते हैं, उनके धनआदि ऐश्वर्यको हरलेते हैं ॥ ३८ ॥ धनुष्धारी देवदेव विष्णु भगवान्, वैशाखमासमें अपने भक्तजनोंकी परीक्षा लेते हैं, इस कारण यह महीना उत्तम है ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजा अंबरीष ! वैशाखमासमें मार्ग चलनेसे पीडित और प्याससे व्याकुल पुरुषोंको जलदान नहीं करनेसे पशु–पक्षीकी योनि प्राप्त होती है ॥ १ ॥ इसके उदाहरणमें एक पुरातन इतिहास है. एक ब्राह्मणके घर छिपकलीका परमआश्चर्ययुक्त संवाद है ॥ २ ॥ पूर्वसमय महाराजा इक्ष्वाकुके वंशमें हेमांग नामक एक राजा था. वह ब्राह्मणभक्त था और किसीकी निन्दा नहीं करता था. तथा शत्रुओंको जीतनेवाला व जितेन्द्रिय था ॥ ३ ॥ जितने बालूके कण भूमिमें हैं, जितने जलके बूंद हैं और जितने नक्षत्र आकाशमें हैं, उतनी गौवें इस राजाने दान करीं ॥ ४ ॥ तथा इस राजाने इतने यज्ञ किये कि–उन यज्ञोंके कुशाओंसे पृथ्वीपर कुशाही कुशा दिखाई दीं और गौ–भूमि–तिल–सुवर्णआदि

॥ नारद उवाच ॥ ॥ वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्तानां महीपते ॥ जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥ पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमांग इति भूमिपः ॥ ब्रह्मण्यश्च वदान्यश्च जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ यावंत्यो भूमिकणिका यावंतो जलबिंदवः ॥ यावंत्युडूनि गगने तावतीरददात्स गाः ॥ ४ ॥ येनेष्टं यज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा ॥ गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥ ५ ॥ तेन दत्तानि दानानि न विद्यंत इति श्रुतम् ॥ तेनादत्तं जलं चैकं सुखलभ्यधिया नृप ॥ ६ ॥ बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना ॥ अमौल्यं सर्वतोलभ्यं तद्दाता किं फलं लभेत् ॥ ७ ॥ दुर्बुद्ध्या हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान् द्विजे ॥ अलभ्यदाने पुण्यं स्यादिति वाक्यं सुयुक्तिमत् ॥ ८ ॥

दानसे बहुतेरे ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ उसने सब दान दिये. ऐसा कोई दान नहीं जो न दिया हो. ऐसा दानी सुननेमें नहीं आया. उस सुखप्राप्तिकी इच्छावाले राजाने हे राजन् ! एकवार जलदान नहीं दिया ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र महात्मावसिष्ठजीने समझाया कि– "जलदान करो." तब उस राजाने कहा कि–" जलका कुछ मूल्य नहीं, सर्वत्र मिलता है. इसकारण जल देनेवाला क्या फल पाता है ? " ॥ ७ ॥ इस प्रकार दुर्बुद्धि और हेतुवादसे अनेक वार्तालाप कर ब्राह्मणको जल नहीं दिया. फिर कहां

कि– " अलभ्य वस्तुके दानसे पुण्य होता है " और यही बात योग्यभी है ॥ ८ ॥ वह राजा अंगहीन, दरिद्री और जीविकाहीन दुर्बल ब्राह्मणोंकी सेवा करता था. वेदपाठी, तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मवादियोंकी सेवा नहीं करता था ॥ ९ ॥ उस राजाका यह कथन था कि–" प्रसिद्ध महात्मा ब्राह्मणोंकी पूजा तो सबही करते हैं; परंतु अनाथ बिना पढे और लूले–लंगडे ब्राह्मणोंकी ॥१०॥ तथा दरिद्रियोंकी गति ठीक नहीं होती इसकारण येही सब मेरे दयाके योग्य हैं. " इसप्रकार विचारवाला वह राजा, दुर्बुद्धि कुपात्रोंको

स आनर्च द्विजान् व्यंगान् दरिद्रान् वृत्तिकर्शितान् ॥ नार्चयच्छ्रोत्रियान् विप्रांस्तत्त्वज्ञान् ब्रह्मवादिनः ॥९॥ प्रख्यातान् पूजयिष्यंति सर्वे लोका महार्हणाः ॥ अनाथानामविद्यानां व्यंगानां च द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मे दयास्पदाः ॥ इति दुर्धीरपात्रेषु दत्तवान् किमपि स्वयम् ॥ ११ ॥ तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु ॥ एक जन्मनि गृध्रत्वं श्वाऽभवत् सप्तजन्मसु ॥ १२ ॥ पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोयं गृहगोधिका ॥ श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्य मिथिलाधिपतेर्नृप ॥ १३ ॥ गृहद्वारप्रतोल्यां च वर्तते कीटकाशना ॥ सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १४ ॥ विदेहाधिप तेर्गेहे कदाचिदृषिसत्तमः ॥ श्रुतदेव इति ख्यातः श्रांतो मध्याह्न आगतः ॥ १५ ॥

दान देतां रहा ॥ ११ ॥ इस महान् दोषसे वह तीन जन्मोंतक चातकयोनिमें जन्मा; एकजन्ममें गीधपक्षी रहा. फिर सातजन्मोंतक कुत्ता हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे राजा अंबरीष ! वह हेमांगनामक राजा मिथिलापुरीके श्रुतकीर्तिनाम राजाके घर छिपकली हुवा ॥ १३ ॥ घरके द्वारकी चौखटके ऊपर कीडा खाती हुई वह वह छिपकली वहाँ सतासी वर्षे स्थित रही ॥ १४ ॥ एकदिवस दैवयोगसे ऋषियोंमें श्रेष्ठ श्रुतदेवनामक महात्मा मध्याह्नकालकी तापसे थकेहुये मिथिलाधिपतिके घर आये ॥ १५ ॥

ऋषिको देखकर राजा परम प्रसन्न हो, सहसा उठकर मधुपर्क आदिसे पूजा करके ऋषिके चरण धोने लगा ॥ १६ ॥ और चरणोदकको शीघ्रतापूर्वक अपने मस्तकपर छिरकने लगा. उसमेंसे एक बूँद जल दैवयोगसे उस छिपकलीके ऊपर जाकर गिरा ॥ १७ ॥ तब उस बूंदके प्रभावसे उसको शीघ्रही अपने जन्मोंका स्मरण हुवा. स्मरण आतेही अपने कर्मोंसे दुःखित हो घर आयेहुये ब्राह्मणसे " हाय ! हाय ! ! " कर कहा कि-" हे ब्रह्मन् ! मेरी रक्षा करो " ॥ १८ ॥ उस छिपकलीका शब्द सुनकर ब्राह्म-

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः ॥ मधुपर्कादिभिः पूज्यतस्य पादावनेजनीः ॥ १६ ॥ आपो मूर्ध्न्यवहत् क्षिप्रं तदोत्सिक्तैश्च बिंदुभिः ॥ दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥ १७ ॥ सद्यो जातस्मृतिरभूत्स्मृतकर्मादिदुःखिता ॥ त्राहि त्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम् ॥ १८ ॥ तिर्यग्जंतुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् ॥ कुतः क्रोशसि गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ १९ ॥ त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाऽथ द्विजोऽथवा ॥ कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २० ॥ इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामतिम् ॥ अहमिक्ष्वाकुकुलजो वेदशास्त्रविशारदः ॥ २१ ॥ यावंत्यो भूमिकणिका यावंतस्तोयबिंदवः ॥ यावंत्युडूनि गगने तावतीरददं स्म गाः ॥ २२ ॥

णने आश्चर्ययुक्त होकर कहा-" हे गोधा ! तुम कहाँ हो और क्यों विलाप करती हो ? किस कर्मसे तुमारी यह दशा हुई ? ॥ १९ ॥ तुम देवता हो, पुरुष हो, अथवा कोई राजा हो वा ब्राह्मणहो ? हे महाभाग ! तुम कोन हो सो कहो. हम आजही तुमारा उद्धार करेंगे " ॥ २ ॥ ब्राह्मण श्रुतदेवने जब इसप्रकार कहा, तब वह राजा महाबुद्धिवान् श्रुतदेवजीसे बोला-" हे ब्रह्मन् ! मैं इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुआ और वेदशास्त्रमें निपुण था ॥ २१ ॥ जितने रजके कण भूमिमें हैं और जितने जलके बूंद हैं,

सर्वे यज्ञा मया चेष्टाः पूर्तान्याचरितानि मे ॥ दानान्यपि च दत्तानि धर्माद्राज्यं स्वनुष्ठितम् ॥ २३ ॥ तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना ॥ त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥ २४ ॥ सप्तजन्मसु श्वानत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ! ॥ सिंचताऽनेन भूपेन त्वत्तः पादावनेजनीः ॥ २५ ॥ बिंदवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः क्षिप्तोऽहं कथंचन ॥ तेन जन्मस्मृतिरभूत्सर्वपाप्माहतश्च मे ॥ २६ ॥ गोधाजन्मानि भाव्यानि ह्यष्टाविंशतिमे द्विज ॥ दृश्यंते दैवसृष्टानि बिभ्यतो जन्मभिर्भृशम् ॥ २७ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञात्वा विज्ञानचक्षुषा ॥ २८ ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम् ॥ न जलं तु त्वया दत्तं वैशाखे माधवप्रिये ॥ २९ ॥

जितने नक्षत्र आकाशमें हैं, उतनी गौवें मैंने दान करीं ॥ २२ ॥ औरसब यज्ञ मैंने किये तथा मैंने जलाशयभी वहुत वनवाये. अन्यभी अनेक दान दिये और धर्मपूर्वक राज्य किया ॥ २३ ॥ तौभी मेरी दुर्गति हुई और स्वर्ग नहीं मिला. तीन वार मैं चातक हुआ. एकवार गीधपक्षी हुवा ॥ २४ ॥ सातजन्म कुत्ताका शरीर पाया. हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार मैं पूर्वयोनियोंमें जन्म पाकर अब इस जन्ममें यह राजा आपका चरणोदक छिडक रहा था ॥ २५ ॥ तव दूरसे एक वूंद उछलकर मेरे ऊपर आ पड़ा. उस वूंदके प्रभावसे मुझको अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आया और मेरे सब पाप नाश हो गये ॥ २६ ॥ हे द्विज ! अट्ठाईस जन्मपर्यन्त मुझको छिपकलीकी योनि भोगनी पडेगी. इसप्रकार दैवी सृष्टि दीख पडती है. अब मैं इन जन्मोंसे डरता हूं ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! ' इस योनिके पानेका ' कोई कारण नहीं देखता हूं, सो आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये. " गोधाने जब यह कहा, तब ब्राह्मण श्रुतदेवजी ज्ञानचक्षुद्वारा वृत्तान्त जानकर कहने लगे ॥ २८ ॥ " हे राजन् ! सुनो, तुम्हारे दुर्योनियोंमें जन्मनेका कारण कहता हूं.

तुमने माधवभगवान्‌के प्यारे वैशाखमासमें जलदान नहीं दिया ॥ २९ ॥ उस जलको तुमने सुलभ मानकर 'विना मूल्यका है' ऐसा निश्चय कर लिया और घामसे पीडित द्विजातियोंको अज्ञानतासे जलदान नहीं दिया ॥ ३० ॥ तथा पात्रोंको छोडकर कुपात्रोंको दान दिया. प्रज्वलित अग्निको छोडकर राखमें आहुति नहीं दी जाती है ॥ ३१ ॥ अधिक प्रशंसित और सुगन्धआदिसे युक्त होनेपरभी कांटेदार वृक्षकी पूजा कोईभी नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥ सब वृक्षोंमें पीपल वृक्षकी पूजा होती है, तुलसीके वृक्षको

तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम् ॥ नाध्वगानां द्विजातीनां घर्मकालेऽप्यजानता ॥ ३० ॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य सुपात्रे प्रतिदत्तवान् ॥ ज्वलंतमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३१ ॥ बहुधा वर्णितस्यापि सौगंध्यादियुतस्य च ॥ कंटकान्वितवृक्षस्य न कुर्वंति समर्चनम् ॥ ३२ ॥ विशिष्टानां पादपानामश्वत्थः सेव्यतां गतः ॥ तुलसीं तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते न किम् ॥ ३३ ॥ अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रयोजकतामियात् ॥ पंग्वाद्या येप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ ३४ ॥ तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः ॥ विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥ ३५ ॥ तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि ॥ ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥ ३६ ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः ॥ अवज्ञा साधुवृत्तानामिहामुत्र च दुःखदा ॥ ३७ ॥

छोडकर कटेलीकी पूजा कोई क्यों नही करता ? ॥ ३३ ॥ पूजा करनेके विषयमें पूजा करनेके योग्य अनाथ नहीं हैं. लूले-लंगडेआदि जे अनाथ हैं, वे केवल दयाके पात्र हैं, पूज्य नहीं हैं ॥ ३४ ॥ तपस्वी, ज्ञानी, वेदशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता ये विष्णुरूप हैं और सदैव पूजाके योग्य हैं; इनसे पृथक् कोई पूजाके योग्य नहीं ॥ ३५ ॥ इनमें भी ज्ञानी ब्राह्मण विष्णुके परम प्रिय हैं और राजाओंमेंभी ज्ञानी राजा भगवान्‌को सदा प्यारा है ॥ ३६ ॥ इसकारण, ज्ञानी सदा पूज्य-

पूज्यसेभी अधिक पूज्य है,— ऐसा कहा है और साधुजन जो ज्ञानी नहीं हैं और विष्णुकी भक्तिसे रहित हैं, उनकी अवज्ञा होती है. तथा लोक-परलोकमें उनको दुःख प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ महात्मापुरुषोंकी सेवाही पुरुषार्थचतुष्टयका कारण है अर्थात् महात्माओंकी सेवासे अर्थ—धर्म—काम—मोक्षोंकी प्राप्ति होवे है. परंतु करोडों अन्धे कर्तव्याकर्तव्यको नहीं देखते हैं ॥ ३८ ॥ इसीप्रकार मंदआशयवाले पुरुषोंकी संगति फलदायक नहीं होती है और तीर्थ, मृत्तिका व पाषाण-निर्मित देवताओंसे भी कुछ लाभ नहीं होता है ॥ ३९ ॥ ये बहुतकालमें पवित्र करते हैं और साधु दर्शनमात्रसेही पवित्र कर देते हैं. कोईभी सुशिक्षित पुरुष

सेवा वै महतां पुंसां पुमर्थानां हि कारणम् ॥ कोटयोऽप्यंधजातीनां न पश्यंति यथायथम् ॥ ३८ ॥ एवं मंदाशयानां तु संगतिर्नार्थदा भवेत् ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ३९॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ न साधुसेवनात्क्वापि सीदन्तेऽतः सुशिक्षिताः ॥ ४० ॥ जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाप्यायिता यथा ॥ न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥ ४१ ॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनंदन ॥ वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शांतये ॥ ४२ ॥ भूतं भव्यं भवेद्येनं कर्मजातं विजेष्यसि ॥ इत्युक्त्वाप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ यदा दत्तं ब्राह्मणेन स्नानं चैकदिने कृतम् ॥ तेन ध्वस्ताखिलाघस्तु त्यक्त्वा तां गृहगोधिकाम् ॥ ४४ ॥

साधुसेवासे दुःखी नही होता है ॥ ४० ॥ जैसे जन्ममरण बुढापा आदिका दुःख अमृतपान करनेपर नहीं होता है. तुमने जलदान नहीं दिया; साधुसेवाभी नहीं करी ॥ ४१ ॥ हे इक्ष्वाकुनन्दन ! इसीसे तुम्हारी यह दुर्गति हुई है. अब वैशाखमासमें हमने जो पुण्य किया है, वह तुम्हारी शान्तिके अर्थ तुमको देंगे ॥ ४२ ॥ जिससे भूतभविष्यवर्तमान—कर्मोंके संस्कार नष्ट हो जायँगे. इसप्रकार कहकर जल लेके उत्तम पुण्य दे दिया ॥ ४३ ॥ जब ब्राह्मणने एक दिनके स्नानका फल दिया, तब उसके सब

पाप दूर हो गये और छिपकलीका शरीर त्यागकर ॥ ४४ ॥ दिव्य विमानपर चढ़कर दिव्य माला-वस्त्र—आभूषण धारण कर मैथिलराजाके घरके बीच सब प्राणियोंके देखतेही ॥ ४५ ॥ हाथ जोड़, परिक्रमा दे, प्रणाम कर आज्ञा लेके स्वर्गको चला गया. देव स्तुति करने लगे ॥ ४६ ॥ वहां दशहजार वर्ष अनेक भोग भोगकर वही राजा इक्ष्वाकुके वंशमें महाराजा काकुत्स्थ हुआ ॥ ४७ ॥ सात द्वीपवाली पृथ्वीका पालक, ब्राह्मणभक्त, साधुसेवी, इन्द्रका सखा और विष्णुका अंश ऐसा महाराजा हुआ ॥ ४८ ॥

दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ॥ पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥ ४५ ॥ बद्धांजलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४६ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान् वर्षायुतमतंद्रितः ॥ स एव चेक्ष्वाकुकुले काकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपवतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसंमतः ॥ देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः ॥ ४८ ॥ बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान् मनोरथान् ॥ अनुष्ठायाखिलान् धर्मांस्तेन ध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४९ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान् ॥ वैशाखः शुभदस्तस्मात् पुंभिः सर्वैरनुष्ठितः ॥ ५० ॥ आयुर्यशःपुष्टिदोयं महापापौघनाशनः ॥ पुमर्थानां निदानं च विष्णुः प्रीणात्यनेन तु ॥ ५१ ॥ चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः ॥ अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ छ ॥

तब महर्षि वसिष्ठजीने वैशाखमासमें कहे हुये धर्म राजाको सुनाये; जिन सब धर्मोंके करनेसे राजाके सब अमंगल दूर हो गये ॥ ४९ ॥ और दिव्य ज्ञान पाकर वह राजा विष्णु भगवान्‌की सायुज्यताको प्राप्त हुवा. यह वैशाखमास शुभफल देनेवाला है, इसकारण इसमें सब पुरुषोंको नियमपूर्वक धर्म करना उचित है ॥ ५० ॥ उक्त धर्म करनेसे आयु-कीर्तिकी वृद्धि होती है, सब पाप दूर हो जाते हैं. पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति होती है और विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ चारों वर्णोंके सम्पूर्ण

मनुष्य ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ) और चारौ आश्रम ( ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ) धारी मनुष्योंको वैशाखमासके आनेपर उत्तम धर्मानुष्ठान करना उचित है ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांवरीषसंवादे गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले हे राजा अंवरीष ! धर्मात्मा मैथिल-राजा इस अद्भुत चरित्रको देखकर सुखपूर्वक बैठे हुये ब्राह्मणसे हाथ जोड विस्मयकरके बोला ॥ १ ॥ मैथिलराजाने कहा-मैंने यह बडा आश्चर्य देखा तथा साधुओंका चरित्र

॥ नारद उवाच ॥ ॥ राजा तदद्भुतं दृष्ट्वा मैथिलो धर्मवित्तमः ॥ कृतांजलिः सुखासीनं विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥
॥ मैथिल उवाच ॥ ॥ दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितं तथा ॥ येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनंदनः ॥ २ ॥ तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ मह्यं श्रद्धावते विद्वन् ! कृपया विस्तराद्वद ॥ ३ ॥ इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महामनाः ॥ साधु साध्विति संभाष्य व्याजहार नृपोत्तमम् ॥ ४ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ सम्यक् व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ! ॥ वासुदेवप्रियान् धर्मा-ञ्छ्रोतुं यस्मान्मतिस्तव ॥ ५ ॥ बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः ॥ वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥ ६ ॥

देखा. जिस धर्मसे इक्ष्वाकुवंशीय राजा मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ उस धर्मको विस्तारसहित सुननेकी हमारी बडी अभिलाषा है. हे विद्वन् ! मुझ श्रद्धालुके आगे कृपापूर्वक विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ इस प्रकार राजाके पूंछनेपर महात्मा श्रुतदेवजी महाराजको धन्यवाद देकर प्रशंसा करने लगे ॥४॥ श्रुतदेवजी बोले–" हे राजर्षिसत्तम ! तुम्हारी मति बहुत अच्छी है. क्यों कि, वासुदेवभगवान्के प्यारे धर्मोंको सुननेकी तुह्मारी इच्छा हुई है ॥५॥ बहुत जन्मोंके संचित किये पुण्यके विना किसी प्राणीकी बुद्धि वासुदेवकी कथा सुनने

कहनेमें प्रवृत्त नही होती है ॥ ६ ॥ युवावस्थामें राजाधिराज होकर जो तुम्हारी ऐसी निर्मल बुद्धि हुई है, इससे हम तुमको उत्तम साधु मानते हैं॥ ७ ॥ इसकारण, हे सौम्य! तुमारे सामने हम भगवान्के प्रिय धर्मोंको कहते हैं; जिनको जानकर प्राणी जन्ममरणके सांसारिक बन्धनोसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ जिसप्रकार शौच, स्नान, संध्या, तर्पण, अग्निहोत्र और श्राद्धादिक कर्म हैं, उसीप्रकार वैशाखमाससंबंधी सब कर्म हैं ॥ ९ ॥ वैशाखमासमें जो वैष्णव माधवभगवान्के प्यारे धर्मोंको नहीं करता है, वह स्वर्गलोकको

यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी ॥ शुद्धं भागवतं मन्ये तेन त्वां साधुसत्तमम् ॥ ७ ॥ तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य धर्मान् भागवताञ्छुभान् ॥ याञ्ज्ञात्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥ यथा शौचं यथा स्नानं यथा संध्या च तर्पणम् ॥ अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रियाः ॥ ९ ॥ वैशाखे माधवे धर्मानकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् ॥ न वैशाखसमो धर्मो धर्मजातेषु विद्यते ॥ ॥ १० ॥ संत्येव बहवो धर्माः प्रजाश्चाराजका इव ॥ उपद्रवैश्च लुप्यंति नात्र कार्या विचारणा॥ ११ ॥ सुलभाः सकला धर्माः कर्तुं वैशाखचोदिताः ॥ उदकुंभः प्रपादानं पथि च्छायादिनिर्मितः ॥ १२ ॥

नहीं जाता है. सब धर्मोंमें वैशाखमासके धर्मसे उत्तम कोई धर्म नही है ॥ १० ॥ जगत्में बहुतसे धर्म हैं, जो विना वैशाखधर्मके ऐसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे विना राजाकी प्रजा उपद्रवोंकरके विनाश हो जाती है. इसमें कुछभी संदेह नही है ॥ ११ ॥ वैशाखमें जो धर्म करनेको कहे गये हैं, वे सब सुलभ हैं. जैसे जलका घट दान देना, प्याऊ लगाना, मार्गमें पथिकोंको छाया कराना ॥ १२ ॥

जूता, खड़ाऊं, छतरी, पंखा तथा तिलसहित मधदान, परिश्रमनिवारणार्थ गोरसका दान ॥ १३ ॥ बावडी–कुवा–तालाव आदि और धर्मशाला बनवाना, नारियल, ईख, कपूर, एवं कस्तूरीका दान ॥ १४ ॥ चन्दनादिसुगंधिलेपन तथा शय्या, खट्वादान, आमके फल, रसीली ककडी आदिका दान ॥ १५ ॥ दौनाके फूलोंका दान तथा सायंकालमें गुडका शर्बत, सबप्रकारके अन्नका दान तथा प्रतिदिन दही और अन्नका दान ॥ १६ ॥ तांबूलका सदा दान, चैतकी अमावसको करीलका दान, सूर्योदयसे पहले

उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा ॥ तिलयुक्तमधोर्दानं गोरसानां श्रमापहम् ॥ १३ ॥ वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् ॥ नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥ १४ ॥ गन्धानुलेपनं शय्या खट्वादानं तथैव च ॥ तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥ १५ ॥ दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम् ॥ चित्राण्यन्नानि पूर्णायां दध्यन्नं प्रत्यहं तथा ॥ १६ ॥ तांबूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् ॥ रवावनुदिते पूर्वं प्रातःस्नानं दिने दिने ॥१७॥ मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा ॥ अभ्यंगवर्जनं चैव तथा वै पत्रभोजनम् ॥ १८ ॥ मध्ये मध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च ॥ सुगंधैः कोमलैः पुष्पैः प्रत्यहं पूजनं हरेः ॥ १९ ॥ फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपौ दिने दिने ॥ गोग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम् ॥ २० ॥ गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम् ॥ पथिकानां प्रश्रयं च दानं तंडुलशाकयोः ॥ एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥ २१ ॥

नित्यप्रति प्रातःसमय स्नान करना ॥१७॥ मधुसूदनभगवान्‌की पूजा और कथाश्रवण करना, शरीरपर तैलादिमर्दन नहीं करना, पत्तेपर भोजन करना ॥१८॥ बीचबीचमें मार्गसे थकेहुये पथिकजनोंको पंखाकी वायुसे सुख देना, प्रतिदिन सुगन्धित फूलोंसे भगवान्‌का पूजन करना ॥१९॥ दिनदिन फल, दही, अन्न, नैवेद्य, धूप, दीप, गौवोंको ग्रास तथा उनको कोमल घास देना, ब्राह्मणोंके चरण धोना ॥२०॥ गुड, सोंठ और आवलोंका चूर्ण देना, यात्रियोंको आश्रय देना, चावल और शाक दान करना, ये सब धर्म वैशाखमासमें

उत्तम कहे हैं ॥ २१ ॥ तथा विष्णुभगवान्‌को फूल अर्पण करना और समयानुसार पत्रआदिसें हरिकी पूजा करना, दही, अन्न और नैवेद्यका निवेदन ये सब पापसमूहको नाश करनेवाले हैं ॥२२॥ जो स्त्री, ब्राह्मणके बताये माधवभगवान्‌का पूजन घर व मंदिरमें फूलोंसे नहीं करे,तो उसको पुत्र और सुखकी कहींभी प्राप्ति नहीं होती है और उसके पतिकी आयु नष्ट हो जाती है और अपनी आयुभी नष्ट हो जाती है॥२३॥ धर्मके सेतु विष्णुभगवान, लक्ष्मी, मुनिगण व देवताओंको साथ लेके इस वैशाखमासमें प्रजाकी परीक्षाके अर्थ घरघर जाते हैं जो मूढ इससमय फूलआदिसे पूजन नहीं करता है ॥२४॥ वह मूढात्मा रौरवनरकमें जाता है; फिर पांचवार राक्षसकी योनिमें जन्म पाता है. इस महीनामें

तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजा च कालोचितपल्लवाद्यैः ॥ दध्यन्ननैवेद्यनिवेदनं च समस्तपापौघविनाशहेतुः ॥ २२ ॥ नारी पुष्पैर्माधवं नार्चयेद्या द्विजाख्यातं मंदिरे वा गृहे वा ॥ पुत्रं सौख्यं क्वापि नाप्नोति हंति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन् ॥ २३ ॥ रमासहाये माधवे मासि विष्णोः परीक्षायै धर्मसेतोः प्रजानाम् ॥ गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढः ॥ २४ ॥ स मूढात्मा रौरवं प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पंचवारम् ॥ जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन् क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतोः ॥ २५ ॥ तिर्यग्जंतुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः ॥ अन्नादाने चानुभूतां कथां ते मया वक्ष्ये चाद्भुतां भूमिपाल ॥ २६ ॥ रेवातीरे मत्पिताऽभूत्पिशाचः स्वमांसाशी क्षुत्तृषा श्रांतगात्रः ॥ छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥ २७ ॥

भूखसे पीडित प्राणियोंकी प्राणरक्षाके निमित्त जल और अन्नका अवश्य दान करे ॥ २५ ॥ जलदान नहीं करनेसे पशुकी योनि प्राप्त होती है और अन्नदान न करनेसे पिशाच होता है. अन्नदान न करनेके संबंधकी एक अद्भुत कथा जो अनुभवसिद्ध है, सो हे राजन्! हम तुमारे आगे वर्णन करते हैं॥२६॥ नर्मदानदीके तटपर हमारा पिता पिशाच हो गया था और अपना मांस खाता था. भूख प्यासके मारें उसके अंग शिथिल हो गये थें. छायारहित सेमरवृक्षके जडपर अन्न न मिलनेसे उसकी चैतन्यता नष्ट हो गई थी ॥ २७ ॥

पूर्वे कियेहुये दुष्टकर्मोंसे जिसकी भूख व प्यास बढगई और कंठनालका छिद्र बहुतही छोंटा हो गया तथा कंठके बीचमें मांस उठ आया. जिसकी पीडासे प्राण निकले जाते थे ॥ २८ ॥ कुवां, बावडी और तालावके शीतल जलको देखकर उस जलको हालाहलविष समझता था. उसी समीप मार्गमें मैं दैवयोगसे गंगायात्राके निमित्त जा रहा था. नर्मदाके किनारे वहीं आया ॥ २९ ॥ सेमरवृक्षकी जडपर यह अद्भुत दृश्य देखा कि एक पिशाच बैठा हुवा अपना मांस खारहा है और 'प्यास ! प्यास ! !' रटता हुआ

क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य वृद्धी सूक्ष्मं छिद्रं कंठनालस्य चासीत् ॥ मांसं चांतः कंठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव ॥ २८ ॥
चलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कूपं शीतं वापिकासारसंस्थम् ॥ तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गंगायात्राकारणान्मार्गमध्ये ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा-
द्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले तृष्णा तृष्णा भक्षयंतं स्वमांसम् ॥ क्रोशंतं तं बहुधा शोच्यमानं क्षुधा तृषा व्यथितं कर्मभिः स्वैः ॥३०॥ स मां हन्तुं
प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च ॥ तं चाब्रुवं कृपया क्लिन्नचित्तो मा भैष्ट त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम् ॥ ३१ ॥ कस्त्वं तात ब्रूहि
सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये माविषीद ॥ इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन् पुराऽऽनर्ते भूवराख्ये पुरे च ॥ ३२ ॥ नाम्ना मैत्रः
संकृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः ॥ मयाऽधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थावगाहः ॥ ३३ ॥

भूखप्याससे पीडित अपने कर्मोनुसार शोचमे पडा था ॥ ३० ॥ वह मुझको मारनेके लिये दौडा, परंतु मेरे तेजको न सहकर गिर पडा. तब मेरे हृदयमें दया प्रगट हुई और उससे कहा कि–" डरो मत ॥ ३१ ॥ तुम कौन हो ? हे तात ! शीघ्र बताओ इसका कारण क्या है ? मैं तुमको इस कष्टसे अभी छूडा दूंगा. खेद मत करो." जब इसप्रकार हमने कहा, तब मुझको अपना पुत्र न जानकर पिशाच कहने लगा कि–" पूर्वसमय आनर्तदेशमें एक भूवर नामक नगर था ॥ ३२ ॥ वहां मेरा नाम मैत्र था. संकृतगोत्रमें मैं

उत्पन्न हुआ था. तप–विद्या–दान–यज्ञ आदिमें मेरी बडी निष्ठा थी. मेने सब विद्याओंको पढा, पढाया और सब तीर्थोंमें स्नान किया ॥ ३३ ॥ वैशाखमासमें मैने लोभसे भिक्षामात्रभी अन्नदान नहीं किया. इससे मेरे विचारमें यही आता है कि– " इसी कारण मुझको पिशाचयोनि मिली. " हे अंग! ठीक ठीक यही कारण है; और कोई कारण नही है ॥ ३४ ॥ मेरे घरमें इससमय भी मेरा पुत्र श्रुतदेव नामक बहुत विख्यात है, उससे मेरी यह दशा कह देना कि–" तुमारा पिता वैशाखमें अन्नदान न करनेसे पिशाच

दत्तं नान्नं मासि वैशाखसंज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्यंग काले ॥ शोचे चाहं प्राप्य पैशाचयोनिं नान्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमंग ॥३४॥ पुत्रोऽ-
धुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाभिधानः ॥ वाच्या तस्मै मद्दशा चात्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ॥ ३५ ॥ दृष्ट-
स्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले ॥ खादन्मांसं स्वीयमेवानुखिद्यत्पितुर्मुक्त्यै मासि वैशाखसंज्ञे ॥ ३६ ॥ प्रातः
स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च ॥ देयं चान्नं द्विजवर्यं गुणाढ्यं मुक्तो यो वै याति विष्णोः पदं च ॥ ३७ ॥
इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्ददेति कृपा चैषा मत्कृते नात्र शंका ॥ भद्रं भूयात्सर्वतो मंगलं ते श्रुत्वा चाहं भाषितं मे पितुश्च ॥ ३८ ॥

हुवा है ॥ ३५ ॥ नर्मदानदीके किनारे तुमारा पिता वृक्षकी जडपर बैठा है और स्वर्गको न जाकर अपना मांस खाता है इससे महापीडित है. अपने पिताकी पिशाचयोनि छुडानेको वैशाखमासमें ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल स्नान कर, विष्णुभगवान्की पूजा कर, भक्तिपूर्वक निर्मलजलसे मेरा तर्पण कर किसी गुणवान् श्रेष्ठब्राह्मणको अन्नदान करै; कि जिससे मैं विष्णुपदको प्राप्त होऊँ ॥ ३७ ॥ यह जो कुछ मैने तुमसे कहा, सो तुम मेरे पुत्रसे कह दोगे तो मुझपर बडी दया करोगे. इसमें

कुछ सन्देह नही और इस उपकारसे सब प्रकार तुझ्मारा कल्याण होगा." इसप्रकार मेरे पिताने कहा, सो मैं पिताकी बात सुनकर ॥ ३८ ॥ दुःखसे पीडित हो काष्ठकी नाईं उसके पावोंपर गिरकर बहुत देरतक पडा रहा और वारंवार अपनी निंदा कर नेत्रोंमें आँसू भर लाया और बोला—" हे पिता ! मैं तुमारा पुत्र हूं; यहाँ दैवयोगसे आ गया हूं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंमें कोई कर्मभ्रष्ट और निन्दायोग्य नहीं, जिससे पितरोंको मोक्ष प्राप्त नही हुई. तुम अब यह कहो कि किस कर्मसे तुमारी मुक्ति

दुःखात्कायं दंडवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरि कालम् ॥ निंदन्निंदन् भूर्यहं बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात दैवागतोऽहम् ॥ ३९ ॥ कर्मभ्रष्टे भूसुराणां विनिंद्यो नाभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम् ॥ आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तो भविता वै तत् करोमि द्विजेन्द्र ! ॥ ४० ॥ ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम् ॥ प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्यान्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम् ॥ ४१ ॥ दानं देहि द्विजवर्यै महात्मँस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य ॥ पित्राऽऽदिष्टः कृतयात्रः स्वगेहं प्राप्याकरं माधवे चान्नदानम् ॥ ४२ ॥ तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनंद्याशिषा च ॥ गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं यस्मिन् गता न निवर्तंति भूयः ॥ ४३ ॥

होवे ! हे द्विजेन्द्र ! वही उपाय मैं करूं " ॥ ४० ॥ तब वह प्रसन्न होकर बोला कि–" यात्रा करके शीघ्र घर आय मेषराशिको संक्रान्तिमें विष्णुभगवान्के हेतु गुणवान् ब्राह्मणको अन्नदान देकर ॥ ४१ ॥ अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको और साधुमहात्माओंको अन्नदान देना. इससे सहकुटुम्ब मेरी मुक्ति हो जायगी." यह सुन पिताकी आज्ञाके अनुसार तीर्थयात्रा कर घरमें आय, वैशाखमासमें अन्नदान दिया ॥ ४२ ॥ इससे मेरा पिता मोक्षको प्राप्त हो विमानपर चढ, मुझको आशीर्वाद देके विष्णुलोकको जाकर फिर संसारमें

नहीं आते हैं अर्थात् जहाँसे फिर जन्ममरणमें नहीं आना पडता है ॥ ४३ ॥ इसकारण दान धर्मोंमें श्रेष्ठ कहा है. हे राजन् ! सब धर्मोंका सारभूत अन्नदान है. अब और क्या तुमारी सुननेकी इच्छा है सो कहो. तुमारा प्रश्न सुनकर मैं सत्य सत्य कहूंगा. " ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ मैथिल राजाने पूछा–" हे ब्रह्मन् ! इक्ष्वाकुवंशीय राजा जलदान न करनेसे तीन जन्मोंतक चातक हुआ. फिर मेरे घरमें आकर गोधिका हुआ

तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुभ्यं प्रोक्तं धर्मसारं सधर्म्यम् ॥ किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम् ॥ ४४ ॥
॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ मैथिल उवाच ॥ ब्रह्मन्निक्ष्वा-
कुतनयो जलादानाच्च चातकः ॥ त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहे गोधिका तथा ॥ १ ॥ कर्मानुगुणमेतद्धि युक्तं तस्याकृतात्मनः ॥ सताम-
सेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥ २ ॥ सप्तवारमिति प्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम् ॥ संतो न दूषितास्तेन न तथा कृपणा अपि
॥ ३ ॥ तस्मादसेविनस्तस्य फलाभावो भवेद्ध्रुवम् ॥ नानार्थकरणाभावादिदं हि परपीडनम् ॥ ४ ॥ अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनि-
त्वमवाप्तवान् ॥ तदेतत्संशयं छिंधि शिष्यस्यात्मप्रियस्य च ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ यह कर्मोंके अनुसारही है. उसके कर्मोंका यही फल था. साधुमहात्माओंकी सेवा न करनेसे उसने गिद्धकी योनि पाई ॥ २ ॥ परंतु सातवार कुत्तेकी योनिमें होना जो आपने कहा यह मुझको अनुचित प्रतीत होता है. क्योंकि, इसने सन्तमहात्माओंको क्लेश नहीं दिया और कृपणोंकोभी दुःख नहीं दिया ॥ ३ ॥ सेवा नहीं करनेसे उसको फल नहीं मिलना चाहिये यह ठीक है. नानाप्रकारके अर्थ करनेके अभावसे यही औरोंके कष्ट देना है ॥ ४ ॥ किस कारण इसको विना

निमित्तके कुयोनि प्राप्त हुई ? हे विप्रवर ! मैं आपका प्रिय शिष्य हूं; मेरा यह सन्देह आप दूर कीजिये ॥ ५ ॥ ” राजाके इसप्रकार पूंछनेपर महायशस्वी श्रुतदेवजी धन्यधन्य कहकर कहनेको उद्यत हुये ॥ ६ ॥ श्रुतदेव बोले“–हे राजन् ! तुमने जो पूछा है उसको सुनौ; मैं कहता हूं. हे पाप-रहित ! कैलासपर्वतके रमणीय शिखरपर पार्वतीजीसे शिवजीने यही बात कही थी ॥७॥ सब लोकोंको रचकर उनकी आमुष्मिकी और ऐहिकी दो प्रकारकी स्थिति रची ॥ ८ ॥ मत्येकके तीन हेतु अर्थात् भेद हेतुकी स्थितिके निमित्त माने हैं. जैसै-जलसेवा, अन्नसेवा और औषधसेवा ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! ये तीनैं इसलोककी स्थितिके हेतु हैं

इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महायशाः ॥ साधु साध्विति संभाष्य वचो व्याहर्तुमादधे ॥ ६ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ ! ॥ शिवायै च शिवेनाक्तं कैलासशिखरेऽमले ॥ ७ ॥ सृष्ट्वेमान् सकलांल्लोकान् पश्चात्तेषामवस्थितिम् ॥ आमुष्मिकीमैहिकीं च द्विविधां पर्यकल्पयत् ॥८॥ हेतुत्रयं च प्रत्येकं हेतुस्थित्यै महाप्रभुः ॥ जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च ॥९॥ यत्र एते महाभाग ह्यैहिकस्थितिहेतवः ॥ एवमामुष्मिके राजंस्त्रय एवेरिताः श्रुतौ ॥१०॥ साधुसेवा विष्णुसेवा सेवा धर्मपथस्य च ॥ पुरा संपादिताऽह्येते परलोकस्य हेतवः ॥ ११ ॥ गृहसंपादितं यद्वत् पाथेयं पद्धतौ यथा ॥ ऐहिका हेतवो राजन् ! सद्यः सम्पादितार्थदाः ॥ १२ ॥ किं चेष्टमपि साधूनां मनसो यदि दुःसहम् ॥ कुतश्चित्कारणाद्राजन् ! तच्चानर्थाय कल्पते ॥ १३ ॥

इसीप्रकार वेदोंमें पारलौकिकस्थितिके हे राजन् ! तीन हेतु हैं ॥ १० ॥ साधुसेवा विष्णुसेवा और धर्ममार्गकी सेवा. ये तीनौ परलोककी स्थितिके हेतु हैं ॥ ११ ॥ जिसप्रकार घरमें इकट्ठा किया धन आदि मार्गके व्यय ( खर्च ) में काम आता है, इसीप्रकार ऐहिक ( इसलोकसंबंधी ) हेतुओंका करना हे राजन् ! तत्काल धनसंपत्तिप्रदान करता है ॥ १२ ॥ किंच साधुओंके यदि दुस्साध्य मनोरथ भी हों तोभी सिद्ध हो जाते है, परन्तु हे राजन् ! वही किसी कारणसे अनर्थका हेतु हो जाते हैं ॥ १३ ॥

अप्रिय वचन बोलनाभी दुःखका हेतु हो जाता है. इसके उदाहरणमें हम एक पुरातन इतिहास वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥ पापनाशक और परमाश्चर्यकारक तथा रोमांच ही आनेवाली इतिहास है. एक समय दक्ष प्रजापतिजीने यज्ञप्रारंभ किया ॥ १५ ॥ उस यज्ञमें महादेवजीको बुलानेके अर्थ कैलासको गये. उसको देखकर उसीकी हितकी कामनासे शिवजी नहीं उठे ॥ १६ ॥ मैं सब देवताओंका गुरु हूं. वेदसे जाननेयोग्य सनातन हूं. ये चन्द्रइन्द्र आदि सब देवता यज्ञका भाग लेनेवाले सेवक हैं ॥ १७ ॥

अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम् ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ १४ ॥ पापघ्नं महदाश्चर्यं शृण्वतां रोमहर्षणम् ॥ यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥ १५ ॥ आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम् ॥ तं दृष्ट्वा नोत्थितः शंभुस्तस्यैव हितकाम्यया ॥ १६ ॥ सर्वामरगुरुश्चाहं छन्दोगम्यः सनातनः ॥ भृत्या ह्येते बलिहराश्चंद्रेंद्राद्याः सुरेश्वराः ॥ १७ ॥ स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा ॥ गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥ १८ ॥ न संबंधो गुरुत्वे च कारणं त्विति वै श्रुतिः ॥ बलं ज्ञानं तपः शांतिर्यत्र चैवाधिकं भवेत् ॥ १९ ॥ स गुरुश्चेतरेषां च नीचा ईयुश्च प्रेष्यताम् ॥ उत्तिष्ठंति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्य दि चाग्रहात् ॥ २० ॥ आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यति संततिः ॥ तस्मादहं तु नोत्तिष्ठे प्रियोऽयं श्वशुरो मम ॥ २१ ॥

स्वामी, सेवकके लिये नहीं उठता है तथा पति स्त्रीके लिये, गुरु शिष्यके लिये, नहीं उठता है. यह शास्त्रके जाननेवालोंका मत है ॥ १८ ॥ बडप्पनमें संबंध नहीं माना जाता है, यह वेदका मत है. जिसमें बल, ज्ञान, तप और शान्ति इनकी अधिकता होती है ॥ १९ ॥ वही अन्य सब प्राणियोंका गुरु होता है. उससे नीचे भृत्य 'समान' होते हैं । जो स्वामीआदि, सेवक आदिके लिये आग्रहसे उठते हैं ॥ २० ॥ उनकी आयु, धन, यश और संतति इनका विनाश हो जाता

है. इसकारण, मुझको उठना उचित नहीं है. यह हमारा प्यारा श्वशुर है ॥ २१ ॥ इसप्रकार विचार कर दक्षजीके हितकी इच्छासे महादेवजी आसनसे नहीं उठे. जब दक्ष प्रजापतिने देखा कि-"महादेवजीने उठकर हमारा सन्मान नहीं किया" तब दक्षप्रजापति क्रोधित हुवा ॥ २२ ॥ और महादेवजीके आगे महादेवजीको अनेक दुर्वचन कहकर निन्दा करने लगा कि-" अहो बडे आश्चर्यकी बात है कि इस अकृतात्मा दरिद्रीको इतना बडा अहंकार है ॥ २३ ॥ बूढा बैल जिसके शरीरपर केवल चामही रह गया वही

इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालासनाद्विभुः ॥ नोत्थितं तु मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥ २२ ॥ अनिंदद्बहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः ॥ अहो ! दर्पमहो ! दर्पं दरिद्रस्याकृतात्मनः ॥ २३ ॥ यस्य वित्तं बहु वयो वृषश्चर्मावशेषितः ॥ अत एव कपालास्थिधरः पाखंडगोचरः ॥ २४ ॥ वृथाऽहंकारिणो दैवं कुतो दास्यति मंगलम् ? ॥ लोके कृत्येन कर्माणि शुचीनीति विदो विदुः ॥ २५ ॥ धत्ते दरिद्रः शीतार्तः पवित्रं च गजाजिनम् ॥ वेश्म श्मशानं यस्य स्याद्भुजंगः किल भूषणम् ॥ २६ ॥ न धीरतापि च ज्ञानं वृकात्तस्मात्पलायितः ॥ भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैः संगतोऽनिशम् ॥ २७ ॥ न कुलं श्रूयते क्वापि नासौ वे साधुसंमतः ॥ वृथा विश्रंभितः पूर्वं नारदेन दुरात्मना ॥ २८ ॥

इसका धन है; कपालकी हड्डी धारण किये, महापाखंडी ॥ २४ ॥ वृथाभिमानी. इसका भगवान् कैसे भला करेंगे ? यह कोई अच्छा काम नहीं करता है और महाअपवित्र है. यह सबही विद्वान् भली भांति जानते हैं ॥ २५ ॥ दरिद्रके मारे शीतसे व्याकुल रहता है और पवित्र गजके चामको धारण करता है. स्मशान इसका घर है. सांपोंका आभूषण है ॥ २६ ॥ न धीरता है, न ज्ञान है, इसीसे भस्मासुरसे डरकर भाग चला. भूत-प्रेत-पिशाचआदि दुर्जनोंके संग रातदिन रहता है ॥ २७ ॥ न इसका कहीं कुलका

ठिकाना सुननेमे आया. न साधुजन इसकी प्रशंसा करते हैं. दुरात्मा नारदने पहले वृथाही इसकी प्रशंसा करी थी ॥ २८ ॥ जिसके समझानेसे मैंने अपनी सती कन्याका इसके साथ विवाह कर दिया. यहभी पृथग्धर्मवाली हो गई है. वह सुखसे इसीके घरमें वास करै ॥ २९ ॥ हम इसकी कभी बडाई नहीं कर सकते. मेरी पुत्रीसे भी मुझको कुछ प्रयाजन नहीं है जैसे कुम्हारका घडा चांडालके हाथ लगकर किसी कामका नहीं रहता ॥ ३० ॥ इसप्रकार निन्दा कर मूढात्मा दक्षने उमा और शिवजी-को निमत्रंण नहीं दिया और उनको अनेक निन्दित वचन कहकर चुपचाप घरको चला गया ॥ ३१ ॥ अनन्तर यज्ञस्थानमे जाय ऋत्विज और मुनियोंसहित विधिसे

येनाहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतां सतीं मम ॥ पृथग्धर्मगता चैषा सुखं वसतु तद्गृहे ॥ २९ ॥ नास्माभिः श्लाघनीयोऽसौ मत्सुतापि कथंचन ॥ यथा कुलालकलशश्चांडालस्य वशं गतः ॥ ३० ॥ इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमां नाहूय तं मृडम् ॥ बहुधा तं विनिर्भर्त्स्य तूष्णीमेव गृहं ययौ ॥ ३१ ॥ यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह ॥ ईजे यज्ञविधानेन निंदन्नेव महाप्रभुम् ॥३२॥ ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः ॥ सिद्धचारणगंधर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः॥३३॥ तथा देवी सती पुण्या स्त्रीचांचल्यात्प्रलोभिता ॥ उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं बंधूंस्तत्र समागतान् ॥ ३४ ॥ निवार्यमाणा रुद्रेण तरला स्त्रीस्वभावतः॥ प्रत्युक्तापि पुनश्चैव गंतव्यमिति निश्चिता ॥३५॥ स निंदति सभामध्ये सदा मां वरवर्णिनि ॥ तच्चासह्यं च त्वं श्रुत्वा क्वायं सत्यं त्यजिष्यसि ॥ ३६ ॥

यज्ञ करलगा और महाप्रभु ( शिवजी )की निंदाही करता रहा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा–विष्णु उस यज्ञमें नहीं गये और सिद्ध, चारण, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, तथा सब देवता यज्ञमें आये ॥ ३३ ॥ तब सती देवीको स्त्रियोंके चंचल स्वभावके अनुसार मन ललचाया. पिताके यज्ञोत्सवके देखने की उत्कंठा हुई. वहाँ बन्धुजन आवेंगे यह विचार कर जानेकी उद्यत हुई ॥ ३४ ॥ महादेवजीने रोका तो भी स्त्रीस्वभावसे सतीजीने नहीं माना और यज्ञमें जानेके लिये मनमें निश्चय कर लिया ॥ ३५ ॥ शिवजी सतीसे

बोले—हे वरवर्णिनि! वह ( दक्ष ) सभाके बीच सदा हमारी निंदा करता रहता है. उसको सुनकर तुम नहीं सह सकोगी और अपना शरीर त्याग कर दोगी ॥ ३६ ॥ असह्य होनेपरभी हमने घरबने रहनेकी इच्छासे उसके वचन सह लिये. हे देवि ! तुमसे सत्य कहता हूं कि जैसा मैने किया वैसा तुमसे नहीं हो सकेगा ॥ ३७ ॥ इसकरण तुम यज्ञशालोंमें मत जाओ. तुमारा कल्याण नहीं होगा. मुझको ऐसा जान पडता है. इसप्रकार समझानेपर भी सतीदेवीका मन फिर चंचल हुआ ॥ ३८ ॥ घरसे निकलकर तस

असह्यमपि सोढव्यं मयापि गृहमिच्छता ॥ मया यथा कृतं देवि तथा त्वं नैव वर्तसे ॥ ३७ ॥ तस्मान्मा गच्छ शालां वै न शुभं तु भवेद्ध्रुवम् ॥ इत्येवं बोधिता देवी चापल्यं पुनरागमत् ॥ ३८ ॥ निश्चक्राम सती गेहादेकैव पादचारिणी ॥ तां दृष्ट्वा वृषभस्तूर्णीं पृष्ठे देवीमुवाह सः ॥३९॥ कोटिशो भूतसंघाश्च ह्यनुजग्मुः सतीं तदा ॥ यज्ञ वाटं तु सा गत्वा पत्नीशालां ययौ पुरा ॥ ४० ॥ तूष्णीमासन्सती दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता ॥ पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥ ४१ ॥ पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूर्णीं हताशिषः ॥ सा रुद्राहुतिपर्यन्तं पश्यन्ती पितृचेष्टितम् ॥ ४२ ॥

अकेलेही चल दी. सतीको जाते देखकर नन्दी वृषभने चुपचाप अपनी पीठपर चढा लिया ॥ ३९ ॥ करोडों भूतादिगण पीछे हो लिये तब सतीजी यज्ञशालामें जाकर पहले महलके भीतर गई ॥ ४० ॥ वहां कोई न बोला, तब सती यह चरित्र देख खेदयुक्त हो बाहर चली आई और पतिका वचन स्मरण कर वहां गई जहां यज्ञ हो रहा था ॥ ४१ ॥ दक्ष और सभासदगण सतीको देख चुप हुये; कुछ नहीं बोले. सती खडी रही रुद्रकी आहुतिपर्यन्त पिताकी ओर देखती रही ॥ ४२ ॥

रुद्रको छोडकर जब दक्षने आहुति दी, तब तो सतीजीके नेत्रोंमें आंसू भर आये और विकल होकर बोली कि—" जो बडोंकी अवज्ञा करता है, उसका प्रायः कल्याण नहीं होता है ॥ ४३ ॥ जो सब लोगोंके कर्ता, सबका स्वामी, अविनाशी और प्रभु, ऐसे रुद्रभगवान्की आहुति तुमने नहीं दी ॥ ४४ ॥ ये जो ऋषि मुनि महात्मा इस यज्ञमें उपस्थित हैं, इन्होंनेभी तुमारी यह दुर्बुद्धि दूर नहीं करी ! इससे जान पडता है कि विधाता इनकेभी विमुख है " ॥ ४५ ॥ इसप्रकार सतीजीके कहनेपर पूषा देवता हंसने लगा और

त्यक्त्वा रुद्रं च जुह्वंतमुवाचाश्रुवाकुलेक्षणा ॥ देव्युवाच ॥ महदुल्लंघनं पुंसां न प्रायः श्रेयसे भवेत् ॥ ४३ ॥ लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः ॥ एवंभूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयते हविः ॥ ४४ ॥ जातां न किं ते दुर्बुद्धिं हरंत्यन्ये समागताः ॥ न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखो विधिः ॥ ४५ ॥ इत्येवं भाषमाणां तां पूषादेवो जहास ह ॥ श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा ॥ ४६ ॥ भुज-पादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे ॥ बहुधा निंदनं चक्रे तत्पिता हतभाग्यतः ॥ ४७ ॥ तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा ॥ प्रायश्चित्तं श्रुतेः कर्तुं देहं तत्याज सा सती ॥ ४८ ॥ होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम् ॥ ४९ ॥ आचख्युर्देवदेवाय वृत्तांतमखिलं तदा ॥ तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रः कालांतकोपमः ॥ ५० ॥

भृगुजी अपनी दाढी हिलाने लगे ॥ ४६ ॥ और बहुतसे भुजा, पांव, ऊरु व कक्षाओंको फडकाने लगे और हतभाग्यसे सतीका पिता ( दक्षप्रजापति ) निन्दा करने लगा ॥ ४७ ॥ सो सुनकर सतीजी क्रोधके मारे मनमें व्याकुल होके निन्दा सुननेका प्रायश्चित्त करनेको अपने शरीरको त्याग दिया ॥ ४८ ॥ सबके देखतेही वेदिकाके बीच होमकी अग्निमें कुद पडी. तब बडा हाहाकर होनेलगा और शिवजीके गण ॥ ४९ ॥ वहांसे दौडकर शिवजीके पास आके वृत्तांत कहा. सो सुनकर सहसा उठके शिवजी कालांतकके

समान क्रोधपूर्वक ॥ ५० ॥ हाथसे जटा उखाड़ पृथ्वीपर पटक दी. तब बडे शरीरका महाबली वीरभद्र प्रगट हुआ ॥ ५१ ॥ हजार भुजाओंवाला यमराजकी कांतिके समान कांतिवाला वह वीरभद्र शिवजीके सन्मुख खडा हो गया और बोला ॥ ५२ ॥ मुझको जिस निमित्त आपने उत्पन्न किया है. वह कार्य बतइये, यह सुनकर शिवजी क्रोधकरके अपने सामने खडे हुये वीरभद्रसे कहने लगे ॥ ५३ ॥ कि तुम मेरे निन्दक दक्षका अभी जाके नाश करो. जिसके कारण हमारी प्रिया सती

जटामुत्पाट्य हस्तेन भूतले तामताडयत् ॥ ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः ॥ ५१ ॥ सहस्रबाहुरभवत्कालांतकसमप्रभः ॥ बद्धांजलिपुटो भूत्वा व्याजहार हरं तदा ॥ ५२ ॥ मत्स्रष्टिस्तु यदर्थं ते तदर्थं मां नियोजय ॥ इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिस्तं पुरः-स्थितम् ॥ ५३ ॥ हन त्वं निंदकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता ॥ भूतसंघास्तु गच्छंतु सहैतेन महाबलाः ॥ ५४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञसभां तदा ॥ जघ्नुः सर्वान् महावीरान् देवासुरनरादिकान् ॥ ५५ ॥ पूष्णश्च हसतो दंतांजटा भ्रूश्च बभंज ह ॥ श्मश्रूण्युत्पाटयांचक्रे भृगोस्तस्य दुरात्मनः ॥ ५६ ॥ यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान् ॥ ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार ह ॥ ५७ ॥

भस्म हो गई महाबलवान् भूतगणोंको आज्ञा दी, कि–" तुमभी साथ जाओ " ॥ ५४ ॥ इसप्रकार शिवजीकी आज्ञासे वे सब यज्ञशालामें गये और पहुचतेही सब महावीर देव, असुर और मनुष्यादिकोंको मार गिराया ॥ ५५ ॥ पूषादेवता दांत निकालकर हंसा था, इसकारण उसके दांत तोड डाले और जटा उखाड डाली और उस दुरात्मा भृगुकी दाढी मूंछ उखाड डाली ॥ ५६ ॥ तथा जिस जिसने जो जो अंग फडकाया था, उसका वही अंग वीरभद्रने उखाड डाला ! अनन्तर दक्षका शिर काटनेके निमित्त बडा उद्योग

किया ॥ ५७ ॥ भृगुमुनि अपने मंत्रबलसे दक्षके शिरकी रक्षा कर रहे थे इससे शिर नहीं कटता था. तब यह जानकर शिवजी स्वयं वहां पहुंचकर उस दुरात्मा दक्षका शिर काट डाला ॥ ५८ ॥ इसप्रकार जितने उस यज्ञमें गये थे, सबको मारकर शिवजी अपने गणोंको साथ लेके कैलासको गये. जो मारनेसे बच गये थे वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ५९ ॥ उनको अपने संग लेके ब्रह्माजी कैलासमें शिवजीके स्थानमें गये; अनन्तर क्रोध शांत करनेवाले वचन कहकर ब्रह्माजीने शिवजीके क्रोधको शान्त किया ॥ ६० ॥

मुनिमंत्रं प्रगुप्तं तु नैव कृंतति तद्बलात् ॥ हरो ज्ञात्वा तु चिच्छेद स्वयमेत्य दुरात्मनः ॥ ५८ ॥ एवं मखगतान् हत्वा सानुगः स्वालयं ययौ ॥ हतावशिष्टाः केचित्तु ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ५९ ॥ तैरन्वितो ययौ ब्रह्मा कैलासं तु शिवालयम् ॥ ततो रुद्रं सांत्वयित्वा वचोभिर्विविधैरपि ॥ ६० ॥ तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः ॥ तेनैवोजीवयामास सर्वान् यज्ञसमागतान् ॥ ६१ ॥ ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तु तदा शिवः ॥ अजश्मश्रूण्यदाच्छंभुर्भृगवे तु महात्मने ॥ ६२ ॥ पूष्णश्च दंतान्न प्रादात्पिष्टादं च चकार ह ॥ तदंगानां व्यतिकरं केषांचिदपि वै शिवः ॥ ६३ ॥ शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च ॥ पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः ॥ ६४ ॥

और शिवजीको साथ ले यज्ञशालामें गये. वहां जितने मारे गये थे, उन सबको जीवदान दिया ॥ ६१ ॥ दक्षका शिर नहीं मिला, तब दक्षके रुंडपर बकराका शिर रखकर जिला दिया और शंभुने महात्माभृगुजीको बकराकी दाढी दे दी ॥ ६२ ॥ पूषादेवताको दांत नहीं दिये कि अन्न पीसकर खा लिया करैगा. किसीका अंग किसीको जोडकर सबके देहको पूर्ण कर दिया ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा और शिवजीकरके उन सबका कल्याण हो गया और फिर पहले जिसप्रकार यज्ञ हो रहा था, उसीप्रकार यज्ञ करनेमें प्रवृत्त

हुये ॥ ६४ ॥ यज्ञको पूर्ण कराकर अंतमें सब देव अपने अपने स्थानको चले गये और महातपस्वी श्रीशिवजी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण कर ॥ ६५ ॥ गंगातटपर पुन्नागवृक्षके नीचे तप करने लगे और दक्षकी कन्या पतिव्रता सती देवी जिसने अपना शरीर त्याग दिया था ॥ ६६ ॥ उसने हिमाचलके घर उसकी मेनका स्त्रीमें जन्म लिया और वहीं बढने लगी. इसी अन्तरमें तारकासुर नामक एक बडा असुर उत्पन्न हुआ ॥ ६७ ॥ उसने घोर तप करके श्रीब्रह्माजीको प्रसन्न किया. ब्रह्माने वरदान दे दिया कि–"देव,

यज्ञान्ते सर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥ नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा रुद्रो महातपाः ॥ ६५ ॥ तेपे गंगातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः ॥
दक्षात्मजा सती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥६६॥ जज्ञे हिमाद्रेर्मेनक्यां ववृधे तस्य वेश्मनि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः
॥ ६७ ॥ सुतीव्रतपसाऽऽराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः ॥६८॥ आयुधैरस्त्रसंघैश्च सर्वैरेव महाबलैः ॥
रुद्रपुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥ ६९ ॥ इति तस्मै वरं प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येति तथास्त्विति
॥ ७० ॥ वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान् बबाध ह ॥ दासा देवा मार्जनादै दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥ ७१ ॥

असुर, नर, नाग किसीसे तेरी मृत्यु नहीं होगी ॥ ६८ ॥ आयुध और अस्त्र-शस्त्रोंसे तू नहीं मरैगा. रुद्र भगवान्‌के पुत्रके विना तुझको कोई नहीं मार सकेगा " ॥ ६९ ॥ इसप्रकार उसको लोकपितामह ब्रह्माजीने वर दिया. तब असुरने विचारा कि– "रुद्रके न स्त्री है, न पुत्र है. तो मुझे कौन मारेगा?" यह विचार असुर बोला कि– 'तथास्तु' अर्थात् 'यही वर ठीक है' ॥ ७० ॥ वर लेके अपने घर आय वह ( असुर ) लोकोंको सताने लगा. देवताओंको उसने दास बना लिया और देवांगनायें दासी बनकर उसके

घर बुहारी देने लगी ॥ ७१ ॥ जब उससे देवतालोग बहुत पीडित हुये तब ब्रह्माजीकी शरण गये. ब्रह्माजी देवताओंकी व्यथा सुनकर बोले ॥ ७२ ॥ कि– " इस असुरको वर देनेके समय हमने कहा है कि–' रुद्रपुत्रके विना तुझको कोई नहीं मार सकैगा.' उस दुरात्माको यह वर हमने दिया है ॥ ७३ ॥ हे देवताओं ! अब यह उपाय करो कि रुद्रपत्नी सतीने अपना शरीर पिताके यज्ञमें त्याग दिया था. अब उसने हिमाचलके घर जन्म लिया है. उसका पार्वती नाम है ॥ ७४ ॥ रुद्रभगवान् हिमालयकी पीठ-

ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ तैः पीडां वर्णितां श्रुत्वा वेधाः प्राह सुरानिदम् ॥ ७२ ॥ वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः ॥ नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ॥ ७३॥ पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा ॥ जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति च यां विदुः ॥ ७४ ॥ रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ७५ ॥ पुनर्देवेंद्रसदने संगतैरमरेश्वरैः ॥ धिषणेनापि संमंत्र्य देवेंद्रः पाकशासनः ॥ ७६ ॥ सस्मार च स कार्यार्थं नारदं स्मरमेव च ॥ तत्रागतौ ततस्तौ तु बलभिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥ हिमवंतं भवान् गत्वा वचसा तं निबोधय ॥ प्राक् पुत्री तव दक्षस्य हरपत्नी सुता सती ॥ ७८ ॥

( शिखर ) पर घोर तप कर रहे हैं. लोकपति प्रभु रुद्र भगवान्का पार्वतीसे विवाह करा दो " ॥ ७५ ॥ तब सब देव इन्द्रसहित अमरावतीपुरीमें आये और बृहस्पतिजीसे सम्मति करने लगे. सम्मति होने उपरांत इन्द्रने ॥ ७६ ॥ अपने कार्यकी सिद्धिके अर्थ, नारदमुनि और कामदेवको बुलाया. वे दोनों आये, तब इन्द्रने कहा ॥ ७७ ॥ " हे नारद ! तुम हिमाचलके घर जाकर यह समझाय आओ कि तुमारी पुत्री (पार्वती) पूर्वजन्ममें दक्षकी पुत्री सती श्रीशिवजीकी पत्नी थी. वही तुमारे घर आकर जन्मी है ॥ ७८ ॥

तपश्चरति ते शृंगे वियुक्तो दक्षकन्यया ॥ मृडस्तस्य सपर्यायै विनियोजय तत्प्रियाम् ॥ ७९ ॥ तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः ॥ इत्यादिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥ ८० ॥ तथैव कारयामास देवेंद्रेणोदितं यथा ॥ पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च ॥ ८१ ॥ देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च ॥ वसंतेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम् ॥८२॥ गुणान् विजृंभयित्वा तु वासंतान् हृच्छयावहान् ॥ यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥ ८३ ॥ तदा प्रयुज्य त्वं बाणान्मोहयस्व महाप्रभुम् ॥ तयास्तु संगमे जाते कार्यं नोद्धा भविष्यति ॥ ८४ ॥ इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ ॥ सवसंतः सरतिकः सानुगस्तद्वनं ययौ ॥ ८५ ॥

दक्षकन्या ( सती ) के वियोगसे तेरे शिखरपर शिवजी तपस्या कर रहे हैं, सो उनकी सेवा करनेको उनकी पत्नीको नियुक्त करौ ॥ ७९ ॥ तुमारी कन्या शिवहीकी पत्नी होगी और वही उसके पति होंगे." इसप्रकार इन्द्रकी विनंती अंगीकार कर नारदजी हिमाचलके यहां गये ॥ ८० ॥ और जिसप्रकार इन्द्रने कहा था, उसी प्रकार नारदजीने काम किया अर्थात् हिमाचलको भलीभांति समझा दिया. नारदजीके जाने उपरान्त इन्द्रने कामदेवको बुलाकर कहा ॥ ८१ ॥ कि– "देवताओं तथा शिवजीके हितकी कामनासे वसंतऋतुको अपने साथ लेके तपोवनमें जाओ; जहां रुद्रभगवान् तप कर रहे हैं ॥ ८२ ॥ वहां जाय तुम चारौ ओर मनको मोहित करनेवाले वसंतऋतुके गुणोंका विस्तार करौ. जब महादेवजीका विवाह होकर पार्वती महादेवजीके समीप पहुँच जाय ॥ ८३ ॥ तव तुम अपना बाण चलाकर महादेवजीको मोहित कर लेना. उनका संगम होनेपर हम लोगोंका कार्य सिद्ध हो जायगा " ॥ ८४ ॥ यह आज्ञा पाय 'बहुत अच्छा' कहकर कामदेव शीघ्रही वसंतऋतु और अपनी स्त्री रति तथा अपने

अनुचरोंको साथ लेके तपोवनको गया ॥ ८५ ॥ और अपनी शक्तिसे विनासमयमें वसंतऋतुको उत्पन्न कर दिया. चारौ ओर वनकी अपूर्व शोभा हो गई. शीतल मंद सुगंध युक्त पवन बहने लगी ॥ ८६ ॥ कदाचित् महादेवजीभी पार्वतीकी सेवासे प्रसन्न हो अपनी गोदमें विठाकर कुछ कहने लगे ॥ ८७ ॥ तब कामदेवने निश्चय किया कि– 'प्राणप्रियाके संगमका यही समय है.' यह विचारकर उत्तम धनुष ले महादेवजीकी पीठकी ओर गया ॥ ८८ ॥ और वृक्षकी ओटसे एक बाण तो छोड दिया और

अकाले तु वसंततुं जृंभयित्वा स्वशक्तितः ॥ तद्वने सर्वतोरम्ये मंदानिलनिषेविते ॥ ८६ ॥ कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया ॥ प्रीतः स्वांकं समारोप्य किंचिद्व्याहर्तुमारभत् ॥ ८७ ॥ प्राणप्रियासंगमस्य कालोऽयमिति निश्चितः ॥ पेशलं धनुरादाय स तस्थौ हरपृष्ठतः ॥ ८८ ॥ कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह ॥ द्वितीयमपि संधाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम् ॥८९॥ अथ क्षुब्धमना भूत्वा मृडश्चिंतामवाप ह ॥ न मे मनश्चलं क्वापि केन वा कश्मलीकृतम् ॥ ९० ॥ इति चिंताकुलो वामे पार्श्वे कामं ददर्श ह ॥ क्रुद्धोन्मील्य ललाटाक्षं स्वांकादेवीमपास्य च॥९१॥तस्याक्ष्णः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकबिभीषणः ॥ तेन दग्धोऽभवत् सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥९२॥

दूसरा बाण चढाकर चलानाही चाहता था ॥ ८९ ॥ कि इतनेमें शिवजीका मन विकारयुक्त हो गया ! तब शिवजीने विचारा कि हमारा मन तो कभी चलायमान नहीं होता था. आज किसने ऐसा विकारयुक्त कर दिया ? ॥ ९० ॥ इसप्रकार चिंतासे विकल होकर चारौ ओर देखा तो बाईं ओर कामदेव देख पड़ा ! तब क्रोध कर अपने ललाटस्थ तीसरे नेत्रको खोल पार्वतीको गोदसे उतार दिया ॥ ९१ ॥ उस नेत्रसे लोकोंको भय देनेवाली तीक्ष्ण अग्नि प्रगट हुई. जिससे धनुष्बाणसहित कामदेव भस्म हो गया

॥ ९२ ॥ कार्यसिद्धि देखते हुये देवतालोग स्वर्गको भाग गये । वसन्तऋतु और रतिभी दंडकी शंकासे भाग गये ॥ ९३ ॥ पार्वतीजीभी डर गईं और नेत्र बन्द करके दूर हट गईं और स्त्रीकी समीपता छोडनेको शिवजीभी अन्तर्धान होगये ॥ ९४ ॥ शिवजीके हितकी कामनावाले देवताओंके मनकी इच्छा पूरी नहीं हुई और अनर्थ हुआ. फिर जो साधुओंसे दुष्टता करते हैं, उनका कहनाही क्या है ? ॥ ९५ ॥ इस कारण वह इक्ष्वाकुवंशीय राजा साधुजनोंका सदा अप्रिय था. अपनी मन्दबुद्धिसे साधुजनोंकी सेवा

कार्यसिद्धिं च पश्यंतो दुद्रुवुश्चामरा दिवम् ॥ शंकमानौ स्वदंडं च वसंतो रतिरेवच ॥९३॥ निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे ॥ सन्निधानं स्त्रियो हर्तुं मृडोऽप्यंतरधीयत ॥ ९४ ॥ रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम् ॥ लेभेऽनर्थमनिर्वृत्तं विप्रियं कुर्वतस्तु किम् ॥ ९५ ॥ तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा ॥ तस्मादात्महितां सेवां नाकरोन्मंदधीः सताम् ॥ ९६ ॥ अनुभूतं महद्दुःखं तस्मा-द्दुर्योनिरेव च ॥ तस्मात्कुर्यात्तु साधूनां सेवां सर्वार्थसाधिनीम् ॥ ९७॥ रुद्रस्याप्रियकारित्वात् स्मरो भाविनि जन्मनि ॥ दुःखं तु बहुलं लेभे जन्मकाले महप्रभुः ॥ ९८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं ये शृण्वंति दिवानिशम् ॥ जन्ममृत्युजरादिभ्यो मुच्यंते नात्र संशयः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कामदहनं नामाष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

नहीं करता था ॥ ९६ ॥ इसीसें उसने बडे बडे दुःख भोगे और अनेक कुयोनियोंमें जन्म पाया. इसकारण, सर्वार्थ साधन करनेवाली साधुसेवा अवश्य करनी चाहिये ॥९७ ॥ शिवजीकी इच्छाके विरुद्ध काम करनेसे कामदेवने पीछे होनेवाले जन्ममें अनेक दुःख उठाये ॥ ९८ ॥ जो इस पवित्र इतिहासको रातदिन श्रवण करते हैं, वे जन्ममरण और जरा ( बुढापा ) आदिसे निस्सन्देह छूट जाते हैं ॥ ९९ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कामदेवदहनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ छ ॥

मैथिलराजाने पूछा–" विभो ! उस कामदेवके भस्म हो जानेपर फिर किससे कामदेवका जन्म हुआ और कर्मवश कौन कौन दुःख प्राप्त हुये ? ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझको इसके सुननेकी बडी अभिलाषा है. सो कहकर मेरा सन्देह दूर कीजिये." श्रुतदेवजी बोले–" कुमार ( स्वामी कार्तिक ) का जन्म अब मैं कहूंगा. जिसके सुननेसे पाप नाश हो जाते हैं ॥ २ ॥ कुमारके जन्मकी कथा यश बढानेवाली, पुत्र देनेवाली, धर्म करनेवाली और सब रोग नाश करनेवाली है सो सुनो. जब शिवजीने कामदेवको भस्म कर डाला

मैथिल उवाच ॥ ॥ तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माजन्माभवद्विभो ॥ किं दुःखमभवत्तस्मिन् कर्मणः सह लंघनात् ॥ १ ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् च्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥ शंभुना तु हते कामे तत्पत्नी रतिसंज्ञका ॥ ३ ॥ मुमोह पुरतो दृष्ट्वा पतिं भस्मावशेषितम् ॥ जातसंज्ञा मुहूर्तेन विललाप ह चित्रधा ॥ ४ ॥ यद्विलापाद्वनं वापि समदुःखमभूत्तदा ॥ तच्चिताग्नौ स्वकायं तु त्यक्तुकामा च माधवम् ॥ ५ ॥ पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कालिकीं क्रियाम् ॥ स आगतश्चितिं कर्तुं वीरपत्न्या महाप्रभुः ॥ ६ ॥ स तु त्रस्तः सखीं दृष्ट्वा क्षणं मूर्छा-परोऽभवत् ॥ रतिं तु सांत्वयामास सांत्वैर्बहुविधैरपि ॥ ७ ॥

तब कामदेवकी स्त्री रति ॥ ३ ॥ अपने आगे पतिको भस्मरूप देखकर मूर्छित हो गई. दो घडी मूर्छित रहकर जब चैतन्य हुई, तब अनेक प्रकारके विलाप करने लगी ॥ ॥ ४ ॥ उसके विलापको सुनकर वह वन दुःखमय हो गया और रतिने वहीं चिता रच अग्निमें अपना शरीर भस्म कर देनेका विचार किया ॥ ५ ॥ और अपने पतिके सखा वसन्तको उस समयकी क्रियाके निमित्त बुलाया और चिता रचने लगी. उस वीरपत्नीके चिता रचते समय वसन्त आ पहुँचा ॥ ६ ॥ सखाकी स्त्री रतिको चिता रचते

देखकर वसंत भयभीत हो दो घडी पर्यन्त मूर्छित रहा. जब चेत हुआ, तब बहुत प्रकारके वचनोंसे रतिको समझाने लगा. ॥७॥ वह बोला है—"भद्रे ! मैं तुमारे पुत्रके समान हूं. मेरे उपस्थित रहते तुमको यह करना उचित नहीं है. आत्मघात कर शरीरत्याग धर्मका हेतु नहीं है." ऐसे अनेक वचन कहे तोभी रतिने ॥ ८ ॥ अपना शरीर रखना उचित नहीं समझा. तब उसकी दृढताको देख वसंतनेभी नदीके किनारे चिता रच दी ॥ ९ ॥ रतिभी गंगामें स्नान कर सब क्रियाओंसे निश्चिन्त हो अपने इंद्रियोंको रोक- मनको

पुत्रतुल्योऽस्मि ते भद्रे स्थिते मयि च नार्हसि ॥ कायं त्यक्तुं धर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधाऽपि सा ॥ ८ ॥ नैव स्थातुं मनश्चक्रे तेन संस्तंभिता रतिः ॥ दृष्ट्वा दार्ढ्यं वसंतोऽपि चितिं चक्रे सरित्तटे ॥ ९ ॥ सावगाह्य द्युनद्यां च कृत्वा कार्याणि सर्वशः ॥ सन्नियम्येंद्रियग्रामं निवेश्यात्मनि वै मनः ॥ १० ॥ चितामारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक् ॥ मा प्रवेशय कल्याणि! वार्त्ते पतिपरायणे ॥ ११ ॥ भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात् ॥ जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥ १२ ॥ भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्युम्नाख्यो भविष्यति ॥ वसिष्यसि च त्वं शापाद्ब्रह्मणः शंबरालये ॥ १३ ॥ प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या संगतिश्च भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ वाणी चाकाशगोचरा ॥ १४ ॥

आत्मामें लगाय ॥ १० ॥ चितापर चढने लगी; तब तुरन्त आकाशवाणी हुई कि—" हे कल्याणि ! हे पतिमें प्रेमवाली ! तुम चितामें प्रवेश न करो ॥ ११ ॥ तुमारा पति महादेवजीसे और यदुवंशमें श्रीकृष्णजीसे उत्पन्न होगा; दो जन्म उसके होंगे. तहां पिछले जन्ममें ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णजीकी रुक्मिणी स्त्रीमें प्रद्युम्न नामसे प्रगट होगा और तुम ब्रह्माजीके शापसे शंबरासुरके घरमें वास करोगी ॥ १३ ॥ वहीं प्रद्युम्न नामक पतिसे तुमारा संयोग होगा." यह कह कर आकाशवाणी चुप होगई ॥ १४ ॥

यह सुन मरनेके लिये निश्चयवाली रतिनें चितामें प्रवेश नहीं किया. अनन्तर देवता लोग आये; जिनके स्वार्थके लिये महादेवद्वारा कामदेव भस्म हो गया ॥ १५ ॥ रतिके कल्याणकी इच्छा करनेवाले बृहस्पति– इन्द्र–अग्नि प्रमुख देवोंने उसको अनेक वर देके मरणसे निवृत्त किया ॥१६॥ और बोले कि–" तुमारा पति अनंग होनेपरभी अंगसहित होकर मराहुआ भी देख पडैगा इसप्रकार समझा बुझाकर धर्मोपदेश करने लगे ॥ १७ ॥ कि पूर्वकल्पमें यह तुमारा पति सुन्दर नाम महाराजा था वहां तुमही इसकी स्त्री,

श्रुत्वा तां तु निवृत्ताऽभून्मरणे कृतनिश्चया ॥ ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात् ॥ १५ ॥ रत्या दृष्टं प्रकुर्वाणा गुर्विन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ तां ते निवर्तयामासुर्वरेण महता सतीम् ॥१६॥ अनंगोऽपि भवेत्सांगो मृत एवाक्षिगोभवेत् ॥ इति तां तु विनिर्वर्त्य धर्मं चोपदिदेशिरे ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पे स्वयं राजा सुंदराख्यो महाप्रभुः ॥ त्वमेव पत्नी तत्रापि रजःसंकरकारिणी ॥ १८ ॥ तेनेयं च दशाऽभूत्ते कुर्विदानीं च निष्कृतिम् ॥ मंदाकिन्यां तु वैशाखे प्रातः स्नानं तदा कुरु ॥ १९ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां दिव्यां तथा शृणु ॥ अशून्यशयनं नाम व्रतमारभ भानिनि ॥ २० ॥ धर्मेणानेन ते भद्रे व्रतेनापि च माधवे ॥ नूनं ते भविता पत्युरुपलब्धिर्न संशयः ॥ २१ ॥

रजसंकरकारिणी हुई थी ॥ १८ ॥ इसीसे तुमारी यह दशा हुई. अब तुम यह काम इस समय करौ कि वैशाखमासमें मन्दाकिनी (गंगा) में प्रातःसमय स्नान करौ ॥ १९ ॥ और मधुसूदनभगवान्की पूजा कर दिव्यकथा श्रवण करौ. तथा हे भामिनि ! अशून्यशयननाम व्रतका प्रारंभ करौ ॥ २० ॥ हे भद्रे ! वैशाखमासमें इस धर्मके

करने और व्रतके अनुष्ठानसे तुमारा पति तुमको अवश्य प्राप्त हो जायगा. इसमें संशय नहीं ॥ २१ ॥ इसप्रकार रतिको वरदान देकर देवतालोग अपने स्थानको गये. तब वह कामदेवकी स्त्री रति देवी क्लेशोंसे छूटकर ॥ २२ ॥ मेषकी संक्रांतिमें गंगास्नान कर मनको जीतकरके अशून्यशयनव्रत धारण करती हुई. अर्थात् एकान्तमें शयन करनेका संकल्प किया ॥ २३ ॥ इस पुण्यके प्रभावसे कामदेव तत्काल उसकी दृष्टिमें प्रवेश कर गया. यह काम ऐसा बली है कि इसके पराक्रमको कोई रोक नहीं सकता ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पमें भी यह काम धर्मपरायण राजा था. परंतु इसने वैशाखमासमें कर्तव्य धर्म नहीं किये. इसीसे ॥ २५ ॥ यद्यपि यह परमात्माका पुत्र

इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथागताः ॥ ततः कृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामवती तथा ॥२२॥ गंगावगाहनं चक्रे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ अशून्यशयनं नाम व्रतं चापि महामनाः ॥ २३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन सद्यः कामोऽक्षिगोचरः ॥ अभूत्तस्यै महाराज लोके चावार्यवीर्यवान् ॥ २४ ॥ पूर्वकल्पेऽप्ययमपि राजा धर्मपरायणः ॥ वैशाखोक्तान् महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः ॥ २५ ॥ देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः ॥ वृथा नीते तु वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥२६॥ अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा ? ॥ त्र्यंबकेंतर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥ २७ ॥ तूष्णीं स्थितां तदा भ्रांतां तां दृष्ट्वा हिमवान् गिरिः ॥ चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च ॥ २८ ॥ रूपौदार्यगुणान् दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः ॥ स एव मे पतिर्भूयादिति तन्निष्ठमानसा ॥ २९ ॥

था, तथापि अंगहीन हुआ. वैशाखमासमें मेषकी संक्रान्तिको वृथा खोनेका जो फल है ॥ २६ ॥ सो देवताओंकोभी भोगना पडता है. तो मनुष्योंका तो कहनाही क्या है ? यह रतिकी कथा कही. अब पार्वतीजीकी कथा सुनो. जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये, तब पार्वतीजी निराश होगईं ॥ २७ ॥ और चुपचाप खडी रह गईं और कोई उपाय ध्यानमें नहीं आया. उसीसमय पार्वतीजीको देख हिमाचलने दोनों हाथोंसे गले लगाकर चकित हो घर ले गये ॥ २८ ॥ पार्वतीजीने महादेवजीके रूप और उदारतादि

गुणोंको देखकर मनमें यह निश्चय कर लिया कि– " महात्मा महादेवजीही हमारे पति होंगे " ॥ २९ ॥ ऐसी दृढप्रतिज्ञा करके शिवभगवान्में अपना मन लगाय गंगाजीके तटपर जाय तप करने लगीं. पिता, माता और कुटुंबियोंके रोकनेपरभी पार्वतीजी तपस्या करनेसे नहीं हटीं ॥३०॥ उन्होंने निराहार रहकर महालिंगकी पूजा की. बडी बडी जटायें बढ गईं. देवताओंके एकहजार वर्षपर्यन्त तप करनेसे महादेवजी प्रगट हुये ॥ ३१ ॥ सायंकालमें ब्रह्मचारीका रूप धरकर पर्णशालाके समीप पार्वतीजीके सन्मुख आये और अनेक प्रकारके वचनोंसे पार्वतीजीकी परीक्षा करने लगे कि मुझमें मन दृढ है अथवा नहीं ॥ ३२ ॥ पार्वतीजीको दृढ जानकर बोले–"हे भद्रे ! जो तुमारी इच्छा हो,

गंगोपकूलमापेदे तपस्तप्तुं धृतव्रता ॥ निवारिता सापि देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः ॥ ३० ॥ अर्चयंती महालिंगं निराहारा जटाधरा ॥ दिव्यवर्षसहस्रांते प्रत्याक्षोऽभून्महेश्वरः ॥ ३१ ॥ भूत्वा वर्ण्यपि सायाह्ने पर्णशालामुखेविभुः ॥ स्वनिष्ठमनसो दार्ढ्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः ॥ सा वव्रेऽथ पतिं रुद्रं त्वं भवेति वरानना ॥ ३३ ॥ स तथैव वरं दत्त्वा ऋषीन् सस्मार सप्त च ॥ आजग्मुस्तेऽपि मुनयः स्थिताः प्रांजलयः पुरः ॥ ३४ ॥ ऋषीणां ज्ञापयामास कन्यां प्रष्टुं हिमालयम् ॥ तथादिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम् ॥ ३५ ॥ प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयंतो दिशो दश ॥ प्रत्युज्जगाम स गिरिः सप्तैतान् ब्रह्मवित्तमान् ॥ ३६ ॥ संपूज्य विधिवत्सर्वान् सुखासीनानपृच्छत ॥ धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि यद्भवंतो गृहागताः ॥ ३७ ॥

सोई वर मॉग." यह सुन पार्वतीजीने यह वर माँगा कि–"हे रुद्र ! आप हमारे पति होओ; यही वर मांगती हूं" ॥३३॥ "ऐसाही हो" यह कह शिवजीने सप्तऋषियोंका स्मरण किया. तब सातौ मुनि हाथ जोड शिवके सामने आकर प्राप्त हुये ॥३४॥ तब ऋषियोंको आज्ञा दी कि कन्याके पूछने निमित्त हिमालयको जाओ. इसप्रकारकी शिवजीकी आज्ञा पाय कन्याके अर्थ हिमाचलके घर चले ॥ ३५ ॥ आकाशमार्गसे दशौदिशाओंको प्रकाशित करते हुये पहुंचे. इन सब ब्रह्मवेत्ता सप्तऋषियोंको देख हिमाचल उठे और आदरपूर्वक ले आये ॥३६॥

और विधिवत् सबकी पूजा कर सुखपूर्वक बैठे हुये ऋषियोंसे बोले कि– " मैं धन्य हूं, आप मेरे घर पधारे, इससे मैं कृतकृत्य हूं ॥ ३७ ॥ आपके आगमनको मैं अपने जन्मोंका पुण्यफल मानता हूं. पूर्णमनोरथवाले महात्माओंके कृत्यको हम सरीखे नहीं जानते हैं ॥ ३८ ॥ तथापि आप अपना कार्य कहिये. आपकी आज्ञा जो हो वही इस समय मैं करूं. " यह कहनेपर वे ऋषि महाराज हिमाचलसे बोले ॥ ३९ "हे गिरिराज ! तुमने अपनेही समान दृढ वचन कहे हैं. हम अपने आनेका कारण तुमारे सामने

भवदागमनं मन्ये मम जन्मफलं त्विति ॥ न कृत्यं विद्यतेऽस्माभिः पूर्णार्थानां महात्मनाम् ॥ ३८ ॥ तथापि ब्रूत कार्यं वो यत्कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ इत्युक्तास्ते तथा प्रोचुर्हिमवंतं महागिरिम् ॥ ३९ ॥ त्वया ते सदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते दृढम् ॥ अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदये ॥ ४० ॥ कन्या ते पार्वतीनाम पूर्वं दक्षात्मजा सती ॥ जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्तकलेवरा ॥ ४१ ॥ अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शंभुर्नान्यो जगत्रये ॥ देया सा शंभवे देवी भवतानंत्यमिछता ॥ ४२ ॥ पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् ॥ इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम् ॥ ४३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संहृष्टात्मा महागिरिः ॥ व्याजहार पुनर्वाक्यं पुत्री वल्कलधारिणी ॥ ४४ ॥

कहते हैं सुनो ॥ ४० ॥ हे राजन् ! तुमारी पार्वतीनाम्नी कन्या पहले दक्षप्रजापतीकी कन्या सतीनाम्नी हुई थी–जिसने पिताके यज्ञमें अपना शरीर त्याग दिया था अब तुमारे यहां जन्म लिया है ॥ ४१ ॥ इसका पाणिग्रहण करनेमें शंभुभगवान्के विना अन्य कोईभी त्रिलोकमें समर्थ नहीं है, अपने कल्याणकी इच्छासे यह कन्या महादेवजीके अर्थ देना उचित है ॥ ४२ ॥ तुमने पूर्व हजारो जन्मोंमें पुण्यकर्म किये हैं. इस समयमें तुह्मारे उत्तम भाग्यसे वे सुकृत परिपाकको प्राप्त हुये हैं " ॥ ४३ ॥ सप्तऋषियोंका

यह वचन सुनकर महाराज हिमाचल बहुत प्रसन्न होकर बोले कि– " हमारी कन्या वृक्षोंकी छाल धारण कर ॥ ४४ ॥ गंगाजीके तीर निराहार रहती हुई अतिकठिन तपस्या कर रही है. शम्भुभगवान्‌को पति मानती हुई तप करती है. यही उसका भी मनोरथ है ॥ ४५ ॥ मैं अपनी कन्या महादेवजीके अर्थ दे चुका. आपलोग शीघ्र जाओ जहां शंभुजी विराजमान है ॥ ४६ ॥ और उनसे यह कह दो कि हिमाचलने प्रीतिपूर्वक अपनी कन्या आपको दी; इसको अंगीकार करो. यह कहकर हे मुनिवरो ! आपही

गंगातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् ॥ कांक्षमाणा पतिं शंभुं तस्या इष्टमिदं त्विति ॥ ४५ ॥ दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यंबकाय
महात्मने ॥ शीघ्रं गत्वा भवंतस्तु यत्र शंभुर्महाप्रभुः ॥४६॥ प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहाणेति निवेद्य च ॥ भवंत एव कुर्वन्तु चैतद्वैवा-
हिकीं क्रियाम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तास्ते हिमवता तमामंत्र्य शिवं ययुः ॥ लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि ॥ ४८ ॥
षण्मातरोऽथ मुनयो द्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम् ॥ शिवः सर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा ॥४९॥ अन्वितो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः ॥
भेरीशंखमृदंगाद्यैः काहलीपटहादिकैः ॥ ५० ॥ ब्रह्मघोषैर्वेदिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम् ॥ सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥ ५१ ॥

सब हमारी कन्याके विवाहसंबंधी कर्म करें" ॥ ४७ ॥ जब हिमाचलने इस प्रकार कहा, तब सातौ ऋषि शिवजीके समीप जाय विवाहकी बातचीत करके चले गये और लक्ष्मी आदि देवांगना तथा विष्णुआदि देवता ॥ ४८ ॥ छे मातृका व सब मुनिजन उस महोत्सवको देखनेके निमित्त वराती होकर चले और महादेवजी सम्पूर्ण देवताओं, मुनिगणों तथा मातृकाओंकरके ॥ ४९ ॥ सहित बैल ( नंदी ) पर चढ भूतगणोंको संग ले व्याहने चले. भेरी शंख, मृदंग, पंणव, मुहचंग आदि बाजे बजने लगे ॥ ५० ॥ बन्दीजन

यश वखान करने लगे; मुनिगण वेदपाठ करने लगे; इसप्रकार हिमाचलकी पुरीमें प्रवेश किया, तब सुन्दर मुहूर्तमें ,शुभग्रहोंकी दृष्टिसे युक्त शुभलग्नमें ॥ ५१ ॥ हिमाचलने प्रसन्न मनसे विवाह किया. हे राजन्! उस समय तीनों लोकके प्राणी इस उत्सवके आनन्दमें मग्न हो रहे थे ॥ ५२ ॥ इस महोत्सवके पूर्ण हो जानेपर सब लोकोंके कल्याण करनेवाले शिवजी लौकिक धर्मोंका पालन करते हुये स्वच्छन्दतासे पार्वतीके संग विहार करने लगे ॥ ५३ ॥ ऋद्धिसिद्धिसे युक्त हिमालयकी शिखरपर जो इन्द्रभवनके समान है नंदिनी-के तीर वनमें रात्रिसमय जहां ॥ ५४ ॥ मतवाले भौरा गुंजार शब्द कर रहे, पक्षी मनभावनी बोली बोल रहे, मोर कुहुक रहे ऐसे मनोहर स्थानमें दिव्य सहस्रवर्षपर्यंत शिवजी

विवाहमकरोच्छैलः प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ महोत्सवस्तदा चासीत्त्रिलोक्यां प्राणिनां नृप ॥ ५२ ॥ महोत्सवे निवृत्ते तु शंकरो लोक-
शंकरः ॥ रेमे स्वच्छंदया देव्या लोकधर्माननुव्रतः ॥ ५३ ॥ ऋद्धिमद्धिमवद्गेहे देवेंद्रभवनोपमे ॥ शर्वर्यां नंदिनीतीरे वनराजिषु
शंकरः ॥ ५४ ॥ मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमंदिते ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि रेमे स्वच्छंदया विभुः ॥ ५५ ॥ स्त्रीणामिंद्रवराभावात्त-
स्मिन् काले नृपोत्तम ॥ पुंसंसर्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥ ५६ ॥ प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्धत ॥ देवानामभव-
च्चिंता पुत्रालाभाद्धरा विभो ॥ ५७ ॥ सर्वे संगत्य संमंत्र्य मिथ एवं बभाषिरे ॥ कामीवाभूद्रतौ नित्यं सक्तो देव्या हरः
स्वराट् ॥ ५८ ॥ नास्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्रवात् ॥ पुना रतिर्यथा माभूत्तथास्माभिर्विधीयताम् ॥ ५९ ॥

इच्छापूर्वक रमण करते हुये ॥ ५५ ॥ हे राजसत्तम ! इन्द्रने स्त्रियोंको वर दिया था कि–' पुरुषसंसर्गसे स्त्रियोंका गर्भ अवश्य गिर जावे ' ॥ ५६ ॥ जब शिवजी प्रतिदिन पार्वतीके साथ रमण करने लगे और गर्भ नहीं ठहरा तब देवताओंको शिवके पुत्रलाभमें चिंता उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ और सब मिलकर विचारने लगे और परस्पर कहने लगे कि क्या कारण है जो प्रतिदिन शिवजी पार्वतीके संग रमण करते हैं ॥ ५८ ॥ इसप्रकार प्रतिदिन गर्भस्राव हो जानेसे हमारे कार्यकी सिद्धि होना कठिन है. अब कोई ऐसा उपाय करना

उचित है कि जिससे शिवजी फिर रमण नहीं करें" ॥५९॥ ऐसे परस्पर बात करते हुये क्षणभर विचारते रहे, फिर यह निश्चय किया कि—"यह कार्य अग्निसे हो सकेगा." यह सोचकर अग्निका अति सन्मान करके बोले॥ ६० ॥ "हे अग्निदेव! तुमही देवताओंका मुख हो. तुमही बंधु हो. तुमही हमारी गति हो अर्थात् तुमहीसे हमारे सब काम बनते हैं. इस समय तुम वहां जाओ, जहां शिवजी रमण करते हैं॥ ६१ ॥ उनके रमण कर चुकनेपर तुम प्रगट हो जाना, जिससे वे फिर रमण न करै. तुमको देखकर पार्वतीजी लाजकरके अवश्य वहांसे हट जायँ-

मिथ एवं तु संभाष्य विचिन्वन् क्षणमत्र ते ॥ अग्निं कृत्ये विनिश्चित्य ह्यूचुर्मानपुरःसरम् ॥ ६० ॥ त्वं मुखोऽग्ने ! हि देवानां त्वं बंधुर्गतिरेव च ॥ इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै हरः ॥ ६१ ॥ रत्यंते दर्शयात्मानं यथा न स्यान् पुना रतिः ॥ त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी ततश्चापसरेद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ शिष्यो भूत्वा तु रत्यंते पृच्छ तत्त्वं स्मरांतकम् ॥ तत्त्वसंप्रश्नव्याजेन कालं बहु नय प्रभो ॥ ६३॥ बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति ॥ देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरं ययौ ॥६४॥ वीर्योत्सर्गात् पूर्वमेव गतो वह्नी रतांतरे ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देवी विवस्त्रा विमना ययौ ॥ ६५ ॥ रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः ॥ वह्निं प्राह गृहाणेदमविसृष्टं तु दुर्मते ॥६६॥

गीं॥ ६२ ॥ तब तुम शिष्य बनकर शिवजीसे तत्त्वप्रश्न करना. तत्त्वप्रश्नके बहानेसे शिवजीका बहुत समय बिताना ॥ ६३ ॥ बहुत काल बीत जानेपर पार्वतीसे स्वामिकार्तिकका जन्म होगा" देवताओंके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर अग्निने स्वीकार किया और शिवजीके समीप गया ॥ ६४ ॥ वीर्य स्खलित होनेके पहलेही अग्नि दोनौके सन्मुख पहुंच गया. उसको देख नंगी होनेके कारण, पार्वतीजी लज्जित और विमन हो गई ॥ ६५ ॥ और रमणको त्यागकर शीघ्र अलग हो गई. तब शिवजी अति कोप कर

अग्निसे कहने लगे कि–"हे दुर्मते ! इस स्खलित वीर्यको तू ग्रहण कर ॥ ६६ ॥ हे पापी मेरा वीर्य दुःसह है. तूने रमणमें विघ्न किया है. इसकारण, अपना वीर्य तेरे मुखमें छोडूंगा" ॥ ६७ ॥ इस प्रकार कहकर शिवजीने अपना वीर्य अग्निके मुखमें छोड दिया ! उस प्रचंड वीर्यको अपने उदरमें धारण कर अग्नि जलने लगा ॥ ६८ ॥ और चिंता करता हुआ स्वर्गलोकको गया. ज्यों त्यों कर प्राण वच गये. देवताओंसे सब समाचार कहा ॥ ६९ ॥ देवतालोग अग्निकी वात सुनकर हर्ष–शोकको प्राप्त हुये. ' वीर्य स्थित हो गया,

मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतिविघ्नस्त्वयाऽभवत् ॥ उत्सृजामि च मद्वीर्यं त्वन्मुखे हव्यवाहन ॥६७॥ इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यं हव्यवाहमुखे हरः ॥ तद्धृत्वा दह्यमानः सन् स्वोदरे वीर्यमुल्बणम् ॥ ६८ ॥ चिंतयानो ययौ धाम देवानां यज्ञपूरुषः ॥ कथंचित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ देवा वह्नीरितं श्रुत्वा हर्षशोकौ समाययुः ॥ स्थितं वीर्यमिति ह्लादं कथं तु प्रसवो भवेत् ॥ ७० ॥ इति दुःखं तदा चासीद्वह्नेः कुक्षौ तु शांभवम् ॥ ववृधे तेजसा क्षिप्तं दशमासा गतास्तदा ॥ ७१ ॥ नापश्यत्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः ॥ देवान्वै शरणं प्राप गर्भमोचनहेतवे ॥ ७२ ॥ ते देवा वह्निना साकं प्रापुर्गंगां यशस्विनीम् ॥ गंगां स्तोत्रेण ते स्तुत्वा प्रार्थयामासुरंजसा ॥ ७३ ॥

इससे प्रसन्न हुये. परंतु प्रसव कैसे होगा' ॥ ७० ॥ इस चिंतासे दुःख हुआ. अग्निके उदरमें शिवजीका वीर्य वढने लगा और दश महिना वीत गये ॥ ७१ ॥ जव प्रसवका कोई उपाय न देखा, तव अग्नि अति दुःखी हो प्रसवनिमित देवताओंके शरणमें प्राप्त हुआ ॥ ७२ ॥ तव सव देव अग्निको संग लेके यशस्विनी गंगाके समीप गये और सव मिलकर प्रार्थना करने लगे ॥ ७३ ॥ " हे गंगे ! तुमही " सव देवताओंकी माता हो. तुमही जगदीश्वरी हो. हे भद्रे ( कल्याणि ) ! देवताओंके अर्थ शिवजीके तेजको

धारण करो ॥ ७४ ॥ वह अग्निके उदरमें बढ रहा है,परंतु वह स्त्री न होनेसे उसकी प्रसूती नहीं होती इस कारण, इस अग्निपर और हम सबपर दया कर उद्धार करो " ॥७५॥ इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गंगादेवीने कहा ' तथास्तु ( ऐसाही हो ). ' तब देवताओंने अग्निको गर्भमोचनका मंत्र बताया ॥७६॥ उस मंत्रसे गर्भका आकर्षण कर शंकरजीके महादीप्तिमान् और लोकोंमें असहनीय ऐसे तेजको अग्निने गंगाजीमें छोड दिया ॥ ७७ ॥ कुछ महीने उस तेजको गंगाजीने सहन किया, फिर जब उस तेजको न सह सकी

त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेव जगतां पतिः ॥ देवतार्थं तु त्वं भद्रे धत्स्व तेजस्तु शांभवम् ॥७४॥ तद्वह्नेर्वर्धते गर्भे न स्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च ॥ तस्मादेनं च नः सर्वान् समुद्धर दयां कुरु ॥ ७५ ॥ इत्येवं प्रार्थिता देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ देवास्तु वह्नये प्राहुर्मंत्रं गर्भविमोचनम् ॥ ७६ ॥ तन्मंत्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः ॥ गंगायां शांभवं तेजो भास्वल्लोकसुदुःसहम् ॥ ७७ ॥ सा वोढा कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम् ॥ निर्जला तत्प्रभावेन स्फुटद्रक्तकलेवरा ॥ ७८ ॥ बहुदुःखाकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः ॥ उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपावनी ॥ ७९ ॥ शरकांडे तु चिक्षेप दह्यमानं समंततः ॥ शरकांडैस्तु संभिन्नः षोढा भिन्नो बभूव ह ॥ ८० ॥ षट् कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तथा ॥ शरकांडे विनिर्भिन्नं षोढा संधाय शांभवम् ॥ ८१ ॥

और उसके प्रभावसे जल सूखने लगा तथा कलेवर लाल वर्ण दीख लगा ॥ ७८ ॥ और पतिव्रता होनेके कारण, देवी अतिदुःखसे व्याकुल हो गईं तब लोकपावनी गंगाजीने अपने उदरस्थ गर्भको त्याग दिया ॥ ७९ ॥ और शरकांड ( सर्पतेन ) में डाल दिया. उन सर्पतोंसे विभिन्न होकर उसके छे खंड हो गये ॥ ८० ॥ तब ब्रह्माके कहनेसे छे

कृत्तिका वहां आकर उस शरकांडसे भिन्न हुये छे खंडवाले शंभुतेजको ग्रहण कर ॥ ८१ ॥ छे मुखवाला पुरुष वनाया, परन्तु उसके शरीर एकही रहा. तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे कृत्तिकाओंने उसको वहुत दृढ कर दिया ॥ ८२ ॥ वह छे मुखवाला देह विना रक्षावालेकेही वहुतकालतक उसी प्रकार शरकांडमेंही पडा रहा ॥ ८३ ॥ एक समय नन्दीवृषभपर चढकर श्री पार्वती और महादेवजी श्रीशैलको जानेकी इच्छासे उस स्थानको गये ॥ ८४ ॥ वहां पहुंचतेही पार्वतीदेवीके स्तनोंसे दूधकी धार वहने लगी ! तव पार्वे-

षण्मुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम् ॥ कृत्तिका विधिनाज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम् ॥८२॥ तदेहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकांडगम् ॥ अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकांडेषु वै चिरम् ॥ ८३ ॥ एकदा वृषभारूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ श्रीशैलं गंतुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः ॥ ८४ ॥ तदासीत्पार्वती देवी सद्यः स्रुतपयोधरा ॥ विस्मिता वचनं रुद्रं स्रुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥ ८५ ॥ कारणं ब्रूहि विश्वात्मन्नित्युक्तस्तु हरोऽब्रवीत् ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुत्रोऽधो वर्तते तव ॥८६॥ त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टं प्रागेवागाद्धविर्वहः ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता त्वं वै प्रविष्टा च स्थलांतरम् ॥ ८७ ॥ मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम् ॥ देवानां च प्रसादेन गंगायां व्यसृजद्विभुः ॥८८॥

तीजी विस्मित होकर शिवजीसे कहने लगी–"हे भगवन् ! अकस्मात् हमारे स्तनोंसे दूधकी धार वहनेका क्या कारण है ? ॥ ८५ ॥ हे जगदात्मन् ! इसका कारण कहो." तव शिवजी बोले कि–" हम कहते हैं सो सुनो. हे देवि ! तुमारा पुत्र यहां नीचे पडा है ॥ ८६ ॥ एक दिन हम तुम विहारमें थे. वीर्य स्खलित नहीं होने पाया था कि इतनेहीमे अग्नि आ गया. तुम उसको देखतेही लाजके मारे अलग हट गईं ॥ ८७ ॥ तव हमने क्रोधकरके वह वीर्य अग्निके मुखमें छोड दिया. जब वह सह नहीं सका तव, उसने

देवताओंकी कृपासे गंगाजीमें छोड दिया ॥८८॥ गंगाजीभी जब जलने लगीं, तब उन्होंने शरकांडमें छोड दिया. वहां उसके छे खंड हो गये और मातृकाओंने उसको दृढ कर दिया ॥ ८९ ॥ उसकी आकृति पुरुषकीसी हो गई है; उसीको देखकर तुमारे स्तनोंसे दूध टपकने लगा है. यह बालक विष्णुके समान पराक्रमी होगा. इसकी पालना करौ ॥ ९० ॥ यही तुमारा औरस पुत्र है. इसको उठाकर शीघ्र ले चलौ. इससे तुमारी बडी बहुत प्रशंसा होगी और तुमारा नाम प्रसिद्ध होगा" ॥ ९१ ॥ महादेवजीकी यह

गंगा च दह्यमाना सा चिक्षेप च शरांतरे ॥ तत्र षोढा प्रभिन्नं तु मातृभिश्च दृढीकृतम् ॥८९॥ पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्रुतौ ॥
पालनीयं महावीर्यं विष्णुना समविक्रमम् ॥ ९० ॥ अयमेवौरसः पुत्रस्तव भाति विनिश्चितम् ॥ तस्माद्गृहाण शीघ्रं त्वं तेनाख्याति-
रतीव ते ॥ ९१ ॥ इत्याज्ञप्ता शंभुना सा तमादायार्भकं द्रुतम् ॥ अंकमारोप्य तं देवी पाययामास सा स्तनौ ॥ ९२ ॥ देवेन मोहिता
देवी पुत्रस्नेहपराऽभवत् ॥ पुनः कैलासमगमत् प्रभुणा सह शांकरी ॥ ९३ ॥ पुत्रं लालयती देवी संतोषं परमं ययौ ॥ एवं कुमारजननं
वर्णितं ते मयाऽद्भुतम् ॥ ९४ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम् ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नात्र संशयः ॥ ९५ ॥

आज्ञा पाकर पार्वतीजीने उस बालकको शीघ्र उठा लिया और गोदीमें बिठाकर दूध पिलाने लगीं ॥ ९२ ॥ महादेवजीकरके मोहित की हुई देवी पार्वती पुत्रके स्नेहमें मग्न हो महादेवजीके साथ कैलासको गई ॥ ९३ ॥ और पुत्रका लालन पालन करती हुई पार्वतीदेवी परम आनन्दपूर्वक रहने लगीं. इसप्रकार कुमार (स्वामिकार्तिकजी) के जन्मकी अद्भुत कथा हमने तुमारे आगे कही ॥ ९४ ॥ जो कोई कुमारजन्मकी इस पवित्र कथाको सुनता है, उसके पुत्र-पौत्रआदिकी निस्सन्देह वृद्धि होती है ॥ ९५ ॥

शिवजीके क्रोधके कारण, कुमारके जननेमें अति दुःख हुये. जो वैशाखधर्मको प्रीतिपूर्वक सुनता है उसको भी अनुपम सुख प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ इसकारण, वैशाखमें कियेहुये सब धर्म सम्पूर्ण पापोंको हर लेते हैं. यह धर्म स्त्रियोंके विधवापनका नाश करता है और सब प्रकारकी संपत्तियोंको देता है ॥ ९७ ॥ इस धर्मके प्रभावसे अनंग ( कामदेव ) भी अंगसहित हो गया. जो वैशाखमासको विना स्नानदान किये व्यतीत कर देते हैं ॥ ९८ ॥ तो अन्य अनेक धर्म करनेपरभी उनको अधिक दुःख प्राप्त होते हैं. यदि यह एकही धर्म सब धर्मोंके लिये हितकारी है, तो अवश्य इस धर्मको करना उचित है॥९९॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे हरपुत्रोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

महद्दुःखं तु जनने हरस्याप्रियतोऽभवत् ॥ प्रीत्यानुश्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमो भवेत् ॥ ९६ ॥ तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः ॥
अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसंपद्विधायकः ॥९७॥ अनंगोऽपि हि सांगत्वं यत्प्रभावात् समाप्तवान् ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो यस्य
वै गतः ॥९८॥ अपि धर्मकृता वापि भवेद्दुःखपरंपरा ॥ सर्वधर्मो हितः स्याच्च यद्येकोयमनुष्ठितः ॥९९॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाख-
माहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे हरपुत्रोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ मैथिल उवाच ॥ ॥ यत्कामपत्न्याचरितमशून्यशयन-
व्रतम् ॥ देवोपदिष्टं तस्यास्य विधानं ब्रूहि भूसुर ॥१॥ किं दानं को विधिस्तस्य पूजनं किं फलं तथा ॥ एतदाचक्ष्व भूदेव श्रोतुं कौतूहलं
हि मे ॥ २ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम् ॥ ३ ॥

मैथिलराजाने प्रश्न किया कि– " हे ब्रह्मन् ! कामदेवकी स्त्री रतिका चरित्र जो आपने कहा और देवताओंका बताया हुवा अशून्यशयन व्रतका धारण करना कहा, सो हमने सुना. अब उस व्रतका विधान वर्णन करो ॥ १ ॥ उस व्रतमें क्या दान है ? क्या उसकी विधि है ? किसकी पूजा है ? उस पूजाका क्या फल है ? हे भूदेव ! यह सब कहो. सुननेको हमारी बडी अभिलाषा है " ॥ २ ॥ यह प्रश्न सुनकर श्रुतदेवजी बोले– " हे राजन् ! सुनो. हम फिर पापोंके नाश करनेवाले व्रतको कहते हैं. अशून्यशयननाम व्रत

हरिभगवान्ने लक्ष्मीजीसे कहा है ॥ ३ ॥ जिसके करनेसे देवदेव श्यामवर्ण लक्ष्मीपति जगन्नाथ सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान् प्रसन्न हो जाते है ॥ ४ ॥ हे राजन्! जो इस सर्वपापनाशक व्रतके किये विना गार्हस्थ्यधर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं, उनका सब कर्म-धर्म निष्फल हो जाता है ॥ ५ ॥ हे महीपते! श्रावणशुक्लद्वितीयाको यह अशून्यशयन नाम उत्तम व्रतको धारण करै ॥६॥ चातुर्मास्यमें मनुष्य हविष्यान्न भोजन करै और चातुर्मास्य व्यतीत हो जानेपर सम्यक्प्रकार पारण करै ॥ ७ ॥ लक्ष्मीसहित जगन्नाथ

येन चीर्णेन देवेशो जीमूताभः प्रसीदति ॥ लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथः समस्ताघौघनाशनः ॥ ४ ॥ अकृत्वा यस्त्विदं राजन् व्रतं पातकनाशनम् ॥ गार्हस्थ्यमनुवर्तेत तस्येदं निष्फलं भवेत् ॥ ५ ॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते ॥ अशून्यशयनाख्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥६॥ चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते हविष्याशी भवेन्नरः ॥ चतुर्भिः पारणं मासैः सम्यङ् निष्पाद्यते प्रभो ॥ ७ ॥ लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः ॥ पारणे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यं चैव चतुर्विधम् ॥ ८ ॥ उपायनं च दातव्यं ब्राह्मणाय कुटुंबिने ॥ सौवर्णीं राजतीं वापि मूर्तिं कुर्यान्मनोरमाम् ॥ ९ ॥ पीतांबरधरां दिव्यां वनमालाविभूषिताम् ॥ शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥१०॥

जनार्दन भगवान् अर्थात् लक्ष्मीनारायणका पूजन करै. पारणके दिन भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य ये चार प्रकारके भोजन करैं ॥ ८ ॥ और कुटुम्बी ब्राह्मणको उपायन देवै. सोने अथवा चांदीकी मूर्ति बहुत सुन्दर बनवावै ॥ ९ ॥ उसको पीताम्बर धारण कराय सुन्दर वनमाला पहिराय, सपेद फूल और सुगन्धित पदार्थोंसे पुरुषोत्तम भगवान्की पूजा करै ॥

॥ १० ॥ शय्यादान करै, वस्त्रदान करै तथा ब्राह्मण जिमावै. ब्राह्मण ब्राह्मणी दोनोंको भोजन करावै और दक्षिणा देके उनका पूजन करै ॥ ११ ॥ इसप्रकार चार मासपर्यन्त जनार्दन भगवान्का पूजन करता रहे. अनंतर मार्गशिरआदि महीनोंमेभी पूर्ववत् हरिभगवान्की पूजा करै ॥ १२ ॥ रक्तवर्ण हरिभगवान्का श्रीरुक्मिणीसहित ध्यान करै. फिर इसीप्रकार चैत्र-आदि चार मासपर्यन्त हरिभगवान्की पूजा करै ॥ १३ ॥ भूमिपर आसन बिछाय भक्तिसे हरिभगवान्की पूजा करै. जिनकी पापरहित सनन्दनादि मुनि स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणां भोजनैस्तथा ॥ दंपत्योर्भोजनैश्चैव दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥ एवं तु चतुरो मासान् पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम् ॥ १२ ॥ रक्तवर्णं हरिं ध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा ॥ चैत्रादिचतुरो मासानेवं संपूजयेत्ततः ॥ १३ ॥ भूम्यासनस्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ सनंदनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम् ॥ १४ ॥ आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत् ॥ अष्टाक्षरेण मंत्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ १५ ॥ मार्गशीर्षादिमासानां पारणे भूमिपालक ॥ जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनां निबोधय ॥ १६ ॥ पौरुषेण च मंत्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ पंचामृतं पायसं च अपूपं घृतपाचितम् ॥ १७ ॥ एवं क्रमेण द्रव्याणि प्रतिमासु निबोधय ॥ स्नानं तु प्रथमं दद्याल्लक्ष्मीनारायणस्य च ॥ १८ ॥

आषाढमासकी द्वितीयाके दिन इस व्रतको समाप्त करै. उसीदिन अष्टाक्षर मंत्र ( ॐ नमो नारायणाय ) से हवन करै ॥१५॥ हे भूमिपालक ! मार्गशिरआदि महीनोंमें पारणके दिन विष्णुगायत्री ( ॐनारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धी महि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥) से हवन करै और चैत्रआदि महीनोंमें ॥ १६ ॥ 'सहस्रशीर्षापुरुषः' इत्यादि मंत्रोंसे हवन करै. पंचामृत, खीर, घीके मालपूआ, भोगके निमित्त बनवावै ॥ १७ ॥ इसप्रकार क्रमसे द्रव्योंको भगवान्की प्रतिमाके सन्मुख निवेदन करै. पहले लक्ष्मीनारायणको

१ 'मार्गशीर्षस्य' इत्यपि पाठो दृश्यते क्वचित् ।

स्नान करावै ॥ १८ ॥ बीचमें श्रीकृष्णपरमात्माकी सुवर्णकी प्रतिमा देवै. अन्तमें महात्मा वाराहजीकी चांदिकी प्रतिमा देवै ॥ १९ ॥ तदनन्तर केशवआदि भगवन्नामसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै और अपनी शक्तिके अनुसार दो वस्त्र तथा अलंकारादि देवै ॥ २० ॥ पूजन कर चुकनेपर घीके मालपुआ उपायनार्थ ब्राह्मणनिमित्त बारहवें दिन देवै ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् पूर्वकल्पित प्रतिमा संकल्प की हुई पूर्णशय्या सम्पूर्ण अलंकारोंसे आभूषित की हुई आचार्यको देवै ॥ २२ ॥ उसपर विधिपूर्वक लक्ष्मीनारायणकी पूजा

सौवर्णीं मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ राजतीं त्वंतिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः ॥ वस्त्रयुग्मैरलंकारैर्यथावित्तानुसारतः ॥२०॥ अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान् घृतपाचितान् ॥ उपायनार्थे विप्रेभ्यो द्वादशेभ्यो निवेदयेत् ॥२१॥ आचार्याय ततो दद्यात् प्रतिमां पूर्वकल्पिताम् ॥ शय्यां संकल्पितां पूर्णां सर्वालंकारभूषिताम् ॥२२॥ तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणं परम् ॥ कांस्यपात्रेण सहितामपूपैर्बहुभिस्तथा ॥२३॥ वस्त्रालंकारसहितां दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुंबिने ॥ दातव्या विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥२४॥ दानमंत्रः—लक्ष्म्या अशून्यशनं यथा तव जनार्दन ॥ शय्या ममाप्यशून्या स्याद्दानेनानेन केशव! ॥२५॥

करै और कांस्यपात्रसहित अपूर्व तथा बहुतसे ॥ २३ ॥ वस्त्र–अलंकार–दक्षिणासहित किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण और कुटुंबी वैष्णवको देवै. विधिवत् पूजाकरके ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ २४ ॥ दानमंत्र—हे जनार्दन ! जिसप्रकार आपकी शय्या लक्ष्मीसे अशून्य है, उसीप्रकार हे केशव ! इस शय्यादानसे हमारीभी शय्या अशून्य होवै ॥ २५ ॥

इसप्रकार भगवान्‌की प्रार्थना कर आप भोजन करै ॥ २६ ॥ पुरुष अथवा सौभाग्यवती स्त्री तथा विधवा स्त्री अशून्यशयनके निमित्त इस उत्तम व्रतको धारण करै ॥ २७ ॥ हे राजन्! इसप्रकार यह उत्तम व्रत हमने विस्तारसे तुमारे आगे वर्णन किया. इसके करनेसे जगन्नाथ भगवान् प्रसन्न होते हैं और जगन्नाथ भगवान्‌के प्रसन्न होनेसे अनेक प्रजाओंकी वृद्धि होती है ॥ २८ ॥ और तिन भगवान्‌की प्रसन्नतासे देवताओंकोभी दुर्लभ कार्योंकी सिद्धि होती है. इसकारण, जैसे बनै वैसें यह व्रत अवश्य करना उचित है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य विष्णूके परम पदकी इच्छा करते हैं, ते अवश्य यह व्रत करैं. यह हमने

एवं संप्रार्थ्य देवेशं स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ २६॥ पुरुषो वा सती वापि विधवा वा समाचरेत् ॥ अशून्यशयनार्थं च कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ २७॥ एवं तव मयाख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम ॥ सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः ॥२८॥ तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपि दुर्लभाः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत् समाचरेत् ॥ २९ ॥ अवश्यं गंतुकामेन तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ? ॥ ३० ॥ इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तं मुनिम् ॥ वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद ॥ ३१ ॥ शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्तान् शुभावहान् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्धनम् ॥ ३२ ॥ प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम् ॥ ३३ ॥

तुमसे कहा. अब आगे और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? " ॥३०॥ यह सुनकह राजर्षिने फिर मुनिसे पूछा– " हे महात्मन्! वैशाखमासमें छत्रदानका माहात्म विस्तारपूर्वक वर्णन करौ ॥ ३१ ॥ वैशाखमासके कर्तव्य शुभधर्मोंको सुनते हुये हमारी तृप्ति नहीं होती है. ऐसे यश और पुण्यवर्धक वचन सुनकर ॥ ३२ ॥ श्रुतदेव महायशस्वी उस महाभाग राजासे बोले. श्रुतदवेजी कहने लगे " वैशाखमें सूर्यके घामसे संतप्त हुये महात्माओंको " ॥ ३३ ॥

जो छतरी दान करते हैं, उनको अनन्त फल प्राप्त होता है. यहां इसके उदाहरणमें एक पुरातन इतिहास कहता हूं ॥ ३४ ॥ यह इतिहास वैशाखमें किये छत्रदान की सूचना करती है. पूर्वसमय वंगदेशमें एक हेमकांत नाम राजा विख्यात था ॥ ३५ ॥ वह कुशकतुका पुत्र महाबुद्धिमान् शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ था. एक दिन वह शिकार खेलता हुआ घने वनमें प्रवेश हो गया ॥ ३६ ॥ वहां अनेक प्रकारके हिरणों और बहुतसे शूकरोंको मारकर थक गया. तब मध्याह्नसमय मुनियोंके

ये कुर्वंत्यातपत्राणं तेषां पुण्यमनंतकम् ॥ अत्रैवोदारंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ ३४ ॥ वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा कृतयुगे कृतम् ॥ वंगदेशे पुरा कश्चिद्धेमकांत इति श्रुतः ॥ ३५ ॥ कुशकेतोः सुतो धीमान् राजा शस्त्रभृतां वरः ॥ एकदा मृगयासक्तो गहनं वनमाविशत् ॥ ३६ ॥ तत्र नानाविधान् हत्वा मृगान् क्रोडादिकान् बहून् ॥ श्रांतो मध्यान्हवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ ॥ ३७ ॥ तदा शतार्चिनो नाम ऋषयः शंसितव्रताः ॥ समाधिस्था न जानंति बाह्यकृत्यं तु किंचन ॥ ३८ ॥ तान् दृष्ट्वा निश्चलान् विप्रान् क्रुद्धो हंतुं मनो दधे ॥ भूपं निवारयामास शिष्याणामयुतं तदा ॥ ३९ ॥ दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः ॥ नो जानंति बहिः कृत्यं तस्मात्क्रोधं न चार्हसि ॥ ४० ॥

आश्रममें गया ॥ ३७ ॥ उससमय शतार्चिनाम ऋषि व्रतमें मग्न समाधिलगाये ध्यान कर रहे थे. उन्होंने अपने आश्रममें आये हुये राजाको नहीं जाना ॥ ३८ ॥ उन ऋषियोंको निश्चल देखकर राजा क्रोधकरके मारनेको उद्यत हुआ! तब ऋषियोंके दशहजार शिष्य राजाको निवारण करने लगे ॥ ३९ ॥ और बोले कि–"हे दुर्बुद्धे ! सुन; हमारे गुरु समाधिमें स्थित हैं. वे यह नही जानते हैं कि बाहर क्या हो रहा है. इसकारण, तुम उनपर क्रोध करनेको योग्य नहीं हो अर्थात् समाधिस्थ मुनियोंपर तुमको क्रोध नहीं

करना चाहिये ॥ ४० ॥ अनन्तर शिष्योंका वचन सुनकर क्रोधमें विह्वल हो राजा बोला—"हे ब्राह्मणो ! हम मार्गसे थककर आये हैं. तुमही हमारा अतिथ्यसत्कार करो"॥ ४१ ॥ ऐसे राजाने कहा, तब शिष्य राजासे बोले—"हे राजन् ! हम भिक्षा भोजन करनेवाले विना गुरुकी आज्ञा क्या करें ? ॥ ४२ ॥ हमलोग गुरुके आधीन है. आपका आतिथ्यसत्कार करनेको समर्थ नहीं हैं ." जब शिष्योंने इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया, तब उनको मारनेके लिये राजाने धनुष्य उठा लिया ॥ ४३ ॥ और कहा कि— " हमने अनेक वार पशु और

ततः शिष्यानुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः ॥ यूयं कुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रांतस्य मे द्विजाः ॥ ४१ ॥ एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम् ॥ नाज्ञप्ता गुरुभिर्भूप वयं भिक्षाशिनः कथम् ॥४२॥ गुरुतंत्राः कथं कर्तुमातिथ्यं न वयं क्षमाः ॥ प्रत्याख्यातो नृपः शिष्यैस्तान् हंतुं धनुराददे ॥ ४३ ॥ मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षिता मया ॥ ते मामेवोपशिक्षंति मया दत्तप्रतिग्रहाः ॥ ४४ ॥ एते मां न विजानंति कृतघ्ना भूरिमानिनः ॥ घ्नतोऽपि मे न दोषः स्यादेतान् वै ह्याततायिनः ॥ ४५ ॥ एवं विक्रुद्धमानः सन् शरान् मुंचन् शरासनात् ॥ तान् विद्रुताननुद्रुत्य जघ्ने शिष्यशतत्रयम् ॥४६॥ दुद्रुवुर्भयतः सर्वे विहायाश्रममंजसा ॥ विद्रावितेषु शिष्येषु बलादाश्रमसंस्थितान् ॥४७॥

डाकुओंके भयसे तुमारी रक्षा की है और हमसेही तुमने दान लिया. अब तुमलोग हमहींको उपदेश करते हो ! ॥ ४४ ॥ ये लोग हमको नहीं जानते हैं अर्थात् भूलगये हैं ! कृतघ्नी हैं और अपनेको बहुत मानते हैं तथा बडे आततायी हैं. इनके मारनेमें मुझको दोष नहीं है" ॥ ४५ ॥ इसप्रकार बहुत क्रोध कर धनुषसे वाण छोडने लगा ! जब वे भागने लगे तब उनको रोककर उनमेंसे तीनसौ शिष्योंको मार डाला ॥ ४६ ॥ तब बचे हुये सब शिष्य आश्रम छोडकर भाग गये. शिष्योंके भाग जानेपर आश्रममें धरी हुई

सामग्रियोंको ॥ ४७ ॥ पापबुद्धिवाले सैनिकजनोंने शीघ्र लूट लिया और सबने यथेष्ट भोजन किया और राजाने भी इस बातसे अपनी प्रसन्नता प्रगट की ॥ ४८ ॥ अनन्तर राजाने अपनी सेनासमेत पुरीमें सायंकालके समय प्रवेश किया. तदनन्तर कुशकेतुने अपने पुत्रके दुष्ट व्यवहारको सुनके ॥ ४९ ॥ पुरसे बाहर निकाल दिया और पुत्रकी वारंवार निन्दा करी हे राजन् ! क्षमाहीन पुरुष राज्यासनके योग्य नहीं होता अतः देशसे निकाल दिया ॥ ५० ॥ जब पिताने निकाल दिया तब राजा हेमकान्त बहुत विह्वल

संभारान् जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः ॥ यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः ॥ ४८ ॥ ततः सेनावृतो राजा पुरीमागाद्दिनात्यये ॥ कुशकेतुस्ततः श्रुत्वा तनयस्य विचेष्टितम् ॥४९॥ पुरान्निर्यातयामास गर्हयन् गर्हयन् सुतम् ॥ राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिप ॥ ५० ॥ पित्रा त्यक्तस्ततो राजा हेमकांतोऽतिविव्हलः ॥ वनं विवेश गहनं हत्याभिश्च सुपीडितः ॥ ५१ ॥ बहुकालमवात्सीच्च गव्हरे निर्जने वने ॥ आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः ॥ ५२ ॥ न क्वापि स्थितिमापेदे हत्ययाभिद्रुतो भृशम् ॥ अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः ॥५३॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन त्रितोनाम महामुनिः॥ तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यं दिने गते ॥५४॥

हो गया और एक गहन वनमें चला गया. वहां ब्रह्महत्यासे पीडित रहने लगा ॥ ५१ ॥ उस गहन और निर्जन वनमें बहुत कालतक रहा. अनेक जीवजंतुओंको मारमारकर खाता रहा ॥ ५२ ॥ हत्याके पापसे उसकी कहीं स्थिति नहीं थी. इधर उधर वनमें विचरता रहता था. ऐसे उस दुष्टात्माके अट्ठाईस वर्ष बीतगये ॥ ५३ ॥ एकदिन तीर्थयात्रा

करतेहुये त्रितनामक महामुनि वैशाखमें दोपहरके समय उस वनमें गये ॥ ५४ ॥ उससमय मुनिजी धूपसे व्याकुल और प्यासके मारे बहुत पीडित हो रहे थे. कहीं वृक्ष विहीन स्थानमें मूर्च्छित होकर गिर गये ॥ ५५ ॥ दैवयोगसे हेमकान्तने तृपासे पीडित, मूर्छित थकेहुये त्रितनाम महामुनिको देखा. देखकर उस नृपाधमको दया आगई और कृपा करी ॥ ५६ ॥ ढाकके पत्तोंसे उसीसमय छाता बनाकर धूप निवारण करनेको मुनिके शिरपर लगाया और अलाबुका जल दिया ॥ ५७ ॥ इसप्रकार करनेसे मुनिकी मूर्च्छा

गच्छन्नातपविक्लांतस्तृषया चातिपीडितः ॥ क्वचिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्छितोऽभवत् ॥ ५५ ॥ दैवाद्दृष्ट्वा हेमकांतस्त्रितं नाम महामुनिम् ॥ तृषार्तं मूर्च्छितं श्रांतं कृपां चक्रे नृपाधमः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मपत्रैस्तदा छत्रं कृत्वा चातपवारणम् ॥ मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलं ददौ ॥ ५७ ॥ लब्धसंज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः ॥ पत्रछत्रं क्षत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः ॥ ५८ ॥ ग्रामं कंचिच्छनैः प्राप्य किंचिदाप्यायितेंद्रियः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन ब्रह्महत्याशतत्रयम् ॥ ५९ ॥ विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः ॥ ततो विस्मयमापन्नो हेमकांतो महारथः ॥ ६० ॥ बहुधा पीड्यमानस्य ब्रह्महत्याः कथं गताः ॥ केनापि निष्कृता ह्येताः क्व गताः केन हेतुना ॥६१॥ इत्येवं चिंतयामामास ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ एवं चाज्ञस्थिते राज्ञि यमदूता अथागमन् ॥ ६२ ॥

दूर हो गई. जब चेत हुआ, थकावट जाती रही, तब क्षत्रीके दियेहुये उस छाताको लेके ॥५८॥ इन्द्रियोंमें बल आ जानेसे धीरे धीरे किसी गावमें पहुँचे. इस पुण्यके प्रभावसे तीनसौ ब्रह्महत्यायें ॥ ५९ ॥ उसकी क्षणभरमें दूर हो गईं. तब हेमकान्तको परम विस्मय हुआ ॥ ६० ॥ प्राणियोंको प्रायः पीडा देनेवालेकी ब्रह्महत्यायें दूर होगईं. "किसने दूर कर दीं ? ये हत्यायें कहा गईं ? किस हेतुसे दूर हो गईं." ॥ ६१ ॥ इस प्रकार ब्रह्महत्याओंसे छूट जानेके वारेमें चिन्ता करने लगा. ऐसे अज्ञानमें राजा हेमकान्त

जिससमय स्थित था, उसीसमय वहां यमदूत लोग आये ॥ ६२ ॥ वनमें रहनेवाले महात्मा हेमकान्तको ले जानेके लिये और प्राणोंको हरनेकी इच्छासे ग्रहणीरोग-उत्पन्न कर दिया ॥ ६३ ॥ तथा प्राणवियोगमें पीडित होते समय उसने तीन पुरुषोंका देखा. महाभयंकर, जिनके केश ऊपरको उठ रहे ऐसे यमदूत राजाको डराने लगे ॥ ६४ ॥ तब राजा अपने कर्मोंको विचारता हुआ मौन हो रहा. परंतु हे राजन् ! छाताके दानके प्रभावसे विष्णु भगवान्‌का स्मरण करने लगा ॥ ६५ ॥ उसके स्मरण-मात्रसे विष्णुभगवान्‌ने अपने मंत्री विष्वक्सेनको आज्ञा दी कि–" तुम शीघ्र जाकर यमदूतोंको निवारण करो ॥६६॥ वैशाखधर्ममें निरत हेमकान्तकी रक्षा करो. यह निष्पाप

नेतुमेनं महात्मानं हेमकांतं वने स्थितम् ॥ ग्रहणीं जनयामासुः प्राणान् हर्तुं महात्मनः ॥ ६३ ॥ तथा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन् ददर्श ह ॥ यमदूतान् महाघोरानूर्ध्वकेशान् भयंकरान् ॥ ६४ ॥ चिंतयानान् स्वकर्माणि तूष्णीमासीत्तदा नृपः ॥ छत्रदानप्रभावेन जाता विष्णुस्मृतिर्नृप ! ॥ ६५ ॥ तेन स्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनं स्वमंत्रिणम् ॥ उवाच तूर्णं त्वं गच्छ यमदूतान्निवारय ॥ ६६ ॥ वैशाखधर्मनिरतं हेमकांतं तु पालय ॥ निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ॥६७॥ मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुं च बोधय ॥ सर्वधर्मोज्झितो वापि ब्रह्मचर्यादिवर्जितः॥६८॥ वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः ॥ कृतागाश्चापि त्वत्पुत्रो मुनित्राणपरायणः ॥ ६९ ॥ वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नात्र संशयः ॥ तेन पुण्यप्रभावे शांतो दांतश्चिरायुषः ॥ ७० ॥

और हमारा भक्त है. पिताने पुरसे निकाल दिया ॥ ६७ ॥ सो इसके पिताके पुरमें जाकर हमारे कहे हुये वचनोंसे इसके पिता कुशकेतुसे कहो कि– 'यह तुमारा पुत्र सब धर्मोंसे रहित और ब्रह्मचर्यआदिसे हीन है ॥ ६८ ॥ परंतु वैशाखके धर्ममें निरत होनेसे हमारा प्यारा है. इसमें कुछ सन्देह नहीं है. तुमारे पुत्रने यद्यपि बहुत पाप किये हैं, तथापि धूपसे व्याकुल हुये मुनिकी रक्षा करी है ॥ ६९ ॥ वैशाखमें छाता दान करनेसे वह निस्सन्देह पापरहित हो गया है. उसी पुण्यके प्रभावसे यह शान्त, जितेन्द्रिय

और बहुत आयुवाला हो गया है ॥ ७० ॥ शूरता, उदारता आदि गुणोंकरके तुमारे समान हो गया है. अब तुम अपने इस महाबलवान् पुत्रको राज्यकाभार सौंप दो ॥ ७१ ॥ तथा महाराजा कुशकेतुसे कहना कि यह सब आज्ञा विष्णुभगवान्ने दी है. इसप्रकार राजाको समझाय बुझाय राजा हेमकान्तको उसके पिताके पास भेजकर समीप आ जाइये " ॥ ७२ ॥ यह आज्ञा भगवान्से पाय महाबली विष्वक्सेनने हेमकान्तके समीप जाकर यमदूतोंको निवारण किया ॥७३॥ अनंतर अपने हाथसे उसके शरीरको स्पर्श



शौर्यौदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि ॥ तस्मादेनं राज्यभारे संस्थापय महाबलम् ॥ ७१ ॥ विष्णुनैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम् ॥ पितुर्वंशे हेमकांतं स्थाप्य याहि च मां पुनः ॥ ७२ ॥इत्यादिष्टो भगवता विष्वक्सेनो महाबलः ॥ हेमकांतं समासाद्य यमदूतान्निवार्य च ॥ ७३ ॥ पाणिना शं तमेनैव पस्पर्शांगेषु भूमिपम् ॥ भगवद्भक्तसंस्पर्शाद्धतव्याधिः क्षणादभूत् ॥ ७४ ॥ विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा कुशकेतुर्महाप्रभुः ॥ ७५ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या दंडवत्पतितो भुवि ॥ गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥ ७६ ॥ स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयामास वैभवैः ॥ तस्मै प्रीतमनाः प्राह विष्वक्सेनो महाबलः ॥ ७७ ॥

किया. भगवान्के पार्षदका हाथ लगतेही उसकी सब व्याधि दूर होगई ॥ ७४ ॥ तदनंतर विष्वक्सेन उस हेमकांतको अपने साथ लेके, उसकी पुरीको गये. उसको देखकर महाराज कुशकेतुको बडा आश्चर्य हुआ ॥ ७५ ॥ और भक्तिपूर्वक शिर नमाय पृथिवीपर गिर दंडवत् कर भगवान्के पार्षदको घरके भीतर ले गये ॥ ७६ ॥ और अनेक स्तोत्रोंसे

स्तुति कर अपने विभवके अनुसार पूजन किया. तब विष्वक्सेनने प्रसन्नमन होकर ॥ ७७ ॥ हेमकांतको आगे कर जो विष्णुने कहा था वह सब बात कह सुनाई. सो सुनकर कुशकेतुने अपने पुत्र हेमकांतको राज्यासनपर बिठा दिया ॥ ७८ ॥ औरविष्वक्सेनसे संमति कर आज्ञानुसार स्त्रीको अपने साथ ले महाराज कुशकेतु वनको चले गये और विष्वक्सेन हेमकांतको समझाय उसको धन्यवाद देके ॥ ७९ ॥ श्वेतद्वीपको विष्णुके पास चले गये. तब राजा हेमकान्त वैशाखमें कहेहुये शुभधर्मोंको करने लगा ॥ ८० ॥ विष्णुको प्रसन्न करनवोले धर्मोंको प्रतिवर्ष करता रहा. ब्राह्मणोंमें भक्ति, धर्ममार्गमें स्थिति, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय ॥ ८१ ॥ सब प्राणियोंपर दयाभाव, सब यज्ञोंमें दीक्षित,

हेमकांतं समुदिश्य यदुक्तं विष्णुना पुरा॥ तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्च पुत्रं राज्ये निवेश्य च॥७८॥ विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमाविशत्॥ विष्वक्सेनो हेमकांतमनुमंत्र्याभिपूज्य च॥ ७९॥ श्वेतद्वीपं ययौ धीमान् विष्णुपार्श्वे महामनाः॥ हेमकांतस्ततो राजा वैशाखोक्तान् शुभावहान्॥८०॥ विष्णुप्रीतिकरान् धर्मान् प्रतिवर्षं चकार ह॥ ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शांतो दांतो जितेंद्रियः॥८१॥ दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥ प्राप्तद्धः सर्वसंपद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः॥ ८२॥ भुक्त्वा भोगान् समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान्॥८३॥ नेक्षेतु वैशाखसमांश्च धर्मान् सुखप्रयत्नान् बहुपुण्यहेतून्॥ पापेंधनाद्यग्निनिभान् सुलभ्यान् धर्मादिमोक्षांतपुमर्थहेतून्॥ ८४॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकांतस्य ब्रह्महत्यादिपापशमनं नाम दशमोध्यायः॥ १०॥

सब सम्पत्तियोंसे युक्त और पुत्रपौत्रादिसे युक्त हुआ ॥ ८२ ॥ फिर सब भोगोंको भोगकर विष्णुलोकको चला गया ॥ ८३ ॥ वैशाखके धर्मोंसे अधिक कोई धर्म नहीं है. ये धर्म सुखपूर्वक होते हैं. इनके करनेसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है. पापरूपी इंधनको जलानेके लिये ये धर्म अग्निसमान हैं. सुलभ हैं, तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके हेतु हैं ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसने हेमकांतस्य ब्रह्महत्यादि पापशमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मैथिलराजाने पूछा– "हे महात्मन्! जो वैशाखधर्म आपने वर्णन किये, वे बहुत सुलभ हैं और अनेक पुण्योंके करनेहारे है. जिनसे तत्काल विष्णुभगवान् प्रसन्न होते है और जो धर्म–अर्थ–काम–मोक्षके देनेवाले ॥१॥ शाश्वत और वेदविहित ऐसे हैं. ऐसे होनेपरभी वे लोकोंमें विख्यात कैसे नहीं हुये? राजसधर्म और तामसधर्म भी बहुतसे विख्यात हैं. जो बडे कठिन साध्य हैं, जिनमे बहुतसा उपाय करना पडता है और द्रव्यभी बहुतसा लगाना पडता है ॥ २ ॥ कोई माघमासकी प्रशसा करते हैं; कोई चातुर्मास्यको उत्तम कहते हैं ॥ ३ ॥ कोई

॥ मैथिल उवाच ॥ ॥ वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सद्यः पुमर्थानां तु हेतवः ॥ १ ॥ न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः ॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि भूरिशः ॥ दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः ॥ २ ॥ केचिन्माघं प्रशंसंति चातुर्मास्यान् परे जगुः ॥ ३ ॥ व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयंतीह भूरिशः ॥ एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद ॥ ४ ॥ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि न प्रख्याता इमे कथम् ॥ इतरेषां च धर्माणां कथं ख्यातिश्च भूतले ॥ ५ ॥ राजसास्तामसा भूमौ बहवः कामुका जनाः ॥ इच्छंत्यैहिकभोगांस्ते पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥ ६ ॥ क्वचित् कथं च न क्वापि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः ॥ स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥ ७ ॥

कोई व्यतीपात आदि धर्मकी बहुत बडाई करते हैं; यह विवेक विस्तारपूर्वक सुननेकी हमारी इच्छा है. सो हमारे आगे आप कहो" ॥ ४ ॥ श्रुतदेव बोले–"हे राजन्! वैशाखके कर्तव्यधर्म क्यों प्रसिद्ध नहीं है और अन्य धर्मोंकी प्रसिद्धि क्यों है सो हम तुमारे आगे कहते हैं ॥ ५ ॥ पृथ्वीपर रजोगुणी और तमोगुणी बहुत मनुष्य हैं, जो इस संसारके भोगोंकी और पुत्र–पौत्र तथा धनसम्पत्तिकी सदा इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ कोई कहीं किसी प्रकार अर्थात् जैसेतैसे करके एक मनुष्य स्वर्गके लिये अतिकठिनतासे प्रयत्न करता है. इससे यज्ञ आदि

सत्कर्मोंके करनेमे प्रवृत्त होता है ॥ ७ ॥ मोक्षका उपाय कोई मनुष्य नहीं करता है. थोडी आशासे बडे बडे कर्म करके अपने मनोरथकी सिद्धि चाहते है ॥ ८ ॥ इसीसे संसारमें राजस और तामस धर्म प्रसिद्ध हैं और जो भगवान्को प्रसन्न करनेवाले सात्विक धर्म हैं, वे प्रसिद्ध नहीं है ॥ ९ ॥ ये धर्म निष्कामिक है. इनसे ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है. भगवान्की मायासे मोहित हुये मूढबुद्धिवाले जन इन धर्मोंको नही जानते हैं ॥१०॥ जिसप्रकार आधिपत्य ( स्वामीपन ) अर्थात् अधिकार प्राप्त होनेपर सब मनोरथ

कुरुतेऽतिप्रयत्नेन मोक्षं नोपासते नरः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो जनाः काम्यानुपासते ॥ ८ ॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि तेन वै ॥ न ख्याताः सात्विका धर्मा हरिप्रीतिकरा इमे ॥ ९ ॥ निष्कामिका इमे धर्मा ऐहिकामुष्मिकप्रदाः ॥ न जानंति जना मूढा मोहिता देवमायया ॥ १० ॥ यथाधिपत्ये संप्राप्ते सर्वः सिद्धो मनोरथः ॥ मोहनार्थे स्थलं प्राप्तमाधिपत्यं न हीयते ॥ ११ ॥ कारणं च प्रवक्ष्यामि गोपने भूतलेऽजसा ॥ यद्वैशाखोक्तधर्माणां सात्विकानां नृणामिह ॥ १२ ॥ सार्वभौमः पुरा काश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः ॥ कीर्तिमानिति विख्यातो नृगपुत्रो महायशाः ॥ १३ ॥ जितेंद्रियो जितक्रोधो ब्रह्मण्यो राजसत्तमः ॥ एकदा मृगयासक्तो वसिष्ठाश्रममाययौ ॥ १४ ॥

सिद्ध होते हैं और मोहनार्थ स्थलमें प्राप्त हुआ अधिकार नष्ट नही होता है ॥ ११ ॥ इसका कारण कहते हैं. यह पृथ्वीपर छिपा हुआ है. यह वैशाखके कहे हुये धर्मोंमें सतोगुणी मनुष्योंका धर्म है ॥ १२ ॥ पूर्वसमय काशीपुरीमें इक्ष्वाकुवंशभूषण राजा नृगका पुत्र चक्रवर्ती, महायशस्वी कीर्तिमान् नाम राजा प्रसिद्ध था ॥ १३ ॥ वह जितेन्द्रिय, क्रोधको

जीतनेवाला, ब्राह्मणोंका भक्त और राजाओंमें उत्तम था. एकदिन हव आखेट करता हुआ वसिष्ठजीके आश्रममें जाकर प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ चलते मार्गेमें वहां यह देखा कि महात्मा वसिष्ठजीके शिष्य वैशाखके कर्तव्य धर्मोंमें वारंवार प्रवृत्त हो रहे हैं ॥१५॥ कहीं कोई प्याऊ लगा रहे हैं; कहीं छायामंडप वनवा रहे हैं; कोई निर्मल वापी ( वावडी ) वनवा रहे हैं ॥ १६ ॥ कोई सुखपूर्वक वृक्षके नीचे वैठे हुये पथिकजनोंपर पंखोंसे पवन झल रहे हैं; कोई इखका दान कर रहे हैं; कोई सुगंधित पदार्थ और फलोंको दे रहे हैं ॥ १७ ॥ दोपहरके समय छतरी और सायंकालमें कोई पीनेके द्रव्य दे रहे हैं; कोई पान दे रहे हैं; कोई नेत्रोंमें कपूर लगा रहे हैं ॥ १८ ॥ कोई घनी छायावाले वनमें

गच्छन् मार्गे ददर्शासौ वैशाखे धर्मनिष्ठुरे ॥ भूयोभूयः कार्यमाणान् शिष्यैस्तस्य महात्मनः ॥१५॥ क्वचित् प्रपां प्रकुर्वंति छायामंडपमेव च ॥ तटप्रपातं निस्तीर्य वापीं कुर्वंति निर्मलाम् ॥ १६ ॥ सूपविष्टान् क्वचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयंतिच ॥ क्वचिद्ददर्हीक्षुदंडान् क्वचिद्रंधान् क्वचित्फलम् ॥ १७ ॥ मध्यान्हे छत्रदानं च सायान्हे पानकस्य च ॥ क्वचिद्यच्छंति तांबूलं नेत्रे कर्पूरलेपनम् ॥ १८ ॥ सुच्छाये च वने केचित् सुसंमृष्टांगणेषु च ॥ केचिदास्तरयंत्यद्धा वालुकानि हितानि च॥१९॥ कुर्वंत्यांदोलिकां राजन् ! वृक्षशाखावलंविनीम् ॥ के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन्॥२०॥ किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः ॥ पुमर्थहेतव इमे क्रियंतेऽस्माभिरंजसा ॥ वसिष्ठस्याज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्तमम् ॥२१॥ एतदाचरणे पुंसां किं फलं कस्तु तुष्यति ॥ २२ ॥

झारवुहारस्थानको पवित्र कर ठंढी वालू विछा रहे हैं ॥ १९ ॥ कोई वृक्षकी डारमें झूला ढाल रहे हैं. हे राजन् ! इसप्रकार देखकर राजाने पूछा—" तुम लोग कौन हो ?" तव वे वोले कि—" हम वसिष्ठजीके शिष्य हैं " ॥ २० ॥ राजाने पूछा—" यह क्या कर रहे हो ? " तव वे वोले—" हम वैशाखमें कर्तव्य धर्मोंको कर रहे हैं. इनके करनेसे धर्म—अर्थ—काम—मोक्षकी प्राप्ति होती है. यह सव हम वसिष्ठजीकी आज्ञासे कर रहे हैं " ॥ २१ ॥ यह सुनकर उनसे राजाने फिर पूछा कि—" इन धर्मोंके कर-

नेसे पुरुषको क्या फल मिलता है और इनसे कौन देवता प्रसन्न होती है ? ॥ २२ ॥ यह विस्तारपूर्वक आप कहो; कि जिसप्रकार आपने सुना हो." जब राजाने यह पूंछा तब शिष्यलोग राजासे कहने लगे ॥ २३ ॥ "हमलोग गुरुकी आज्ञाके अनुसार मार्गमें इन सत्कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं. इसकारण हमको अवकाश नहीं है. आप हमारे गुरुसे जाकर पूछो ॥ २४ ॥ वह महायशस्वी इन सब धर्मतत्वोंको जानते हैं." वसिष्ठजीके शिष्योंकी यह बात सुनकर राजा वहांसे तुरन्त चल दिया ॥ २५ ॥ वसिष्ठमुनिका आश्रम परम प्रवित्र, विद्या और योगका स्थान था. राजाको आते देखकर वसिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुये ॥ २६ ॥ उन्होनें अपने अनुगामियोंसहित उस महात्मा

एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथा श्रुतम् ॥ इति राज्ञा तु संपृष्टाः प्रत्यूचुस्ते महीपतिम् ॥ २३ ॥ गुरोराज्ञाक्रमेणैव कुर्वतां पथि सत्क्रियाः ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र गुरुं पृच्छ यथोचितम् ॥ २४ ॥ स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान् महायशाः ॥ इति शिष्यैर्वसिष्ठस्य प्रत्युक्तस्तु द्रुतं ययौ ॥ २५ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं विद्यायोगोपबृंहितम् ॥ समायांतं नृपं वीक्ष्य वसिष्ठः प्रीतमानसः ॥ २६ ॥ आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्य महात्मनः ॥ सूपविष्टः कृतातिथ्यः प्रीतः पप्रच्छ तं गुरुम् ॥ २७ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम् ॥ मया पृष्टं च तैरुक्तं क्रियमाणं शुभावहम् ॥ २८ ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने ॥ कर्तव्या च क्रियास्माभिर्गुरुणा या च चोदिता ॥ २९ ॥

राजाका विधिपूर्वक अतिथिसत्कार किया. जब, राजा आसनपर भलीभांति बैठ चुका, तब प्रसन्नमन हो, गुरु वसिष्ठजीसे पूछने लगा ॥ २७ ॥ राजाने पूछा—" हे गुरो ! मार्गमें हमने परमआश्चर्य देखा कि आपके शिष्य बहुत अच्छे कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं. उनको हमने पूछा कि—' यह क्या कर रहे हो ? ' तब वे बोले कि—' हम शुभकर्म कर रहे हैं ॥ २८ ॥ परन्तु हम लोगोंको यह धर्म बतलाने और प्रशंसा करनेका अवकाश नहीं है. हमको तो जिसप्रकार गुरुदेवने बताया, उसीअनुसार हम लोग कर रहे हैं ॥ २९ ॥

गुरुके समीप जावो.' उनके कहनेसे हम आपके पास आये हैं. हम आखेटमें आसक्त थे. शरीरमें थकावट आ गई.इसकारण, आतिथ्यकी इच्छासे आये थे ॥३०॥ मार्गमें आपके शिष्योंको यह पुण्यकर्म, करते हुये देखा. तब हे मुनीश्वर! इन धर्मोंके सुननेकी हमको बडी अभिलाषा हुई ॥ ३१ ॥ आप सब धर्मोंको जानते हैं और इन धर्मोंको करतेभी है. उन्हीं धर्मोंको सुननेकी हमारी परम अभिलाषा है. इस हेतु आपके शिष्य है. आपको प्रणाम करते हैं. हे मुनिवर! हमको सुननेकी श्रद्धा है; विस्तरपूर्वक आप कहिये ॥ ३२ ॥

गुरुं गच्छेति तैरुक्त आगतोऽहं तवांतिकम् ॥ मृगयासक्तचित्तेन श्रांतेनातिथ्यमिच्छता ॥ ३० ॥ दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्च कारितम् ॥ जिज्ञासासीत्ततः श्रोतुं धर्मानेतान् मुनीश्वर ॥ ३१ ॥ त्वमादिरादिमान् धर्मान् समाचरसि वै यतः ॥ तान् धर्मान् श्रोतुकामाय शिष्याय प्रणताय च ॥ श्रद्धधानाय मे ब्रूहि विस्तरान्मुनिपुंगव ॥३२॥ इतीक्ष्वाकुकुलीनेन राज्ञा पृष्टो महायशाः ॥ मनसा तोषमापेदे सम्यक् पृष्टोऽधुनाऽमुना ॥ ३३ ॥ अहो व्यवसिता बुद्धी राजंस्तेऽद्य सुशिक्षिता ॥ ३४ ॥ यस्माद्विष्णुकथायां च तद्धर्माचरणेपि च ॥ मतिरात्यंतिकी जाता सुकृतं फलितं तव ॥३५॥ इति संभाष्य राजानं जातहर्षस्तमब्रवीत् ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बषैः॥ ३६ ॥

इक्ष्वाकुवंशभूषण महायशस्वी राजाने जब इसप्रकार. पूछा, तब भलीभांति पूंछे हुये वसिष्ठमुनि बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि ॥३३॥ " हे राजन्! तुमारी बुद्धि बहुत अच्छी है और सुशिक्षितभी है ॥३४॥ यह तुमारी बुद्धि विष्णुभगवान्‌की कथामें और धर्माचरण करनेमेंभी इसप्रकार उत्तमभावसे प्रवृत्त हुई है, ये तुमारे सुकृत फलीभूत हुये है " ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कहकर, अति प्रसन्नमनसे वसिष्ठजी कहने लगे–" हे राजन्! जो तुमने पूछा, उसका उत्तर हम इससमय वर्णन करते हैं, सुनो

जिसके सुननेमात्रसे सब पाप दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो सब धर्मोंको छोडकर विषयोंमें आसक्त हो जाता है, वहभी वैशाखमासमें नियमपूर्वक प्रतिदिन प्रातःस्नान करनेसे मधुसूदनभगवान्‌का प्यारा हो जाता है ॥ ३७ ॥ जिसने सांगोपांग सब धर्मोंका अनुष्ठान किया और स्नान-दान-पूजन आदि पुण्यकृत्योंसे वैशाखधर्मका आदर नहीं किया, उसको हरिभगवान् सदा दूर रहते है ॥ ३८ ॥ वैशाखमासको जिसने विनास्नानदान किये खो दिया, वह उस कर्मसे चांडाल होता है.इसमें कुछभी विचार नहीं है ॥ ३९ ॥ वैशाखमे कहेहुये महाधर्मोंके द्वारा जो हरिभगवान्‌का आराधन करता है, उसको भगवान् प्रसन्न होते हैं और उसकी मनोकामनाओ पूर्ण करते है ॥ ४० ॥ लक्ष्मीपति जगन्नाथ सम्पूर्ण

सर्वधर्मान् परित्यज्य वर्तते विषयात्मकः ॥ वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः ॥ ३७ ॥ सांगान् धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः ॥ स्नानदानार्चनैः पुण्यैस्तस्य दूरतरो हरिः ॥ ३८ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ कर्मणा स तु चांडालो नात्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाराधितो हरिः ॥ तैश्च तोषं समायाति प्रददाति समीहितम् ॥ ४० ॥ लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः ॥ ४१ ॥ धर्मैः सूक्ष्मैश्च प्रीणाति न प्रयासैर्धनैरपि ॥ भक्त्या संपूजितो विष्णुः प्रददाति समीहितम् ॥ तस्माद्राजन् सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः ॥ ४२ ॥ जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥ परितोषं व्रजत्याशु तृषार्तः सलिलैर्यथा ॥ ४३ ॥ महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पादि भूरिदम् ॥ ४४ ॥

पापोंके नाश करनेवाले हैं ॥ ४१ ॥ वे थोडेही धर्मसे प्रसन्न हो जाते हैं. बहुत परिश्रम और धनसे प्रसन्न नहीं होते है. भक्तिसे विष्णुभगवान्‌का पूजन सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करता है. इसकारण हे राजन् ! मधुसूदनभगवान्‌मे सदा भक्ति करनी चाहिये ॥ ४२ ॥ जलसे भी जगन्नाथकी पूजा करनेसे क्लेशहारी हरिभगवान् ऐसे प्रसन्न होते हैं, जैसे प्यासा मनुष्य जल मिलनेसे प्रसन्न होता है ॥ ४३ ॥ बडे बडे कर्म करनेसे थोडा फल मिलता है और छोटे कर्मोंसे बडे फल मिल जाते है ॥ ४४ ॥

कर्मोंके बहुत बडे हेतुत्वमें महाकर्म और अल्पकर्म हेतु नहीं हैं. किन्तु कर्मके स्वरूप हैं. कर्मोंकी गति गहन है ॥ ४५ ॥ वैशाखमें कहेहुये ये धर्म थोडे परिश्रमसे किये जा सकते हैं और द्रव्यका भी बहुत नहीं व्यय होता है. परन्तु विष्णुभगवान्‌के प्रसन्न करनेका यह अच्छा उपाय है ॥ ४६ ॥ इसकारण, हे राजन् ! तुम भी वैशाखमें कहे हुई धर्मोंको करौ और अपनी राजधानीमें सब मनुष्योंद्वारा यह उत्तम धर्म कराओ ॥ ४७ ॥ जो अधम मनुष्य वैशाखमें कहे धर्मोंको नही करै, हे राजन् ! उसको तुम दंड

कर्मणो भूरिहेतुत्वे न हेतू महदल्पके ॥ किं तु कर्मस्वरूपं च गहना कर्मणो गतिः॥४५॥ वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पायासकृता अपि॥ बहुव्ययविहीनाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वमपि भूपाल वैशाखोक्तान् समाचर ॥ त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैः सर्वैः कारये-मान् शुभावहान् ॥ ४७ ॥ न करोति च यो धर्मान् वैशाखोक्तान्नराधमः ॥ बहुधा शिष्यमाणोऽपि स दंड्यस्तव भूपते॥ ४८ ॥ इत्याव-श्यकतां सम्यक् शास्त्रैर्व्युत्पाद्य तस्य च ॥ पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान् धर्मान् प्रोवाच सर्वशः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा तान् सकलान् धर्मान् गुरुं सं-पूज्य भक्तितः ॥ स राजा गृहमागत्य सर्वान् धर्मांश्चकार ह ॥ ५० ॥ भक्तिमान् केशवे राजन् देवदेवे निरंजने ॥ नान्यं पश्यति देवे-शात् पद्मनाभान्महीपतिः ॥ ५१ ॥

देओ ॥ ४८ ॥ इसप्रकार शास्त्रमें कही हुई सब आवश्यक बातोंको कहकर वैशाखमें कहे सब धर्मोंको भलीभांति कह दिया ॥ ४९ ॥ उन सब धर्मोंको सुनकर भक्तिपूर्वक गुरु वसिष्ठकी पूजा करके वह राजा अपने घर आकर सब धर्मोंको करने लगा ॥ ५० ॥ तथा हे राजन् ! वह राजा देवदेव निरंजन केशव भगवान्‌में परम

भक्ति करता हुआ देवेश भगवान् पद्मनाभके अतिरिक्त किसीको नहीं देखता हुआ ॥ ५१ ॥ फिर हाथीपर डंका धरवाय अपनी राजधानीमें योद्धाओंके द्वारा सूचना करा दी कि–"आठ वर्षके बालकसे लेके अस्सी वर्षकी अवस्थाका ॥५२॥ जो मनुष्य मेषकी संक्रान्तिमें प्रातःसमय स्नान नहीं करेगा, उसको हम दंड देवेंगे. अवश्य करके मारेंगे और देशसे बाहर निकाल देंगे ॥ ५३ ॥ पिता वा पुत्र, स्त्री अथवा कोई इष्ट मित्र हो, जो वैशाखोक्त धर्म नहीं करैगा, उसको हम दस्युके समान समझेंगे ॥५४॥ प्रातःसमय निर्मल जलमें स्नान कर मुख्य ब्राह्मणोंको दान देओ, प्याऊ बिठाओ और शक्तिअनुसार अन्य शुभ धर्मोंको करो" ॥ ५५ ॥ इसप्रकार आज्ञा देके राजाने

भेरीमुद्वाद्य मातंगे स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्नेहि पूर्यते ॥ ५२ ॥ प्रातर्न स्नाति मेषस्थे सूर्ये सर्वोऽपि यो जनः ॥ स मे दंड्यश्च वध्यश्च निर्यास्यो विषयाद्ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाऽथ सुहृज्जनः ॥ वैशाखधर्महीनश्च विग्राह्यो दस्युवन्मया ॥ ५४ ॥ दातव्यं विप्रमुख्येभ्यः स्नात्वा प्रातर्जले शुभे ॥ प्रपादानादिधर्मांश्च कुरुध्वं शक्तितोऽनघाः ॥ ५५ ॥ विप्रं च धर्मवक्तारं ग्रामे ग्रामे न्यवेशयत् ॥ पंचानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम् ॥ दंडार्थं त्यक्तधर्माणां दशवाजीनिषेवितम् ॥५६॥ एवं प्रवृत्तः सर्वत्र सार्वभौमस्य शासनात् ॥ प्रवृद्धो धर्मवृक्षोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात् ॥ ५७ ॥ ये केचिन्निधनं यांति भूपालविषये नराः ॥ प्रमादाच्च नृपश्रेष्ठ ते यांति हरिमंदिरम् ॥ ५८ ॥ अवश्यं वैष्णवो लोकः प्राप्यते मानवैर्द्रुतम् ॥ ५९ ॥

धर्मोपदेश करनेवाला एक एक ब्राह्मण गाँवगांवमें बिठा दिया और पांच पांच पर एक अधिकारी नियत कर दिया. अधर्मियोंको दंड देनेके निमित्त दशदश सवार नियत किये ॥ ५६ ॥ इसप्रकार इस सार्वभौम राजाकी आज्ञासे यह धर्मरूपी वृक्ष सब देशोंमें विस्तारपूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुवा ॥ ५७ ॥ जे कोई मनुष्य इस कीर्तिमान् राजाके नगरमे मर जाते थे, हे राजन् ! वे प्रमादसे मरने परभी सीधे वैकुण्ठलोकको चले जाते थे ॥ ५८ ॥ अवश्यही शीघ्र उन मनुष्योंको विष्णुलोककी प्राप्ति होती थी ॥ ५९ ॥

जो कोई मेषकी संक्रान्तिमें प्रातःसमय किसी मिष ( बहाने ) से एक वारभी स्नान कर लेता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको चला जाता है ॥ ६० ॥ वैशाखमासमें एकवारभी स्नान करनेसे जीव यमलोकको नहीं जाता है. हे राजन् ! उस सूर्यवंशी राजाने यमराजके लेखोंको मिटा दिया ॥ ६१ ॥ तब चित्रगुप्तको कुछ लिखनेका काम नहीं रहा. वे सब मेट दिये गये जो पाप और पापकर्मोंसे उत्पन्न पुराने लेख थे ॥ ६२ ॥ अपने कर्ममें स्थित विष्णुलोकको जानेवाले मनुष्योंके वे पुराने सब पाप दूर

व्याजेनापि सकृत्स्नातः प्रातर्मेषगते रवौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥ ६० ॥ न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ वैलेख्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप ॥ ६१ ॥ लेख्यकर्मणि विश्रांतश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा ॥ मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥ ६२ ॥ गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात् ॥ शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापप्राणिविवर्जिताः ॥ ६३ ॥ भग्नयानोऽभवन्मार्गो वैशाखस्य प्रभावतः ॥ सर्वेपि विमलाकारा जना यांति हरेः पदम् ॥ ६४ ॥ दिवौकसां तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाऽभवन् ॥ शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥ ६५ ॥ नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह ॥ नाक्रंदः श्रूयते राजन् प्राक्श्रुतो नरके यथा ॥ ६६ ॥

कर दिये गये. सब नरक शून्य हो गये. पापी जीव वहां नहीं रहे ॥६३॥ वैशाखमासके प्रभावसे नरकका मार्ग भग्नयान हो गया अर्थात् वहां जानेवाला कोई नहीं रहा. सब लोग दिव्यरूप धारण कर विष्णुलोकको चले गये ॥६४॥ तथा देवताओंके भी सब लोक शून्य हो गये. जब स्वर्ग और नरक सब शून्य हो गये ॥६५॥ तब नारदमुनि राजाके पास

जाकर यह बोले कि–" हे राजन् ! जैसे पहले नरकमें हाहाकार सुनाई देता था, वैसा शब्द अब नहीं सुन पडता है ॥ ६६ ॥ पापकर्म करनेवालोंकी कुछ लिखापढी भी नही होती है. चित्रगुप्तभी हाथपर हाथ धरे मुनियोंमें समान मौनभाव धारण किये बैठे हैं ॥ ६७ ॥ हे राजेन्द्र ! पापकर्म करनेवाले माया और दंभसे विवर्जित मनुष्य तुमारे लोकको नहीं आते है. इसका कारण क्या है सो कहो " ॥ ६८ ॥ इसप्रकार जब महात्मा नारदजीने कहा, तब धर्मराज कुछ दीनतासे कहने लगे

तथा न क्रियते लेख्यं किंचिद्दुष्कृतकर्मणाम् ॥ चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मुनिसंस्थितः ॥६७॥ कारणं ब्रूहि राजेंद्र न यांति तव मंदिरम् ॥ मनुष्याः पापकर्माणो मायादंभविवर्जिताः ॥ ६८ ॥ एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना ॥ प्राह वैवस्वतो राजा किंचिद्दैन्यसमन्वितः ॥ ६९ ॥ योऽयं नारद भूपालः पृथिव्यां सांप्रतं स्थितः ॥ सोऽतिभक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे ॥ ७० ॥ प्रबोधयति वैशाखधर्मं भेरीस्वनेन च ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्नं हि पूर्यते ॥७१॥ यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दंड्यो न संशयः ॥ तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लंघंति कदा च न ॥७२॥ गच्छंति वैष्णवं धाम कर्मणा तेन नारद ॥ वैशाखसेवनाल्लोका यास्यंति हरिमंदिरम् ॥७३॥

॥ ६९ ॥ " हे नारदजी ! पृथ्वीपर आजकल जो राजा है, वह पुराण पुरुषोत्तम हृषीकेश भगवान्का परम भक्त है ॥ ७० ॥ उसने अपनी राजधानीमें नगाडाके द्वारा सूचना करा दी है कि–" आठ वर्षके बालकसे लेके अस्सीवर्षके बूढे मनुष्यतक ॥ ७१ ॥ जो वैशाखधर्म नहीं करैगा, वह अवश्य दंड पावैगा." इसकारण, उस राजाके भयसे सब प्रज लोग वैशाखके धर्मोंका उल्लंघन कभी नहीं करते हैं ॥ ७२ ॥ हे नारदजी ! इसी कर्मसे विष्णुधामको सब जाते हैं. वैशाखधर्मके सेवनसे लोग हरिधामको

चले जाते हैं ॥ ७३ ॥ हे मुनिवर ! उस राजाने इससमय हमारे लोकमें आनेका मार्ग लुप्त कर दिया है. सब नरक और देवलोकोंको शून्य कर दिया है ॥ ७४ ॥ लेखक ( चित्रगुप्त ) को लिखनेके लिये कुछ नहीं रहा. पहलेके लेख मनुष्योंने मेट दिये हे मुने ! वैशाखमासके धर्मोंका ऐसा माहात्म्य है ॥ ७५ ॥ वैशाखमासके धर्मोंको करके हे द्विज ! मनुष्य ब्रह्महत्याआदि पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परम पदको जाते हैं ॥ ७६ ॥ सो हम काठके तुल्य हो गये. हमको कुछ सूझ नहीं पडता. हम उस

तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ मार्गो लुप्तो ममाधुना ॥ कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम् ॥ ७४ ॥ विश्रांतो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः ॥ वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वीदृशं मुने ॥ ७५ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज ॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि यांति विष्णोः परं पदम् ॥ ७६ ॥ सोऽहं काष्ठसमो जातो न कश्चिन्मम गोचरः ॥ युद्धं कृत्वा तु तं हन्मि सर्वथाऽद्य महाबलम् ॥ ७७ ॥ अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः ॥ तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ यदि दैवादवध्योऽहं तदा ब्रह्माणमेत्य च ॥ निवेद्य तस्मै तत् सर्वं पश्चात् स्वस्थस्थितिर्भवेत् ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा द्विजमामंत्र्य सानुगः प्रययौ भुवम् ॥ सकालो महिषारूढो दंडमुद्यम्य भीषणम् ॥ ८० ॥

महाबली राजासे युद्ध कर उसको मारेंगे ॥ ७७ ॥ जो स्वामीके कामको विना किये हाथपर हाथ धरे बैठा रहता है, उसका विभव नष्ट हो जाता है और वह अवश्य नरकमें जाता है ॥ ७८ ॥ जो वह हमारे मारे नहीं मरेगा तो हम ब्रह्माजीके समीप जाकर उसका सब वृत्तान्त कहकर सावधान होकर बैठ रहेंगे " ॥ ७९ ॥ इसप्रकार नारदमुनिसे

संमति कर अपने अनुचरोंको साथ लेके पृथ्वीपर गया. कालसहित भैंसापर चढ, भीषण दंड उठाय ॥ ८० ॥ मृत्यु-रोग-जराआदि महाउत्कट पार्षदोंको संग लेके तथा पचास करोड यमदूतोंको लेकर ॥ ८१ ॥ शीघ्रही उस राजाकी पुरीको जा घेरा और सब लोकोंको भय करनेवाला महाघोर शंख बजाया ॥ ८२ ॥ जब राजा कीर्तिमान्ने सुना कि–' यमराजने हमारी पुरी आकर घेर ली ' तब अपनी सब सेना सज्ज कर नगरके बाहर निकला ॥ ८३ ॥ उन दोनोंका वहां रोमांच होनेवाला घोर युद्ध हुआ. मृत्यु,

मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः ॥ पंचाशत्कोटिसंख्याकैर्यमदूतैर्वृतस्ततः ॥ ८१ ॥ स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलां पुरीम् ॥ शंखं दध्मौ महाघोरं सर्वलोकभयंकरम् ॥ ८२ ॥ तच्छ्रुत्वा तु स राजर्षिर्ज्ञात्वा वैवस्वतं यमम् ॥ स सज्जीकृतसर्वस्वः पत्तनान्निर्ययौ रुषा ॥ ८३ ॥ तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् ॥ मृत्युं कालं तथा रोगं यमं भूतपतिं तथा ॥ ८४ ॥ जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः ॥ ततः क्रुद्धो यमो राजा स्वयमभ्येत्य तं रुषा ॥ ८५ ॥ युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादं चकार ह ॥ चकर्त राजा तस्यापि कार्मुकं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ८६ ॥ पुनश्चर्मासिमादाय यमो हंतुमुपागमत् ॥ तं दृष्ट्वा तु नृपः क्रुद्धः पुनश्छित्वाऽसिचर्मणी ॥ ८७ ॥ निचखान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् ॥ यमस्तेनाहतः क्रुद्धस्ततो दंडमुपाददे ॥ ८८ ॥

काल, तथा रोग तथा यमदूतोंके स्वामीको ॥ ८४ ॥ जीतकर क्षणभरमें भगा दिया. तब तो यमराज स्वयं क्रोधकरके राजा कीर्तिमान्के सन्मुख आया ॥ ८५ ॥ और बहुतसे बाण चलाकर सिंहनाद किया. अनन्तर राजाने यमके धनुष्को तीन बाणोंसे काटकर फेंकदिया ॥ ८६ ॥ तब यमराज ढाल खड्ग लेकर राजाको मारनेके निमित्त आया. उसको देखकर राजाने महाक्रोधकरके ढाल और खड्गको काट गिराया ॥८७॥ और काले सांपके समान फुंकार करनेवाला एक तीक्ष्ण बाण यमराजके मस्तकमें मारा, तब यम-

राजने क्रोधकरके अपना दंड उठाया ॥ ८८ ॥ उस दंडको ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित कर राजाके ऊपर छोडा. तब तो सब मनुष्योंके देखते बडा हाहाकार मच गया ॥ ८९ ॥ उसीसमय विष्णुने अपने भक्तकी रक्षाके निमित्त सुदर्शनचक्र छोडा सो रणमें शीघ्र आकर ॥ ९० ॥ यमदंडसे युद्ध करने लगा और ब्रह्मास्त्रका निवारण कर यमके मारनेको उद्यत हुआ ॥ ९१ ॥ तब देवभक्त राजा डरकर भगवान्के अद्भुत चक्रकी स्तुति करने लगा कि–हे विष्णुके हाथके आभूषण! हे सहस्रार! तुमको नमस्कार है ॥ ९२ ॥ तुमको

ब्रह्मास्त्रेण च संमंत्र्य दंडं तस्मै मुमोच ह ॥ हाहाकारो महानासीज्जनानां पश्यतां तदा ॥ ८९ ॥ तदा विष्णुः स्वभक्तस्य रक्षायै प्राहिणोदरम् ॥ विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे ॥ ९० ॥ यमदंडेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च ॥ यमं हंतुमथारेभे सहस्रारं महाद्भुतम् ॥ ९१ ॥ देवभक्तस्ततो भीतस्तदाऽस्तौच्चक्रमंजसा ॥ सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण ॥ ९२ ॥ त्वं सर्वलोकरक्षायै हरिण च धृतं पुरा ॥ त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम् ॥ ९३ ॥ नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हि न चापरः ॥ तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते ॥ ९४ ॥ नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपांतिकम् ॥ पुनर्ययौ महाराज देवानां पश्यतां दिवि ॥ ९५ ॥ ततो यमोतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ ॥ स ददर्श तमासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम् ॥ ९६ ॥

भगवान्ने सर्व लोकरक्षार्थ धारण किया. हे हरिभक्त! हे महाबली! इस समय तुमसे यमको मांगता हूं ॥ ९३ ॥ देवताओंके द्रोही मनुष्योंका तुमही काल हो; दूसरा कोई नहीं है. इसकारण, हे जगत्पते! इस यमकी रक्षा करो और इसपर कृपा करो" ॥ ९४ ॥ इसप्रकार जब राजाने सुदर्शनचक्रकी स्तुति करी, तब तो चक्रने यमराजको राजाके समीप छोडकर सब देवताओंके देखते २ वैकुंठको चला गया ॥ ९५ ॥ तब यमराज बहुत उदास होकर ब्रह्माजीके स्थानको गया. ब्रह्माजीके चारों ओर मूर्तामूर्त जनोंको बैठे देखा ॥ ९६ ॥

देवताओंके आश्रय, जगत्के उत्पत्तिके कारण और सब लोकोके पितामह हैं. सम्पूर्ण लोकपाल और दिग्पाल उपासना कर रहे ॥ ९७ ॥ इतिहास और पुराण आदि मूर्ति धारण किये खडे हैं; समुद्र, नदी और सरोवर ये मूर्तिमान् विद्यमान् हैं ॥ ९८ ॥ पीपलको आदि ले सब वृक्ष खडे हैं; वापी, कूप, तडाग और पर्वत ये मूर्तिमान् वहां उपस्थित हैं ॥ ९९ ॥ तथा रातदिन, पक्ष, मास तथा संवत्सर, कला, काष्ठा, निमेष, ऋतु, अयन, युग ॥१००॥ संकल्प, विकल्प, निमेष, उन्मेष, नक्षत्र, योग, करण, पूर्णिमा, अमावास्या

देवाश्रयं जगद्बीजं सर्वलोकपितामहम् ॥ उपास्यमानं विविधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥ ९७ ॥ इतिहासपुराणाद्यैर्वेदैर्विग्रहसंस्थितैः ॥ मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः ॥९८॥ देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषितैः ॥ वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥ ९९ ॥ अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैस्तथा ॥ कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चायनैर्युगैः ॥१००॥ संकल्पैश्च विकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा ॥ ऋक्षैर्योगैश्च करणैःपूर्णिमामासु संक्षयैः ॥ १ ॥ सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभालाभैर्जयाजयैः ॥ सत्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम् ॥ २ ॥ शांतमूढांतिप्रौढैश्च विकारैः प्राकृतैरपि ॥ वायुना देवदेवेन श्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम् ॥ ३ ॥ तेषां मध्येऽविशत् सौरिः सव्रीडा च वधूर्यथा ॥ विलोकयन् धरापृष्ठं म्लानवक्त्रं व्यदर्शयत् ॥ ४ ॥

॥१०१॥ सुख, दुःख, भय, लाभ, अलाभ, जय, अजय, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ १०२ ॥ शान्त, मूढ, प्रौढ, प्राकृत, विकार, कफ, वात, पित्त आदि सब चराचर मूर्तिमान् सेवामे खडे हैं ॥ १०३ ॥ उनमें यमराज ऐसे प्रवेश करताहुआ जैसे लाज भरीहुई कुलवधू होती हैं. वहां यमराज भूमिकी ओर देखने लगे. मुख मलीन हो गया ॥ १०४ ॥

अनुचरोंके संग यमराजको आकर समीप बैठे देखकर बडे विस्मयसे सब परस्पर कहने लगे कि-' यहां इस समय यमके आनेका कारण क्या है ? ॥ १०५ ॥ लोकोंके कर्ता श्रीब्रह्माजीके दर्शन करनेके लिये क्या आया है ? परन्तु यमराजको तो क्षणभरभी अपने कामसे अवकाश नहीं मिलता है ॥ १०६ ॥ सो यह यहां किसकारण आया है ? देवतालोग तो कुशलसे हैं. बडेही आश्चर्यकी बात है कि यमराजके वस्त्रभी जीर्ण हो रहे हैं ॥ १०७ ॥ लेखक ( चित्रगुप्त ) भी इसके पीछेही साथ आया है. यहभी बडा दीन

संप्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम् ॥ विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥ ५ ॥ संप्राप्तो लोककर्त्तारं द्रष्टुं देवं पितामहम् ॥ निर्व्यापारैः क्षणमपि योऽयं नास्ति रवेः सुतः॥६॥सोयमभ्यागतः कस्मात् कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम्॥ आश्चर्यातिशयो यश्च संमार्जितपटस्त्वयम् ॥ ७ ॥ लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महतान्वितः ॥ न कदाचित्पटो ह्यस्य मार्जितो धर्मभीरुणा ॥ ८ ॥ यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तदिहाद्य प्रपद्यते ॥ एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥९॥ निष्पापाताग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनंदनः ॥ कृतमूलो यथा शाखी त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥११०॥ परिभूतोस्मि देवेश संमार्जितपटः कृतः॥ त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन ॥ ११ ॥

हो रहा है. कदाचित् इसके वस्त्र यमराजने तो नहीं फाड डाले हैं ॥ १०८ ॥ जो न कभी देखा और न सुना, वह इस समय यहां उपस्थित है. ' इस प्रकार वे सब कह रहे थे कि प्राणियोंका शासनकर्ता ॥ १०९ ॥ सूर्यका पुत्र यमराज ब्रह्माजीके सन्मुख भूमिपर गिर पड़ा! जिसप्रकार जड कट जानेसे वृक्ष गिर पडता है और आपके ' शरण हूं. रक्षा करौ. ' ऐसे कहकर रोने लगा ॥११०॥ हे देवेश ! मेरी प्रतिष्ठा भंग हो गई ! मैं लुट गया ! ! मेरे सब वस्त्र लूट लिये गये ! ! ! हे कमलासन ! तुम्हारे सरीखे स्वामिके

रहते मेरी यह दुर्गति हो गई ॥ १११ ॥ हे राजश्रेष्ठ ! इसप्रकार कहकर यमराज मूर्च्छित हो गया, तब तो सभामें कोलाहल शब्द हुआ ॥ ११२ ॥ " जो यमराज स्थावर-जंगम सब जीवधारियोंको भक्षण करता है, सो यमराज दुःखसे पीडित होकर किसकारण रुदन करता है ? ॥ ११३ ॥ प्राणियोंको दंड देनेवाला यह यम कैसे दुःखी हो गया है ? पाप करनेवाला मनुष्य शोभाको नहीं प्राप्त होता है " ॥ ११४ ॥ इस प्रकार परस्पर कोलाहलशब्दको सुनकर ब्रह्माजीकी सम्मतिसे पवन देवताने उन

एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूव नृपसत्तम ॥ ततः कोलाहलः शब्दः सभायां समजायत ॥ १२ ॥ यो हि खादयते मर्त्यान् सर्वान् स्थावरजंगमान् ॥ सो वै रुदति दुःखार्तः कस्माद्वैवस्वतो यमः ॥ १३ ॥ जनसंतापकर्त्ता यः सोऽचिराद्यात्यशोभनम् ॥ न हि दुष्कृतकर्ता हि नरः प्राप्नोति शोभनम् ॥ १४ ॥ ततो निवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा ॥ लोकानां समवेतानां मतं ज्ञात्वा स वेधसः ॥१५॥ निवार्य लोकान् मार्तंडिं शनैरुत्थापयन् मरुत् ॥ भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥ १६ ॥ विव्हलं तं परायत्तमासने सन्निवेशयत् ॥ आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनुः रवेः सुतम् ॥ १७ ॥ केन त्वमभिभूतोसि केन स्थानान्निवारितः ॥ केनायं मार्जितो देव पटो लेखपटस्तव ॥ १८ ॥ ब्रूहि सर्वमशेषेण कुतो हेतोस्त्वमागतः ? ॥ यः प्रभुस्तात सर्वेषां स ते कर्ता ममापि च ॥ अपहृष्यति मार्तंडे दुःखं हृदयसंस्थितम् ॥ १९ ॥

सबकी वाणीको रोक दिया ॥ ११५ ॥ अनन्तर सबको हटाकर यमराजको धीरे धीरे अपनी लंबी और मोटी भुजाओंसे उठाया. संसारमें विचरनेवाला परम बुद्धियुक्त यह पवन है ॥ ११६ ॥ जो यम बहुत विह्वल हो रहा था, उसको आसनपर बिठाकर वायुने कहा ॥ ११७ ॥ "किससे तुम पराभव हुये हो और किसने तुमको स्थानसे निकाल दिया है ? हे देव ! तुमारे वस्त्र और लेखपट किसने जीर्ण कर दिये हैं ? ॥ ११८ ॥ तुम ब्रह्मदेवके सन्मुख सब वृत्तान्त कहो. जो सबका प्रभु और हमारा तुमारा भी कर्ता है.

हे यम ! वह तुमारे हृदयमें स्थित दुःखको दूर कर देवेगा" ॥ ११९ ॥ इस प्रकार पवनके कहनेपर यमराजजी राजा कुशकेतुके पुत्रका मुखावलोकन करनेके दिनसे उस दिनतकका सब वृत्त बडे दीनस्वर और गद्गदवाणीसे बोलने लगे ॥ १२० ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ यमराजजीने कहा–" हे पितामह ! मेरी बात सुनो; मैं लोप हो गया. अपने पदके खंडनको मैं मरनेसेभी अधिक मानता हूं ॥ १ ॥ हे कमलासन ! जो जिस कामपर नियुक्त

स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे ॥ विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोति दीनम् ॥ १२० ॥
॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥
॥ यम उवाच ॥ ॥ शृणु मे वचनं नाथ लोपितोऽहं पितामह ॥ मरणादधिकं मन्ये मत्पदस्य च खंडनम् ॥ १ ॥ नियोगी न नियोग्यं
हि करोति कमलासन ! ॥ प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः ॥ २ ॥ योऽश्नाति लोभाद्वित्तानि प्रज्ञावांश्च महीपतेः ॥ स तिर्य-
ग्योनिनरकं याति कल्पशतत्रयम् ॥ ३ ॥ निस्पृहो नाचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसंभव ॥ भुक्त्वा तु नरकान् घोरान् स पुमान् वायसो
भवेत् ॥ ४ ॥ आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिकार्यं विलुंपति ॥ भवेद्वेश्मनि पापात्मा आखुः कल्पशतत्रयम् ॥ ५ ॥

किया जाय और वह अपना काम नहीं करता है, वह अपने स्वामीके धनको वृथा खाता है और काठका कीडा अर्थात् घुन बनता है ॥ २ ॥ जो बुद्धिवान् लोभसे राजाके धनको विना कामकिये खाता है, वह तिर्यग्योनिमें जन्म-पाता हुआ तीनसौ कल्पपर्यन्त नरक भोगता है ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो विना इच्छावाला होकर अपने स्वामीके कार्यको सम्पादन नहीं करता है, वह नर घोर नरकोंको भोगकर कौआका जन्म पाता है ॥ ४ ॥ जो अपने काममें लगा रहकर स्वामीके कार्यको नष्ट कर देता है, वह पापी तीनसौ

कल्पतक चूहेका जन्म पाता है ॥ ५ ॥ जो जिस कामपर नियुक्त है, वह कार्य करनेंकी सामर्थ्य होनेपरभी काम छोडकर नित्य घरमें बैठ रहता है, वह मनुष्य बिल्लीका जन्म पाता है ॥ ६ ॥ हे देव ! सो मैं तुमारी आज्ञाके अनुसार प्रजाके धर्मोंका साधन करता हूं, पुण्य करनेवालेको पुण्यकर्मसे और पाप करनेवालेको पापकर्मसे ॥ ७ ॥ भलीभांति विचारकर धर्मशास्त्रके जाननेवाले मुनियोंद्वारा कल्पके आदिमें वर्तमान जो यातना - सो मैंने दीन्हीं ॥ ८ ॥ परंतु अब इसप्रकार आपके नियोगको करनेमें मैं समर्थ नहीं हूं,

नियोगी यश्च भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यं स्ववेश्मनि ॥ शक्तस्तु कार्यकरणे मार्जारो जायते नरः ॥ ६ ॥ सोऽहं देव तवादेशात् प्रजाधर्मेण साधये ॥ पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥ ७ ॥ सम्यगू विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो ॥ कल्पादौ वर्तमानस्य यातना दापयं मम ॥ ८ ॥ कर्त्तुं नियोगमेवं हि त्वदीयो नैव शक्नुयाम् ॥ राज्ञा कीर्तिमता भग्नो नियोगस्तव च क्षितौ ॥ ९ ॥ भयादस्य जगन्नाथ पृथिवीं सागरांबराम् ॥ वैशाखधर्मसहितां पालयन् वर्तते क्वचित् ॥ १० ॥ विहाय सर्वधर्मांश्च विहाय पितृपूजनम् ॥ विहायाग्निसपर्यां तु तीर्थयात्रादिसत्क्रियाः ॥ ११ ॥ योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राणनिरोधनम् ॥ त्यक्त्वा होमं तु स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः ॥ १२ ॥

पृथ्वीपर कीर्तिमान् राजाने आपके नियोगको उखाड दिया है ॥९॥ हे जगन्नाथ ! इस राजाके भयसे समुद्रतक सब पृथ्वीके लोग वैशाखके कर्तव्य धर्मोंका पालन करते हैं ॥१०॥ अन्य सब धर्मोंको छोडकर और पितरोंका पूजन, अग्निष्टोमादि यज्ञ, तथा तीर्थयात्रा आदि शुभ कर्मोंको प्रजाने त्याग दिया है ॥ ११ ॥ योगसांख्यको त्यागकर प्राणा-

पापको भी त्याग दिया है. होम और स्वाध्याय ( वेदपाठ ) आदिका नामभी नहीं लेते हैं. एवं नानाप्रकारके पापकर्म करकेभी ॥ १२ ॥ वैशाखके कर्तव्य धर्मोंको करके वैकुंठको जाते हैं. वे मनुष्य पिता तथा पितामहसहित एवं ॥ १३ ॥ उनकेभी पिता तथा पितरोंके पिता, तथा मातामह और उनकेभी पितासे आदि लेके ॥ १४ ॥ उनकेभी नेता और उनके भी जनक आदिकके पूर्वज वैकुंठलोकको चले जाते हैं. ये सब दुःख मेरे मस्तकको पीडा पहुँचाते हैं ॥ १५ ॥ हमारे लेखपत्रको मिटाकर स्त्रीके पिता पितामह आदि तथा पितरोंके बीजसे धात्री आदिकी कुक्षिमें होनेवाले सब विष्णुलोकको चले जाते हैं ॥ १६ ॥ जो कोई एक मनुष्य जो कर्म करता है, वह अकेलाही

प्रयांति वैष्णवं लोकं कृत्वा वैशाखसत्क्रियाः ॥ मनुजा पितृभिः सार्धं तथैव च पितामहैः ॥ १३ ॥ तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा ॥ तथा मातामहा यांति तेषां वै जनकादयः ॥ १४ ॥ तेषामपि च नेतारो जनित्रीणां हि पूर्वजाः ॥ एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम् ॥ १५ ॥ प्रियायाः पितरो यांति मार्जयित्वा लिपिं मम ॥ पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतो विभो ॥ १६ ॥ यदेकेन कृतं कर्म तदेकेनैव भुज्यते ॥ तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुलं तु यः ॥ १७ ॥ तारयेत्तावुभौ पक्षौ षड्विंशोपर्यलं विभो ॥ प्रियायाश्चापि वै तात सर्वे वै कुक्षिसंभवाः ॥ १८ ॥ तेऽपि सर्वे जगन्नाथ यांति विष्णोः परं पदम् ॥ न मे प्रयोजनं देव नियोगेनेदृशेन वै॥१९॥वैशाखधर्मनिरतः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम् ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य त्यक्तपापेति शोभनः॥२०॥

अपने किये कर्मका फल भोगता है, परन्तु कुलभरमें कोई एक ही ऐसा धर्मात्मा होता है, जो सबको दूरकर ॥ १७ ॥ दोनों पक्ष ( मातृपक्ष, पितृपक्ष ) की छब्बीस छब्बीस पीढियोंको संसारसागरसे पार कर देता है. तथा अपनी स्त्रीके कुलके और वर्णसंकरतकको पार कर देता है ॥ १८ ॥ हे जगन्नाथ ! जब येभी सब विष्णुके परमपदको जाते हैं, तब हे देव ! इस कामपर मुझको नियुक्त करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १९ ॥ वैशाखधर्ममें तत्पर रहकर मनुष्य मुझको त्यागकर वैकुंठको जाता है और अपने

संग इक्कीस पीढियोंके पाप छुड़ाकर तार देता है और उनको दिव्य शरीर प्राप्त होता है ॥ २० ॥ वे सब मेरे मार्गको त्यागकर विष्णुलोकको जाते हैं. इसप्रकार यज्ञादि करनेसे देवगतिको मनुष्य नही प्राप्त होता है ॥२१॥ न सब तीर्थ करनेसे, न दान आदिकसे, न तपसे, न व्रत करनेसे तथा अनेकप्रकारके धर्माचरण करनेसेभी वह गति नहीं मिलती है ॥ २२ ॥ प्रयागतीर्थमे पतन होनेसे, रणके बीच शरीरपात होनेसे, भृगुके पतनसे, काशीमें मरण होनेसे जो गति नहीं मिलती है, वह वैशाखके धर्ममें निष्ठावान्

स त्यक्त्वा मम मार्गं हि प्रयाति हरिमंदिरम् ॥ न यज्ञैस्तादृशैर्देव गतिं प्राप्नोति मानवः ॥ २१ ॥ सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः ॥ अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाप्नोति तां गतिम् ॥ २२ ॥ प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम् ॥ न तां गतिं यांति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च यां प्रपद्यते ॥२३॥ प्रातः स्नात्वा देवपूजां च कृत्वा श्रुत्वा कथां मासमाहात्म्यसंज्ञाम् ॥ धर्मान् कृत्वा चोचितान् वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः ॥ २४ ॥ अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पतेः ॥ यो न पूर्येत कोट्यौघैः सर्वतः कमलासन ! ॥ २५ ॥ माधवावसथेनेह समस्तेन पितामह ! ॥ विकर्मस्थाऽविकर्मस्थाः शुचयोऽशुचयस्तथा ॥ २६ ॥

पुरुषोंको सहजहीमें प्राप्त हो जाती है ॥ २३ ॥ प्रातःसमय स्नान कर देवपूजा कर वैशाखमासमाहात्म्यकी कथाको सुनकरके उचित वैष्णव धर्मोंको करनेसे वह विष्णु-अधिपति हो जाता है ॥ २४ ॥ हे जगत्पते ! विष्णुका लोक प्रमाणरहित है ऐसा मैं मानता हूं. हे कमलासन ! जो करोडों मनुष्योंसे भी नही भरता है ॥ २५ ॥ हे पितामह ! माधवभगवान्के निवाससे विकर्ममें स्थितिवाले वा जे कोई अविकर्ममें स्थित हैं, तथा जे पवित्र हैं वा अपवित्र रहते हैं ॥ २६ ॥

राजाकी आज्ञासे वैशाखके कर्तव्य धर्मोंको करके, सब लोग वैकुंठको चले जाते हैं, जो राजा हमारा और आपका विशेष करके शत्रु है ॥ २७ ॥ हे जगन्नाथ ! आपको उचित है कि-'इस राजाको रोकैं.' सब धर्म त्यागकर वैशाखमें केवल स्नान करनेहीसे ॥ २८ ॥ कुसंस्कारवाले मनुष्य हरिमन्दिर वैकुंठको चले जाते हैं. जो हम इसका पक्ष करैं, तो विष्णुभगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेके ॥ २९ ॥ यह राजा सब लोकको वैकुंठ ले जायगा; इसमें सन्देह नहीं है. यह दंड और यह पट जो आपने दिया था, सो आपके चरणोंमें निवेदन है ॥ ३० ॥ इस राजाने लोकपालत्वका बहुत मार्जन किया है. माताको क्लेश देनेवाले पुत्रके होनेसे क्या फल है ? ॥ ३१ ॥ सूर्य ज्येष्ठमासमें

कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यांति नृपाज्ञया ॥ योऽस्माकं हि महच्छत्रुर्भवतां च विशेषतः ॥२७॥ निग्राह्यो जगतां नाथ भवताऽसौ महीपतिः ॥ हित्वा हि सकलान् धर्मान् सकृद्वैशाखस्नान तः ॥ २८ ॥ असंस्कृतजना यांति वैकुंठं हरिमंदिरम् ॥ अस्माभिस्तु कृतोपेक्षो विष्णुपादैकसंश्रयः ॥२९॥ समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नात्र संशयः ॥ एष दंडः पटो ह्येषस्तव पद्भ्यां निवेदितः ॥ ३० ॥ लोकपालत्वमतुलं मार्जितं तेन भूभुजा ॥ किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै ॥ ३१ ॥ यो न पातयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः ॥ वृथासुता हि युवतिर्जाता चेद्धि कुपुत्रिणी ॥ ३२ ॥ न तस्याः स्फुरते कीर्तिर्घनस्थेव शतन्हदा ॥ यः पितुर्नोद्धरेत् पापा-द्विद्यया वा बलेन वा ॥ ३३ ॥ मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यः प्रतीपो भवेत् सुतः ॥ ३४ ॥

जिसप्रकार प्राणियोंको व्याकुल कर देता है, उसी प्रकार जो शत्रुओंको नहीं गिराता है, वह अपनी माताकी कुक्षिमें वृथाही उत्पन्न हुवा. उस माताको कुपुत्रिणी जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार बादलमें बिजली चमककर शीघ्र शांत हो जाती है, इस प्रकार उसकी कीर्ति नहीं बढती है और न ठहरती है जो विद्या अथवा बलसे अपने पिताका उद्धार नहीं करता है ॥ ३३ ॥ वह इस पृथ्वीमें केवल माताके उदररोगके समान है. जो पुत्र धर्म, अर्थ और काममें विमुख होता है ॥ ३४ ॥

महात्मालोग उसको मातृघाती कहते हैं; वह पुत्र मनुष्योंमें अधम होता है. परन्तु इसकी माता राजपत्नी अपने सत्कर्मोंकरके जगत्में विख्यात है ॥ ३५ ॥ संसारमें ब्रह्माने कोईकोई वीरमाता प्रगट करी है, इसमें संशय नहीं है. जैसे यह कीर्तिमान् राजा हमारी लिपी दूर कर देनेकोही उत्पन्न हुवा है ॥ ३६ ॥ हे देव ! ऐसा आजतक किसी क्षत्रीनें नही किया. हे जगन्नाथ ! पटमार्जनकी बात तो पुराणोंमें भी नहीं सुनी गई ॥ ३७ ॥ हे जगत्पतीश ! यह मैं नहीं जानता हूं कि इस राजाके शिवाय कोईभी राजा इसप्रकार भगवान्में तत्पर हुवा हो, जिसने पटमार्जनकी घोषणा कर दी और यमपुरीमें आनेका मार्ग रोक दिया " ॥ ३८ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये

मातृहा ह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः ॥ तन्माता नृपपत्नी च लोकख्यातसत्क्रिया ॥ ३५ ॥ एकैकवीरसूर्लोके विरंचे नात्र संशयः ॥ यथा वै कीर्तिमाञ्जातो मल्लिपेमार्जनाय वै ॥ ३६ ॥ नेदं व्यवसितं देव केनचित् क्षत्रियेण हि ॥ पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम् ॥ ३७ ॥ सोहं न जानामि जगत्पतीश ऋते क्षितीशं हरितत्परं तम् ॥ प्रचोदयंतं पटहं सुघोषं विलोपमानं मम वेश्ममार्गम् ॥ ३८ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे यमदुःखनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थं खिद्यते भवान् ॥ सद्गुणेषु कृतस्तापः स तापो मरणांतिकः ॥ १ ॥ तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम् ॥ न गच्छंति हरेर्लोकं कथं भूपस्य शासनात् ॥ २ ॥ एकोऽपि गोविंदकृतः प्रणामः शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः ॥ यज्ञस्य कर्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामो न पुनर्भवाय ॥ ३ ॥

नारदांबरीषसंवादे यमदुःखनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले—"हे यमराज ! तुमने क्या आश्चर्य देखा? तुम किस हेतु दुःखी होते हो? सद्गुणोंमें ताप करनेसे वह ताप मरणका कारण हो जाता है ॥ १ ॥ उसके उच्चारणमात्रसेही परमपद प्राप्त होता है तो राजाके शासनसे लोग विष्णुलोकको जाते हैं यह क्या कुछ आश्चर्य है ? ॥ २ ॥ एकवारभी जो गोविन्दको प्रणाम करता है, तो सौ अश्वमेध यज्ञोंके समान फल प्राप्त होता है. यज्ञके करनेवालेको तो फिर जन्म लेना पड़ता है, परंतु जो हरिभगवान्को

प्रणाम करता है, वह फिर नहीं जन्म लेता लेता है ॥ ३ ॥ उसको फिर कुरुक्षेत्र जानेसे क्या और सरस्वतीमें स्नान करनेसे क्या ? जिसकी जीभके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर विराजमान हैं ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण, चांडाली और विशेषकरके रजस्वलोको भोग करता है, यदि वह विष्णुका प्रतिदिन स्मरण करे तो उसको परम पद प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करनेसे संचय हुये पापोंसे छूटकर, लक्ष्मीनारायणको स्मरण करनेवाला विष्णुकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे यम ! इसप्रकार यह वैशाखनाम मास विष्णुको प्यारा है; जिसके धर्म सुननेमात्रसेही सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ ७ ॥ उस वैशाखके धर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसको क्या

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा ॥ जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणः श्वपचीं भुंजन् विशेषेण रजस्वलाम् ॥ यदि विष्णुं स मरणे स्मरन्नाप्नोति तत्पदम् ॥५॥ अभक्षभक्षणाज्जातं विहायाघस्य संचयम् ॥ प्रयाति विष्णुसायुज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥ ६ ॥ एवं विष्णुप्रियो मासो वैशाखो नाम वै यम ! ॥ यद्धर्मश्रवणादेव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ७ ॥ यातानि किं नु वक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः ॥ यस्मिन् संगीयते यो हि प्रीयते पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ कथं न याति च गतिं तस्यानुष्ठानतत्परः ॥ अस्माकं जगतां नाथो जनिता पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥ तस्येष्टान् माधवे मासि धर्मानेतान् करोत्ययम् ॥ तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहाये सर्वदा स्थितः ॥ १० ॥ न तस्य भूपतेः सौरे प्रभावो मम शिक्षणे ॥ न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥ ११ ॥

कहना है ? जो इस मासमें इस धर्मके गानमात्रसेही विष्णुभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जिस वैशाखधर्मानुष्ठानमें तत्पर पुरुष गतिको क्यों नहीं प्राप्त होता अर्थात् अवश्य परम गतिको पाता है. वह जगत्का नाथ पुरुषोत्तम हमारा पिता है ॥ ९ ॥ माधवभगवान्के प्रिय धर्मोंको जो वैशाखमासमें करता है, उसपर विष्णुभगवान् प्रसन्न होकर उसकी सर्वदा सहायता करते हैं ॥ १० ॥ हे यमराज ! उस राजाका प्रभाव हमारी शिक्षामें नहीं है. वासुदेव भगवान्के भक्तोंको कहींभी अमंगल नहीं होते हैं ॥ ११ ॥

जन्म, मरण, जरा ( बुढापा ), व्याधि ( रोग ) भय ये नहीं होते हैं परंतु जबतक शक्ति रहे तबतक स्वामीके कार्यमें नियुक्त रहे ॥ १२ ॥ शक्ति रहे तबतक कार्य करता रहे तो वह कृतार्थ हो जाता है और नरकोंमें नहीं गिरता है और जब कार्य करनेकी शक्ति नहीं रहे तब स्वामीसे निवेदन कर देवे ॥ १३ ॥ जब ऐसा करे तब सेवक अनृणी होता है और वह नियोगी सुख पाता है, इसकारण अपने अर्थको निवेदन कर देवे तो न ऋणी रहता है, न पातकी रहता है ॥ १४ ॥ अपने कर्तव्य धर्मका पालन करनेसे मनुष्य अपराधी नहीं रहता है. हे यम! इस कार्यके करनेमें जब तुम असमर्थ हो तब तुम सोच करनेके योग्य नहीं हो अर्थात् तुमको शोच नहीं करना चाहिये

जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नाभ्युपजायते ॥ नियोगी स्वामिकार्येषु यावच्छक्तिःसमीहते ॥१२॥ तावता स कृतार्थःस्यान्नरकान्नैव गच्छति ॥ कार्ये शक्तिविनिष्क्रांते स्वामिने च निवेदयेत् ॥ १३ ॥ अनृणस्तावता भृत्योनियोगी सुखमश्नुते ॥ तस्मान्निवेदितार्थस्य न ऋणं न च पातकम् ॥ १४ ॥ यत्ने कृते स्वकर्तव्ये नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्नैव शोचितुमर्हसि ॥१५॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सौरिः पुनरत्यंतखिन्नधीः ॥ उवाच दीनया वाचा गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ १६ ॥ प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदंघ्रिभजनेन वै ॥ नाहं यास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसंभव ॥ १७ ॥ प्रशासति महावीर्ये भूपेऽस्मिन् भूमिमंडले ॥ चालयित्वा स्वधर्माश्च तमेकं भूपतिं विभो ॥१८॥ कृतकृत्योस्मि तनयो गयायां पिंडदो यथा ॥ कृपालो तदिदं कार्यं साधयस्व ममाव्ययम् ॥ १९॥

॥ १५ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीके कहनेपर यमराज बहुतही दुःखी हुआ. कंठ रुकने लगा; नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे और दीनवाणीसे बोला ॥१६॥ " हे तात! तुमारे चरणोंका भजन करनेसे मुझको सब कुछ प्राप्त हो गया, परंतु हे ब्रह्मन्! अब मैं फिर अपने कामपर नहीं जाऊंगा: मैं अपने कामपर नियुक्त न किया जाऊं; मेरी इच्छा नहीं है ॥१७॥ जबतक इस पृथ्वीमंडलपर यह महाबली राजा अपना शासन करता है, तबतक हे विभो! एकबार इस राजाको अपने धर्मसे चलायमान कर दूंगा ॥ १८ ॥ तब कृत-

कृत्य हूंगा. जैसे, गयामें पिंड देनेसे पुत्र कृतकृत्य हो जाता है. हे कृपालो ! हमारा यह कार्य आप साधन कर दो ॥ १९ ॥ तब मैं फिर सावधान होकर आपकी आज्ञाके अनुसार शासन करूं." यमराजकी बात सुनकर ब्रह्माजी फिर शोच विचारमें पड गये ॥ २० ॥ और यमराजको ब्रह्माजी फिर बहुत कुछ समझाबुझाकर बोले-" हे यम ! विष्णुधर्मपरायण राजाको तुम निग्रह नहीं कर सकते हो ॥ २१ ॥ यदि कोपसे तुम छलना चाहते हो तो चलो हम' तुम हरिके पास चलें. सब बात उनसे

विज्वरस्तु ततो भूयः शासनं ते करोम्यहम् ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिंतापरायणः ॥२०॥ तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सांत्वयन् बहुधाप्यमुम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ न निग्राह्यो त्वया राजा विष्णुधर्मपरायणः ॥ २१ ॥ यदि च्छलयसे कोपाद्गच्छामो ह्यंतिकं हरेः ॥ निवेद्य सकलं तस्मै कर्म पश्चात्तदीरितम् ॥ २२ ॥ स एव कर्ता लोकस्य धर्मस्य परिपालकः ॥ स च दंडधरोऽस्माकं शास्ता कर्त्ता नियामकः ॥ २३ ॥ न तदुक्तेऽस्ति प्रत्युक्तिरस्माकं विहिता वृष ॥ न राजोक्तेस्तु प्रत्युक्तिर्दृश्यते क्वापि भूतले ॥ २४ ॥ इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीरांबुधिं ययौ ॥ ब्रह्मा तुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणं परमेश्वरम् ॥ २५ ॥ सांख्ययोगैरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् ॥ आविरासीत्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतो हरिः ॥ २६ ॥

कहें, पश्चात् जो वह कहें वही किया जायगा ॥२२॥ वही लोकके कर्ता और धर्मकी रक्षाकरनेवाले हैं,और वही हमको दंड देनेवाले, हमको आज्ञा देनेवाले और नियममें चलानेवाले हैं ॥२३॥ हे यम ! विष्णुकी आज्ञाके विरुद्ध हम कुछ नहीं कर सकते हैं और राजाकी शक्तिके विरुद्ध इस भूमंडलमें कुछ नहीं देख पडता है ॥ २४ ॥ इसप्रकार यमको समझाकर उसको अपने साथ लेके ब्रह्माजी क्षीरसागरमें गये और प्रसन्नमनसे चिन्मात्र, निर्गुण, परमेश्वर ॥ २५ ॥ अद्वितीय एकमात्र पुरुषोत्तम भगवान्‌की सांख्ययोगद्वारा स्तुति करने

लगे. तब ब्रह्माजीकी स्तुति सुनकर हरिभगवान् विष्णुजी प्रगट हुये ॥ २६ ॥ हरिभगवान्को यम और ब्रह्माजी शीघ्र प्रणाम करते भये. विष्णुभगवान् उन दोनोंके प्रति मेघसमान गंभीर वाणीसे बोले ॥ २७ ॥ " तुम दोनो किस हेतु यहां आये हो ? क्या दनुजोंकरके दुःखको प्राप्त हुये हो और यमराजका मुख क्यों मलीन हो रहा है? इसके कांधे किस कारण झुक रहे है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमसे यह वृत्तांत कहो." तब ब्रह्माजी बोले– " हे भगवन् ! आपके श्रेष्ठ दास राजाके शासनसे सब मनुष्य ॥ २९ ॥

प्रणामं चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् ॥ तावुवाच महाविष्णुर्मेघगंभीरया गिरा ॥२७॥ कस्माद्युवामिहायातौ किं दुःखं दनुजैरभूत् ॥
म्लानं यममुखं कस्मात् केन वा नतकंधरः ॥ २८॥ एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चाब्जकंजजः ॥ त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै
नराः ॥ २९ ॥ वैशाखधर्मनिरता यांति ते पदमव्ययम् ॥ ततो यमपुरी शून्या तेन चातीव दुःखितः ॥ ३० ॥ तेन युद्धं चका-
रासौ हंतुं दंडमथाददे ॥ त्वच्चक्रेण पराभूतो ययावद्य ममांतिकम् ॥ ३१ ॥ न च शक्ता वयं दंडं त्वद्भक्तानां महात्मनाम् ॥
तस्मात्त्वामेव शरणं वयं प्राप्ता महाविभो ॥ ३२ ॥ तस्माद्भूपं दंडयित्वा पालयैनं यमं स्वकम् ॥ इत्युक्तः प्रहसन् प्राह ब्रह्माणं
यममेव च ॥ ३३ ॥

वैशाखधर्ममें तत्पर हैं. आपके परमपदको चले जाते हैं. यमपुरी शून्य हो गई, इसीसे यह यम अतिदुःखी हो रहा है ॥ ३० ॥ यह यम उस राजासे युद्ध करने गया और अपना दंड उसके मारनेको उठाया ! अनन्तर आपके चक्रने इसको परास्त किया. तब यह हमारे पास आया ॥३१॥ हम आपके महात्मा भक्तोंको दंड देनेको समर्थ नहीं हैं. इसकारण, हे महाप्रभो ! हम आपकी शरण आये हैं ॥३२॥ इसकारण, राजाको दंड देकर इस यमकी रक्षा कीजिये." यह सुनकर विष्णुभगवान् हंसते हुये ब्रह्मा और यमसे बोले ॥३३॥

'मैं लक्ष्मीका त्याग कर सकता हूं और प्राण अथवा देहका परित्याग कर सकता हूं. श्रीवत्स, कौस्तुभमणि अथवा वैजयन्तीमालाकोभी त्याग सकता हूं ॥ ३४॥ श्वेतद्वीप, वैकुंठ, एवं क्षीरसागर, शेष तथा गरुडको त्याग सकता हूं, परन्तु अपने भक्तको कदापि नहीं त्याग सकता हूं ॥३५॥ जिन भक्तोंने हमारे निमित्त सम्पूर्ण भोगोंका परित्याग कर दिया है, प्राणत्याग कर दिया, अपने आत्माको हमारेहीमें लगादिया उनको हे ब्रह्माजी ! आपही कहो, हम कैसे त्याग सकते हैं ? ॥ ३६ ॥इसकारण हे यम ! हम तुमारा दुःख दूर करनेका यत्न

लक्ष्मीं वाऽपि परित्यक्ष्ये प्राणान् देहमथापि वा ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयंतीमथापि वा ॥ ३४ ॥ श्वेतद्वीपं च वैकुंठं क्षीरसाग-
रमेव च ॥ शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३५ ॥ विसृज्य सकलान् भोगान् मदर्थे त्यक्तजीवितान् ॥ मदात्मकान् महा-
भागान् कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वदुःखशमने ह्युपाय कल्पयाम्यहम् ॥ तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपतेर्भुवि ॥ ३७ ॥
गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरांतक ॥ आयुःशेषे तेन नीते मत्सायुज्यं गतेऽपि च ॥३८॥ भविष्यति ततो राजा वेनो नाम दुरात्म-
वान् ॥ स लुंपति महाधर्मान् सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान् ॥ ३९ ॥ तदा वैशाखधर्माश्च विच्छिन्नाः स्युर्न संशयः ॥ स्वकृतेनैव पापेन वेनो
दग्धो भविष्यति ॥ ४० ॥ पश्चादहं पृथुर्भूत्वा पुनर्धर्मान् प्रवर्तये ॥ तदा जनेषु प्रख्यातान् वैशाखोक्तान् करोम्यहम् ॥ ४१ ॥

करते हैं. उस राजाको हमने दशहजार वर्षकी आयु पृथ्वीपर दी है ॥३७॥ हे नरांतक ! उसमेंसे आठहजार वर्ष संख्या बीत गई. शेष दो हजार वर्ष बीत जानेपर वह हमारी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होगा ॥३८॥ अनन्तर एक वेननामवाला दुराचारी होगा. वह इन वेदोक्त सब धर्मोंका लोप कर देवैगा ॥ ३९ ॥ उससमय वैशाखमासके धर्मभी नाश हो जायंगे इसमें संशय नहीं. तदनंतर अपनेही किये पापोंसे राजा वेन नाश हो जायगा ॥ ४० ॥ तत्पश्चात् हम पृथुरूप धारण कर धर्मको फिर प्रवृत्त करेंगे और वैशाखोक्त धर्म



मा.
.४॥

जो विख्यात है, उनको मनुष्योंमें प्रचार करावेगे ॥ ४१ ॥ जो हमारा भक्त है, जिसने अपने प्राणोंको निछावर कर दिया है, जिसने सब वस्तु त्यागकर दी हैं, ऐसा भक्त तो हजारोंमें एकही होता है. उसको ये वैशाखोक्त धर्म हम कहेंगे ॥ ४२ ॥ पृथ्वीमें इन धर्मोंको कोई कोईभी जानते हैं. इसकारण हे यम ! तुमारा कार्य सिद्ध हो जायगा. तुम खेद न करौ ॥ ४३ ॥ वैशाखधर्मके करनेवाले सम्पूर्ण महात्माओंद्वारा इस वैशाखमासमें भी तुमको भाग दिलाऊंगा ॥ ४४ ॥ राजासेभी तुमारा भाग मिलेगा. तुम खेद नहीं

मद्भक्तो मद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः ॥ एकः सहस्रे भविता तस्य प्रख्यातयेद्धि तान् ॥४२॥ कश्चिदेव हि जानातु धर्मानेतान् क्षितौ मम ॥ ततस्ते भविता कार्यं मा विषीद नरांतक ॥ ४३ ॥ दापयिष्यामि ते भागं मासेऽस्मिन् माधवेऽपि च ॥ नरैः सर्वैश्च वैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः ॥ ४४ ॥ भूपेनापि च कालेन खेदं शमय तेन च ॥ वीर्यशुल्कं तु ते भागं शत्रोर्भुङ्क्ते बलाधिकात् ॥ ४५ ॥ गृह्णन् गृह्णन् स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति ॥ त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहं ये नरा भुवि ॥ ४६ ॥ स्नानं वार्घ्यं सोदकुंभं दध्यन्नं चांतिमे दिने ॥ वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत् ॥ तस्मात् क्रोधं त्यज नृपे भागदे मत्परायणे ॥ ४७ ॥ ये के चापि प्रकुर्वंति लोके ते भागदा नराः ॥ वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नं च मा कुरु ॥ ४८ ॥

करौ. पराक्रमसे प्राप्त होनेयोग्य तुमारे भागको वह राजा अपने बलकी अधिकतासे शत्रुसे लेते हैं ॥ ४५ ॥ अपने भागको ग्रहण करता हुआ भागी दुःखके योग्य नहीं है. जो मनुष्य पृथिवीमें प्रतिदिन तुमारे उद्देशसे स्नानादि नहीं करते हैं ॥ ४६ ॥ अथवा अन्तदिनमें स्नान, अर्घ्य, जलकुंभ, दही, अन्न आदि दान नही करेंगे उनके वैशाखमे किये हुये सब कर्म निष्फल हो जायंगे. अतः तुम उस राजापर क्रोध करना छोड दो; वह राजा तुमारा भाग देवेगा. वह हमारा परमभक्त है ॥ ४७ ॥ और भी जो कोई मनुष्य

लोकमें तुमारा भाग प्रदान करैं और वैशाखोक्त धर्ममें प्रवृत्त हों उनकें धर्ममें तुम विघ्न नहीं करना ॥ ४८ ॥ जो धर्मके पालन करनेवाले तुमको छोडकर केवल हमाराही यजन करें, उनको मेरी आज्ञासे तुम अवश्य दंड देना॥ ४९ ॥ उस राजासे तुमको भाग देनेके अर्थ हम अभी सुनन्दको भेजते हैं, हमारी आज्ञासे वह वहां जाकर तुमको भाग दिवावैगा ॥ ५० ॥ तब भगवान्ने यमके सामनेही राजाको समझानेके अर्थ सुनन्दको भेजा ॥ ५१ ॥ वह जाकर राजाको समझाकर भगवान्के समीप आया ॥ ५२ ॥

मामेव ये यजंत्यद्धा त्वां हित्वा धर्मपालकम् ॥ मदाज्ञया महाभाग तदा दंडं च त्वं कुरु ॥ ४९ ॥ नृपाद्भागं दापयितुं सुनंदं प्रेषयामि
च ॥ मच्छासनात् स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति ॥ ५० ॥ तिष्ठत्येवं यमे स्वस्य सन्निधौ गरुडासनः ॥ सुनंदं प्रेषयामास नृपं बोध-
यितुं विभुः ॥ ५१ ॥ सोऽपि गत्वा बोधयित्वा पार्श्वं च पुनरागमत् ॥ ५२ ॥ इत्याश्वास्य यमं विष्णुस्तत्रैवांतरधीयत ॥ यमं
स्वयं शांतयित्वा तमनुज्ञाप्य वेगतः ॥ अतिविस्मयमापन्नो ययौ धाम सहानुगैः ॥ ५३ ॥ यमोऽपि स्वपुरीं प्रायात् किंचित् संहृष्ट-
मानसः ॥ ५४ ॥ पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनंदपरिबोधिताः॥ भागदाः सकला लोका ये वैशाखपरायणाः ॥ ५५ ॥ धर्मराजं पुरस्कृ-
त्य ये न कुर्वंति मानवाः ॥ तेषां हि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसंभवम् ॥ ५६ ॥

इसप्रकार यमका आश्वासन कर विष्णुभगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये. तथा यमको समझाय बुझाय ब्रह्माजीभी यमको आज्ञा देके अतिविस्मययुक्त अपने अनुचरोंसहित अपने स्थानको गये॥५३॥ तब यमभी, कुछ प्रसन्नचित्त होकर अपनी पुरीको चला गया ॥५४॥ पश्चात् विष्णुकी आज्ञासे जिसप्रकार सुनन्द कह आया था, उसीप्रकार वैशाखधर्मपरायण जन यमराजको भाग देने लगे ॥ ५५ ॥ राजाने सबसे यह कह दिया कि जो कोई यमराजजीका भाग नहीं देवेगा उनके वैशाखमें किये कर्मोंको यमराजजी स्वयं ले लेवेगें ॥ ५६ ॥

यमराजजीके निमित्त प्रतिदिन स्नान करके अर्घ्यआदि प्रदान करना चाहिये. नहीं करनेसे वैशाखमें किया हुआ सब पुण्य निष्फल हो जायगा ॥ ५७ ॥ वैशाखमासमें पूर्णिमाके दिन जलपूर्ण घट, दही, अन्न, धर्मराजके निमित्त वैष्णवजन सबसे पहले प्रदान करै ॥ ५८ ॥ तत्पश्चात् पितरोंके निमित्त; फिर गुरुके निमित्त; तदनन्तर मधुसूदन जनार्दनदेवके निमित्त ॥ ५९ ॥ शीतल जल, दही, अन्न, तांबूल, दक्षिणा और कांस्यपात्रमे फल रखकर ब्राह्मणको देवै ॥ ६० ॥ तथा मधुसूदन देवताकी दिव्य

कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै ॥ वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ सोदकुंभं च दध्यन्नं पौर्णमास्यां च माधवे ॥ धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमं जनैः ॥ ५८ ॥ पश्चात् पितॄन् समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चादेवं जनार्दनम् ॥ ५९ ॥ शीतलोदकदध्यन्नं तांबूलं च सदक्षिणम् ॥ सफलं कांस्यपात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६० ॥ दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम् ॥ मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्याद्विप्राय सीदते ॥ ६१ ॥ तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः ॥ इत्यादिष्टः सुनंदेन तथा राजा चकार ह ॥ ६२ ॥ स नीत्वा चायुषः शेषं भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥ पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमंदिरम् ॥ ६३ ॥

प्रतिमा बनवाकर मासधर्मके प्रवर्तक निर्धनी ब्राह्मणको देवै ॥ ६१ ॥ अपने विभवके अनुसार उसी धर्मवक्ता ब्राह्मणकी पूजा करै. इसप्रकार सुनन्दने जिसप्रकार उपदेश किया, उसीप्रकार राजा करता हुआ ॥ ६२ ॥ तथा वह राजा अपनी शेष आयु और इच्छानुसार भोगोंको भोगकर अपने पुत्रपौत्रादिकोंसहित वैकुंठको जाता

हुआ ॥ ६३ ॥ उस राजाके वैकुंठ जानेके उपरान्त एक वेनराजा महाअधम होता हुआ और सब धर्मोंको–विशेषकरके वैशाखधर्मोंको–॥ ६४ ॥ उस दुरात्माने लोप कर-दिया अर्थात् उसके राज्यमें सब धर्म लोप हो गये। मोक्षके कारणरूप ये धर्म फिर पृथ्वीपर प्रगट नहीं हुये ॥ ६५ ॥ कोईभी वैशाखोक्त उत्तम धर्मोंको नहीं जानता हुआ बहुतसे जन्मोंके संचय किये हुये पुण्य परिपक्व होनेसे वैशाखोक्त धर्मोंमें बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है. ॥ ६६ ॥ " यह सुनकर मैथिलराजाने पूछा कि–" दुरात्मा राजा वेन

वैकुंठस्थे नृपे तस्मिन् वेनो राजाऽधमोऽभवत् ॥ सर्वे धर्माश्च वैशाखधर्मा अपि विशेषतः ॥ ६४ ॥ दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे ॥ न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः ॥ ६५ ॥ यः कश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तान् शुभानिमान् ॥ बहुजन्मार्जिते पुण्ये परिपक्व उपागते ॥ वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यंतिकी भवेत् ॥६६॥ ॥मैथिल उवाच ॥ ॥ पूर्वमन्वंतरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान् ॥ ६७ ॥ अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनंदनः ॥ इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीं चोच्यते त्वया ॥ ६८ ॥ अथ वैकुंठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति ॥ इत्येतं संशयं छिंधि श्रुतदेव महामते ॥ ६९ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ पुराणेषु च वैषम्यं युगकल्पव्यवस्थया ॥ न चाप्रमाण्यशंका ते कथाया व्यत्यये क्वचित् ॥ ७० ॥

पूर्वमन्वन्तरमें हुआ ॥ ६७ ॥ और यह राजा इक्ष्वाकुनन्दन वैवस्वत मन्वन्तरमें जन्मा था, यह पूर्व हमने आपसे सुना और अब आपने यह कहा कि ॥ ६८ ॥ पूर्व राजाके वैकुंठ जाने उपरान्त राजा वेन होवैगा. हे महामते श्रुतदेवजी ! आप हमारे इस संशयको दूर कीजिये " ॥ ६९ ॥ श्रुतदेवजी बोले–" युग और कल्पोंकी व्यवस्थासे पुराणोंमें विषमभाव है. इस कथाके विपरीत हो जानेसे तुमको इसमें कभीभी आशंका नहीं करनी चाहिये ॥ ७० ॥

पूर्व गतकल्पोमें जिन जिन कथाओंका वृत्तान्त मार्कण्डेयजीने जिसप्रकार हमारे आगे वर्णन किया, हे राजन्! सो सब वृत्तान्त हमने तुमको सुनाया ॥७१॥ इसकारण वैशाखके धर्म प्रसिद्ध नहीं हैं. कोई कोई विष्णुभक्तही इस धर्मको जानता है " ॥ ७२ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे यमदुःखसांत्वनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रुतदेवजी बोले–" जो मनुष्य वैशाखमास मेषकी संक्रान्तिमें प्रातःकाल स्नान करता है, मधुसूदनकी पूजा कर हरिभगवान्की कथा सुनता है ॥ १ ॥

गतदैनंदिने कल्पे यथैषा शाश्वती शुभा ॥ मार्कंडेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्ता तव भूपते ॥७१॥ तस्मान्न ख्यातिमायांति धर्मा वैशाखसंभवाः ॥ कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे यमदुःखसांत्वनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यः प्रातः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥ १ ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः ॥ २ ॥ रौरवं नरकं प्राप्य पैशाचीं योनिमाप्नुयात् ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ ३ ॥ पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्यो वंद्यं पुरातनम् ॥ पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे ॥ ४॥ दुर्वासशिष्यो परम–हंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ ॥ सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ ॥५॥

वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुके परमपदको जाता है. जहां कथा कही जाती हो, उसको छोडकर जो मूढबुद्धिवाला मनुष्य अन्य काममें प्रवृत्त हो जाता है ॥ २ ॥ वह रौरव नरक पाता है. फिर उसका जन्म पिशाचयोनिमें होता है. यहां इसके उदाहरणमें एक पुरातन इतिहास हम कहते हैं ॥ ३ ॥ यह इतिहास पापनाशक, पवित्र, धर्मवर्द्धक, तत्काल वन्दना करनेयोग्य और पुरातन है. पूर्वसमय गोदावरीके तीर ब्रह्मेश्वर नामक उत्तम क्षेत्रमें ॥ ४ ॥ दुर्वासाजीके दो शिष्य परमहंस, ब्रह्ममें पूर्णनिष्ठावाले,

सदैव उपनिषद्शास्त्रमें विचार करनेवाले होते हुये. वे किसीसे कुछ इच्छा नहीं रखते थे ॥ ५ ॥ भिक्षामात्रसेही अपना भोजन चलाते थे, तथा वे दोनों पर्वतकी गुफामें रहते थे. तीनो लोकोंमें सत्यनिष्ठ तपोनिष्ठ नामसे दोनों विख्यात थे ॥ ६ ॥ इन दोनोंमें सत्यनिष्ठ सदा विष्णुकी कथामें लवलीन रहता था. हे राजन् ! सुननेवाले तथा कहनेवालेके अभावमेंभी अर्थात् श्रोता और वक्ता न होता तब ॥ ७ ॥ वह मुनीश्वर कर्म करनेमें तत्पर रहता था. यदि कोई श्रोता होता था तो उसके आगे कथा

भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ ॥ सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्त्रये ॥ ६ ॥ तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथा-परः ॥ श्रोतॄणामप्यभावे च व्याख्यातॄणां तथा नृप ॥७॥ तदा कर्मकला नित्याः कुरोत्यद्धा मुनीश्वरः ॥ श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥ यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् ॥ तदा संकुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥ ९ ॥ अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च ॥ हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥१०॥ शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् ॥ विना कथां न जानाति सेव्यमन्यं नरेश्वर ॥ ११ ॥ व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः ॥ कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥ १२ ॥

कहने लगता था ॥ ८ ॥ यदि कोई उस पुण्यरूपा कथाको कहता तो, सब काम छोडकर कथा सुनने लगता था ॥ ९ ॥ जो तीर्थ बहुत दूर थे और जो देवमन्दिर बहुत दूर थे उन कथासे विरोध करनेवाले तीर्थों और कर्मोंको छोडकर ॥ १० ॥ स्वयं दिव्य कथाओंको सुनता और श्रोताओंको कथा सुनाता था. हे राजन् ! विना कथा सुने अन्नको भी ग्रहण नहीं करता था ॥ ११ ॥ रोगआदिसे पीडित वक्ता जो अपने घरमें कथा कहता था, तो कूपजलमें स्नान कर वह मुनि कथा सुनता

था ॥ १२ ॥ कथा समाप्त होनेउपरान्त अपना नित्यकर्म करता था. जो पुरुष इसप्रकार कथा सुनता है, वह जन्मके बंधनमें नहीं बंधता है ॥ १३ ॥ अनन्तर विष्णुमें सत्वशुद्धि उत्पन्न होती है और अरति दूर हो जाती है. विष्णुभगवान्‌में प्रीति उत्पन्न हो जाती है तथा साधुओंमें सुहृद्भाव उत्पन्न हो जाता है ॥ १४ ॥ और निरजन निर्गुण ब्रह्म शीघ्र हृदयमें आकर निवास करता है जो पुरुष ज्ञानहीन है उसका सब कर्म निष्फल होता है ॥ १५ ॥ विना ज्ञानके किये हुये कर्म प्रायः निष्फल हो जाते है. जैसे अन्धेको दर्पण दिखाना निष्फल होता है. महात्माजन बहुधा कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ उनको सत्वशुद्धि प्राप्त होती है. सत्वशु-

कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् ॥ कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबंधो न विद्यते ॥ १३ ॥ सत्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति ॥ रतिश्च जायते विष्णौ सौहृदं चैव साधुषु ॥ १४ ॥ निर्जरं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥ १५ ॥ बहुधाचरितं चापि यथैवांधकदर्पणम् ॥ कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥ १६ ॥ सत्वशुद्ध्यै भवंत्येव सत्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत् ॥ श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञानाद्ध्यानाय कल्पते ॥ १७ ॥ बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम् ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति तत्र साधुजना नहि ॥ १८ ॥ साक्षाद्गंगातटं वापि त्याज्यमेव न संशयः ॥ यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥ १९ ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत् ॥ यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥ २० ॥

द्धिसे वेदमें मति उत्पन्न होती है, वेदसे ज्ञान और ज्ञानसे ध्यानकी उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥ जो बहुधा श्रवण, ध्यान, मनन और वेदोक्त रीतिसे कर्म करता हो परतु जहां विष्णुकथा नहीं होती है, जहां साधुजन नहीं हैं ॥ १८ ॥ वहां जो साक्षात् गंगाजीका तटभी हो तो भी त्याग देवै. जिस देशमें तुलसीवृक्ष नहीं है अथवा जहां विष्णुजीका कोई उत्तम मन्दिर नहीं है ॥१९॥ तथा जहां हरिकथाका प्रचार नहीं है, वहांका मराहुवा प्राणी अंधतामिस्र नरकमें जाता है. जिस गांवमें किसी

वैष्णवका घर नहीं है, अथवा जहां काल हिरण नहीं है ॥ २० ॥ जहां विष्णुकी कथा नहीं होती है अथवा जहां साधुमहात्माके भोजन न मिलता हो, वहांका मरा हुआ पुरुष तत्काल कुत्तेकी योनि सौ जन्मतक पाता है ॥ २१ ॥ उपनिषद्विद्याको विचार उस मुनिने यह निश्चय किया कि-" सदा विष्णुभगवान्‌की कथा श्रवण किया करे और विष्णुका स्मरण करता रहै अर्थात् हरिभक्तिमें तत्पर रहै ॥२२॥ कथा श्रवण करनेसे अधिक और कुछभी अधिक नहीं माने. " इसप्रकारका वह सत्यनिष्ठ मुनीश्वर था

यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः ॥ मृतस्तत्र पुमान् क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥२१॥ विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः ॥ सदा विष्णुकथासक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः ॥ २२ ॥ न किंचिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात् परम् ॥ इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ २३ ॥ न व्याख्याति स्वयं वाऽपि न शृणोति च सत्कथाम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति ॥ २४ ॥ तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक ॥ कर्मलोपभयाद्दूरं याति चांचल्यशंकितः ॥ २५ ॥ व्रजंति गृहकृत्यार्थं संगमात् परतो जनाः ॥ न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तु कर्मिणः ॥२६॥ दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं गते ॥ जिव्हां श्रुतिं च न क्वापि प्राप्ताहितकथा विभोः ॥ २७ ॥

और सत्यनिष्ठसे इतर जो दूसरा तपोनिष्ठ था वह दुराग्रही, कर्ममें निष्ठावान् था ॥ २३ ॥ न तो आपही कथा कहता था, न हरिकथाको सुनताभी था. जहां कथा होतीभी हो, तो उस स्थानको त्यागकर तीर्थस्नानको चला जाता था ॥२४॥ हे राजन्! तीर्थपर होतीहुई कथाको भी चांचल्यशक्तिसे इस कारण छोड देता था कि कहीं तपमें हानि न पहुँचे अर्थात् कर्मलोपके भयसे दूर चला जाता था ॥२५॥ उस कर्मनिष्ठ मुनिके समीप होकर कोईभी श्रोता और वक्ता गृहकृत्यके अर्थ नहीं निकलता था ॥२६॥ उस दुरात्मा और

दुर्बुद्धि कर्मनिष्ठका समय इसीप्रकार क्षय हुआ. विष्णुभगवान्‌की कथा न कभी अपनी जीभसे कही और कानोंसे सुनी ॥ २७ ॥ हरिकथाके न सुनने और न कहनेसे तथा अपनी मूढता और दुराग्रहसे जब अपना शरीर छोडा ॥ २८ ॥ तब वह शमीवृक्षपर छिन्नकर्ण नाम बलवान् पिशाच हुआ. आश्रयरहित, निराहार रहा करता. कंठ होठ और तालु प्यासके मारे सूख जाते थे ॥ २९ ॥ इसप्रकार दुःख भोगते उसको दशहजार वर्ष व्यतीत हो गये. कहांभी अपने रक्षा करनेवालेको नहीं देखता हुआ, भूखसे व्याकुल, महादुःखी ॥ ३० ॥ अपने कर्मोंके ओर ध्यान देकर चिन्ता करता हुआ उन्मत्तके समान इधर उधर घूमने लगा. भूखके मारे भटकता हुआ

अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् ॥ पश्चात् पंचत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥ २८ ॥ पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे छिन्नकर्णाह्वयो बलः ॥ निराश्रयो निराहारः शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ २९ ॥ एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्याऽयुता गताः ॥ नापश्यत् स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ स्वकृतं चिंतयानस्य मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् ॥ क्षुधया पर्यटन् वाऽपि निर्वृत्तिं नापमूढधीः ॥ ३१ ॥ कृशानुसदृशो वायुरंगं स्पृष्ट्वा कृतात्मनः ॥ कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥ ३२ ॥ न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् ॥ एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥ ३३ ॥ कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधुवर्जिते ॥ दैवादायात् सत्यनिष्ठस्तदा पैठीनसीं पुरीम् ॥ ३४ ॥ गच्छन् मार्गे ददर्शासौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् ॥ दृष्ट्वात्मानं द्रावयंतं रुदंतं क्षुधयातुरम् ॥ ३५ ॥

मूढबुद्धि कहींभी शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ३१ ॥ उस अकृतात्माके शरीरपर अग्निके समान वायु स्पर्श करती थी. जल, कालाग्निसमान और फलपुष्पादिक, विषके तुल्य जान पडते थे ॥ ३२ ॥ इसप्रकार उस मंदबुद्धिवाले कर्मनिष्ठको कहींभी सुख नहीं मिला. वह उस निर्जन वनमें इसप्रकार भटकता फिरता था ॥ ३३ ॥ जहां कथा नहीं होती जहां, कोई साधु नहीं था ऐसे स्थानमें वह घूमता फिरता था उसीसमय दैवयोगसे सत्यनिष्ठमुनि पैठीनसीपुरीमें आया ॥ ३४ ॥ मार्गमें दुःखसे पीडित छिन्नकर्ण पिशाचको

देखा. वह अपनी आत्माको धिक्कारता रुदन करता हुवा क्षुधासे आतुर था ॥ ३५ ॥ उसको देखकर सत्यनिष्ठ मुनीश्वरने कहा–" डरो मत, तुम यह बताओ कि तुम कौन हो ? तुमारी यह दशा कैसे हुई ? अब आगे तुमको दुःख नहीं होवेगा " ॥ ३६ ॥ जब इसप्रकार सत्यनिष्ठने आश्वासन दिया अर्थात् ढाढस बंधाया तब छिन्नकर्ण बहुत घबडाकर बोला–" हे प्रभो ! मैं दुर्वासमुनिका शिष्य तपोनिष्ठनामवाला यति हूं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी मैं बडा दुराग्रही कर्मनिष्ठ था. कर्मके लोप जानेके भयसे अपनी

मा भीरिति समाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः॥ दृशेदृशी च कस्मात्ते न ते दुःखमतःपरम् ॥३६॥ इत्याश्वस्तोऽमुनाच्छिन्न–कर्णः प्राहातिविह्वलः ॥ तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः प्रभो! ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने! ॥ ३८ ॥ साधुभिर्वाच्यमानोऽपि नादृता विष्णुसत्कथा ॥ न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृंतनी ॥ ३९ ॥ तेन कर्मविपाकेन महताऽहं मृतिं गतः ॥ छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥ ४० ॥ न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथंचन ॥ तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याहं गतकल्मषः ॥ ४१ ॥ अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च मे ॥ हरिश्च मे प्रसन्नोभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥ ४२ ॥

मूर्खता और दुर्बुद्धिपनसे हे मुने ! ॥ ३८ ॥ साधुओंके द्वारा वांची हुई विष्णुकी श्रेष्ठ कथा मैने श्रोताओंकोभी नहीं सुनाई ॥ ३९ ॥ उसीं कर्मके घोर परिणामसे मेरी मृत्यु हुई. तब मैं छिन्नकर्णनाम पिशाच होकर दुःखसे व्याकुल हो रहा हूं ॥ ४० ॥ इस दुःखसे छुडानेवाला और रक्षा करनेवाला मेरेको कोई दीख नहीं पडता. मार्गमें जाते हुये तुमको देखनेसे मेरे पाप नष्ट हो गये ॥ ४१ ॥ आज मेरे ऊपर देवता गुरु और साधुजन, तथा हरिभगवान् प्रसन्न हैं. जो मुझको तुमारे दर्शन प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥

इसप्रकार भूमिमें दोनो चरणोमें गिरकर त्राहि त्राहि ( रक्षा करो २ ) कहके रोने लगा. तब महायशस्वी सत्यनिष्ठको दया आगई ॥ ४३ ॥ ओर दोनौं हाथोंसे पकडकर उसको उठा लिया. तदनन्तर हाथमें जल लेकर अपना उत्तम पुण्य उसको दिया ॥ ४४ ॥ वैशाखमासका मुहूर्तभर माहात्म्य श्रवण करनेका फल दे दिया. उस पुण्यके प्रभावसे तत्काल उसके सब पाप विध्वंस हो गये ॥ ४५ ॥ पिशाचका शरीर त्याग, दिव्य देह धरकर उत्तम विमानपर चढकर इन महामुनिजीको प्रणाम करके ॥ ४६ ॥ आमंत्रण

पपात पादयोर्भूमौ त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ ततस्तु कृपयाविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥ ४३ ॥ दोर्भ्यामुत्थापयामाम शंतमाभ्यां मुनीश्वर ॥ ततस्त्वाप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् ॥ तेन पुण्यप्रभावेन सद्यो ध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४५ ॥ पिशाचदेहान्निर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥ ४६ ॥ आमंत्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोः परं पदम् ॥ सत्यनिष्ठस्ततो धीमान् ययौ पैठीनसीं पुरीम् ॥ ४७ ॥ माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिंतयानः पुनः पुनः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा ॥ ४८ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथापगा ॥ ४९ ॥ तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥५०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

कर परिक्रमा दे विष्णुके लोकको जाता हुआ. तब सत्यनिष्ठ बुद्धिमान् पैठीनसीपुरीको गये ॥४७॥ और माहात्म्यश्रवणकी चिन्ता वारंवार करते हुये. श्रुतदेवजी बोले–" जहां पवित्र और शुभ फल देनेवाली पापनाशिनी विष्णुकथा होती है ॥ ४८ ॥ वहां सब तीर्थ और अनेक क्षेत्र आ जाते हैं. तथा जहां विष्णुभगवान्की कथारूपी निर्मल नदी वहती है ॥४९॥ उस देशमें रहनेवाले भक्तजनोके हाथमें मुक्ति रहती है, इसमे कुछ सन्देह नहीं है " ॥५०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथाप्रशंसायां

पिशाचमुक्तिमाप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीश्रुतदेवजी बोले–" हे राजन् ! पापनाश करनेवाला वैशाखमासमाहात्म्य सुनो, जो मधुसूदनभगवान्को प्रिय है ॥ १ ॥ पूर्वसमय पांचाल ( पंजाब ) देशमें पुण्यशील और बुद्धिवान् भूरियशका पुत्र राजा पुरुयश होता हुआ ॥ २ ॥ वह पिताके मरने उपरान्त आप राजा हुआ. वह बडा शूर-॥ वीर और परम उदार तथा गुणवान्, धनुर्विद्यामें निपुण था ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण पृथिवीपर धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ, परंतु पूर्वजन्ममें इस राजाने जलदान नहीं किया था ॥४

॥ श्रुतदेव उवाच ॥ भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ वैशाखस्य च मासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः ॥ १ ॥ पुरा पांचाल-
देशे तु राजा पुरुयशाऽभवत् ॥ तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २ ॥ पितर्युपरते भूप राज्यस्थो धर्मलालसः ॥ शौर्यौदार्य-
गुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ३ ॥ शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः ॥ पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महतावृतः ॥४॥ संपद्धा-
निमवापासौ कालेन कियताऽनघ ॥ हया गजा मृतिं याता महद्रोगेन पीडिताः ॥ ५ ॥ दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् ॥
राज्यं कोशं तदाहासीद्गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥ बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् ॥ तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥७॥

इस पापसे उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति कुछही कालमें नष्ट हो गई; बडेबडे रोगोंसे पीडित होकर सब हाथी–घोडे मर गये ॥ ५ ॥ अनन्तर उसके राज्यमें ऐसा दुर्भिक्ष पडा कि सब मनुष्य मर गये ! उससमय राज्यमें ऐसा सूनसान हो गया, जैसे हाथीसे भक्षण किया हुआ कैथका वृक्ष उजड जाता है ॥ ६ ॥ तब उस राजाको निर्बल जानकर

उसको कोश और राज्यसे रहित समझकर उसके जीतनेको मनमें निश्चय करके ॥७॥ सैकडों वैरी राजा उस राजापर चढ आये और उस पंजाबी राजाको युद्धमें जीत लिया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर वह राजा परास्त होकर शिखिनी रानी और धात्रीआदि गणोंसहित पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश कर रहने लगा ॥ ९ ॥ वहांका मार्ग दूसरे लोग नहीं जानते थे. वह राजा उस गुफामें महादुःखपूर्वक व्याकुलतासे तिरपन वर्ष व्यतीत करता हुआ ॥ १० ॥ एकदिन राजाने मनमें विचार किया कि–" किस कर्मसे हमारी ऐसी

आजग्मुः शतशो भूप स्पिवस्तस्य भूपतेः ॥ जिग्युर्युद्धेन तं भूपं पांचालविषयाधिपम् ॥ ८ ॥ पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे ॥ शिखिन्या भार्यया साकं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ९ ॥ अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः ॥ त्रिपंचाशत् समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता ॥ १० ॥ चिंतयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥ ११ ॥ गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः ॥ दयावान् सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेंद्रियः ॥ १२ ॥ न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः ॥ दयापौरुषविख्याताः कुलीनस्यापि मे कुतः ॥ १३ ॥ केन वा कर्मणा चासं दारिद्यं भूरिदुःखदम् ॥ केन वापजयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥ १४ ॥

दशा हो गई ? हम-कर्म और जन्मसेभी शुद्ध हैं. मातापिताकाभी हित साधन करते रहते हैं ॥ ११ ॥ गुरुमें सदैव भक्ति रखते हैं; ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं; अपने धर्ममें तत्पर रहते हैं; सब प्राणियोंपर दया करते हैं; देवताओंमें भक्ति है; इन्द्रियोंको अपने वशमें रक्खा है ॥ १२ ॥ न मेरा कोई भाई है; न पुत्र है; न कोई सुहृद और हितकारी है; उत्तम कुलमें मेरा-जन्म है; दया और पौरुष मेरे कहां गये ? ॥ १३ ॥ घोर दुःख देनेवाला दारिद्र्य कौन कर्मसे मुझको

प्राप्त हुआ है ? अथवा कौन कर्मसे मेरी पराजय हुई ? यद्वा कौन कर्मसे मैं वनमें वास करता हूं ? " ॥ १४ ॥ इस चिंतासे व्याकुल राजाने खिन्नबुद्धि होकर अपने गुरु-का स्मरण किया. तब याज और उपयाजक नामके दो सर्वज्ञ महामुनि ॥ १५ ॥ राजाके स्मरण करतेही वहां आ पहुँचे. उन दोनों महात्माओंको देखकर राजा सहसा उठ खडा हुआ ॥ १६ ॥ भक्तिपूर्वक शिरसे प्रणाम करता हुआ वनवास करनेसे दुःखित, राजचिह्नसे रहित वनमार्गसे अनजान ॥ १७ ॥ मुहूर्तभर ( दो घडी पर्यन्त ) चुप खडा रहा; अनन्तर मुनियोंके चरणोपर गिर पडा. तब उन दोनों मुनियोंने अपने हाथसे राजाको उठाया और आंसू पोंछे ॥ १८ ॥ अनन्तर राजाने सुंदर वनके फूल आदिसे

इति चिंताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः ॥ याजोपयाजकौ नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥ १५ ॥ आजग्मतुर्मुनींद्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती ॥ तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पांचालवल्लभः ॥ १६ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनातिपीडितः ॥ राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥ १७ ॥ तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः ॥ दोर्भ्यामुत्थापितस्ताभ्यां परिमृष्टाश्रुलोचनः ॥ १८ ॥ विधिवत् पूजयामास वन्यैरेवार्हणैः शुभैः ॥ सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छानतकंधरः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणौ ! वदतं दुःख-कारणं च क्षितीशितुः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥ २० ॥ पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः ॥ दारिद्र्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम ॥ न पुत्रो न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥ २२ ॥

मुनियोंकी विधिपूर्वक पूजा करी. जब वे दोनों मुनि सुखसे बैठ चुके, तब राजाने शिर नवाकर प्रश्न किया ॥ १९ ॥ " हे मुनिवरों ! मेरे दुःखका कारण कहो, मैं कर्म व जन्मसे शुद्ध हूं; पितर और देव सबका हित करता रहा हूं ॥ २० ॥ पापसे डरता हूं; प्राणियोंपर दया, गुरुमें भक्ति है; तोभी मुझको दुःख क्यों मिला ? दरिद्र और धनहानिका क्या कारण है ? शत्रुओंने मुझे क्यों जीत लिया ? ॥ २१ ॥ किसकारण मैं वनमें वास करता हूं और कौन कर्मसे मैं अकेला रह गया हूं ? मेरे पुत्र, भाई, बन्धु और हितकर्ते स्नेही

ये कोई नहीं रहे ॥ २२ ॥ हे अनघ! मेरे देशमें अकाल किसकारण पडा ? हे मुनिपुंगव ! इन सब बातोंका कारण विस्तारपूर्वक आप मुझसे कहिये " ॥२३॥ राजाके ये महा-दुःखभरे वचन सुनकर वे दोनौ महात्मा मुनीश्वर कुछ ध्यान करके बोले ॥२४॥ याज उपयाज कहने लगे–" हे राजन् ! तुमारे दुःखका कारण हम कहते हैं, सुनौ. हे राजा! तुम पहले दश जन्मपर्यन्त महाघोर पापी व्याध हुये ॥ २५ ॥ तुम अतिनिष्ठुर, सब जीवोंकी हिंसामे तत्पर रहा करते थे, धर्म तुममें लेशमात्रभी न था. इन्द्रियोंका दमन तुमने

दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघौ ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूत कारणं मुनिपुंगवौ ॥ २३ ॥ इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूपेनात्यंतदुःखिना ॥ प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किंचिद्ध्यानपरायणौ ॥ २४ ॥ याजोपयाजावूचतुः ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम् ॥ पुरा भूप महा-पापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु ॥ २५ ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः ॥ धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥ २६ ॥ न जिव्हा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथंचन ॥ चेतः स्मरति गोविंदचरणांबुरुहद्वयम् ॥ २७ ॥ न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने ॥ नव जन्मानि ते भूप गतान्येवं दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरांतकः ॥ २९ ॥

नहीं किया और शांतिभी तुममें नहीं थी ॥ २६ ॥ अपनी जीभसे तुमने कभी विष्णुभगवान्का नाम नहीं लिया. न कभी तुमने मनमें गोविन्दके चरणकमलोंका ध्यान किया ॥ २७ ॥ न कभी शिरसे परमात्माको प्रणाम किया. इसप्रकार पाप करते हे राजन् ! तुमारे नौ जन्म बीत गये ॥ २८ ॥ दशवें जन्ममें सह्याद्रि पर्वतपर तुम व्याघ्र हुये.

निष्ठुर होकर तुम सब प्राणियोंके नाश करनेको यमराजके समान हुये ॥ २९ ॥ दयाहीन, शस्त्रकी जीविकासे युक्त, सदा हिंसा करनेमें तत्पर, गुणरहित, स्त्रीसमेत तुम, मार्गमें चलनेवालोंको पीडा करनेवाले शठ हुये ॥ ३० ॥ गौडदेशके रहनेवाले मनुष्योंको भक्षण करनेवाला राक्षस होकर अपने हितको न जानकर तुमने अपना समय व्यतीत किया ॥ ३१ ॥ मृग और पक्षियोंके छोटे छोटे बच्चोंको तुमने निर्दयपनसे मारा; इस कुबुद्धिसे तुमारे इस जन्ममें संतान नहीं हुई है ॥ ३२ ॥ तुमने विश्वासघात किये, इस-

दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः ॥ निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥ ३० ॥ प्रजानां गौडदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः ॥ एवं चाब्दान्यतीतानि नैजं हितमजानतः ॥३१॥ बालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव ॥ दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥ ३२ ॥ विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः ॥ मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः ॥ ३३ ॥ साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः ॥ कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥ ३४ ॥ सदैवोद्वेगकारित्वात् प्रवासस्ते दुरासदः ॥ सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यंतदुःसहम् ॥ ३५ ॥ निराहारोऽप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा ॥ तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन् महामते ॥ ३६ ॥

कारण तुमारे कोई सहोदर ( भाई ) नहीं है. तुमने मार्गमें पथिकोंको कष्ट दिया, इससे तुम सुहृद्जनोंसे रहित हो ॥ ३३ ॥ साधुजनोंका तुमने तिरस्कार किया, इसकारण तुमको शत्रुओंने जीत लिया है और तुमने कभी दान नहीं दिया, इसकारण तुमारे घरमें दरिद्र आ गया ॥ ३४ ॥ सदैव उद्वेग करानेसे तुमको देश निकाला हुआ है. सबका अहित करनेसे तुमको यह असह्य पीडा है ॥ ३५ ॥ पूर्वजन्ममें सदैव क्रूर कर्म करनेसे तुमको आहार नहीं मिलता है. इन्हीं सब कर्मोंसे इस जन्ममें तुमारा राज्य

छिन गया है ॥ ३६ ॥ अब हम तुमारे सत्कुलमें जन्म होनेका कारण कहते हैं कि जब तुम दशवें जन्ममें गौडदेशमें व्याध थे ॥ ३७ ॥ और अपना घोर दुष्कर्म करते थे और कांटोंके वनमें निर्दयपनसे सब मार्ग चलनेवालोंको कष्ट देनेमें प्रवृत्त थे ॥ ३८ ॥ तब वहां दो धनवान् वैश्य धूपसे व्याकुल आये. उसीसमय वेदवेदांगके ज्ञाता कर्षणनामक मुनिभी वहां आये ॥ ३९ ॥ शिरपर जटा और देहपर वल्कल वस्त्र, हाथमें कमंडलु धारण किये ऐसे मुनिको आये देखकर तुमने धनुष्बाण हाथमें लेके मार्गको रोक लिया

अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतुंश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥ यदा भूगौडदेशीयें ह्यंतिमे व्याधजन्मनि ॥ ३७ ॥ स्वकर्मनिरते क्रूरविपिने कंटकाविले ॥ तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतांतके पथि ॥ ३८ ॥ वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ घर्मपीडितौ ॥ मुनिश्च कर्षणो नाम वेदवेदांगपारगः ॥ ३९ ॥ जटाचीरधरः पुण्यः कमंडलुपरिग्रहः ॥ तान् दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥ ४० ॥ अनुद्रुत्य शरी वैश्यौ कृत्वा च्छिन्नशरीरकौ ॥ तयोरेकं च त्वं हत्वा गृहीत्वाखिलतत्पणम् ॥ ४१ ॥ अपरं हंतुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद् द्रुतम् ॥ पणं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥ ४२ ॥ कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशंकया ॥ आतपे धावमानः सन् तृषाघर्मप्रपीडितः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः ॥ विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः ॥ ४४ ॥

॥ ४० ॥ बाण मारकर दोनों वैश्योंका शरीर तुमने छिन्नभिन्न कर दिया और उनमेंसे एकको मारकर सब धन छीन लिया ॥ ४१ ॥ जब दूसरेको मारना चाहा, तब वह वैश्य प्राणभयसे भाग गया और अपने प्राणोंकी रक्षा करनेके अर्थ अपना सब धन झाडियोंमें फेंक दिया ॥ ४२ ॥ कर्षण मुनिभी व्याधके हाथसे मरनेकी शंकासे शीघ्र भागने लगे. प्यास और धूपसे व्याकुल होकर गिर पडे ॥ ४३ ॥ मूर्च्छा आ गई; पसीना निकल आया; संज्ञामात्र शेष रह गई. वह जीता हुआ वैश्य जीनेकी आशासे

ऋपिको वहीं छोडकर भाग गया ॥ ४४ ॥ दोनोंको भाग गये जानकर उनमेंसे ब्राह्मणको, मूर्च्छित पडा देखकर " उस वैश्यने धनको कितना दूर फेंक दिया है " ? ॥ ४५ ॥ पूंछते हुये उस थकेहुये ब्राह्मणको उठानेका उद्योग किया. उसको चैतन्य करनेके निमित्त तुमने ब्राह्मणके कानोंमें सूंठ फूंकी ॥४६॥ कीडे और कींच मिलेहुये थलहेके जलसे तुमने उसके नेत्र धोय उस थकेहुयेके वृक्षोंके पत्तोंसे पवन करने लगे ॥४७॥ इस प्रकार मुनिको चैतन्य कर सावधान होनेपर मुनिसे कहा कि—"हे मुने! इस अरण्यमें मैनें शस्त्र धारण किये है

त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितं पथि भूसुरम् ॥ पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥ ४५ ॥ इति पृष्टं द्विजं श्रांतमुज्जीवयितुमुद्यतः ॥ फूत्कृत्वा कर्णयोस्तस्य नागरं स्मृतिकारिणम् ॥ ४६ ॥ पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा ॥ नेत्रं संरुध्य श्रांतस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥ ४७ ॥ ससंज्ञं च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः ॥ मा शंका ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥ ४८ ॥ निष्किंचनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम् ॥ भिन्नपात्रेण चीरेण न मे किंचिद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ एतावद्वद मे विद्वन्! वणिक् कुत्र पलायितः ॥ कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रं पलायता ॥ ५० ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ॥ ॥कर्षण उवाच ॥ धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात् पलायितः ॥ ५१ ॥

तौभी मेरे विषे तुम कुछ शंका न करौ ॥ ४८ ॥ संसारमें निर्धनी पुरुष सदा सुखी रहते हैं; फिर क्यों डरते हो ? तुमारे फूटे वस्त्रसे मुझको क्या लाभ होगा ॥ ४९ ॥ हे विद्वन्! तुम यह बताओ कि वह वैश्य कहां भाग गया और भागते समय शीघ्रतासे उसने अपना धन किस वृक्षके पत्तोंमें फेंक दिया ? ॥ ५० ॥ जो तुम ठीक

नहीं बताओगे तो तुमको मार डालूंगा." यह सुन कर्षण मुनिने कहा कि–" वह वैश्य वृक्षोंमें अपना धन फेंक गया और इस मार्गसे होकर भाग गया है " ॥ ५१ ॥ जब इस प्रकार अपने प्राणकी रक्षाके अर्थ डरकर मुनिने कहा, तब व्याधने कहा–' हे विप्र ! मुझसे निडर होकर शीघ्र तुम सुखपूर्वक चले जाओ ॥ ५२ ॥ यहांसे कुछही दूरपर एक तालाव है. उसमें निर्मल जल भरा है. उस जलको पीकर अपना परिश्रम दूर होनेपर गांवको चले जाना ' ॥ ५३ ॥ राजकीय कर्मचारीगण वैश्यका

इति प्राह भयात्सोऽपि पृष्टः प्राणपरीप्सया ॥ गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥ ५२ ॥ इतोऽविदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् ॥ तत् पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छ ग्रामं गतश्रमः ॥ ५३ ॥ अधुनैवागमिष्यंति राजकीयाः पथा जनाः ॥ मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥ ५४ ॥ तृषार्तमनुगंतुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज ॥ वीजयानेन पर्णेन घर्मः किंचिद्गमिष्यति ॥ ५५ ॥ तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमागाद्विपिनं पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन वैशाखे घर्मघर्घरे ॥ ५६ ॥ स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणेन पद्धतौ ॥ जन्मासीत्ते महापुण्ये राजवंशेऽतिविस्तृते ॥ ५७ ॥ यदीच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसंपदः ॥ स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥ ५८ ॥

रोना सुनकर हमारे पांवोंके चिह्नसे खोज लगाते हुये यहां अबही आवेंगे ॥ ५४ ॥ हे ब्राह्मण ! इसकारण, प्याससे पीडित तुमारे पीछे हम चल नहीं सकते. इस पत्तेसे पवन करनेपर कुछ गरमी शांत हो जायगी' ॥५५॥ इसप्रकार उस ब्राह्मणको पता देकर तुम गहन वनमें चले गये. इस इस पुण्यके प्रभावसे वैशाखमासके प्रचंड घाममें ॥ ५६ ॥ यद्यपि तुमने अपना कार्य साधन करनेके अर्थ, उस मुनिकी रक्षा करी, तथापि उसी पुण्यके प्रभावसे महापवित्र और विशाल राजवंशमें तुमारा जन्म हुआ ॥ ५७ ॥ अब जो

राज्य, सुख, धन-धान्यादि सम्पदा और स्वर्ग, अपवर्ग, सायुज्यमुक्ति अथवा हरिके परमपदकी इच्छा होवै ॥ ५८ ॥ तो तुम वैशाखके धर्मोको करौ, जिससे सर्व सुख पाओगे इस मासका नाम माधव है. इसमें शुक्लपक्षकी तीज अक्षय है. इसीसे इसको अक्षयतृतीया कहा ॥ ५९ ॥ इस दिन तुरंतको ब्याई गौ ब्राह्मणको देनेसे तुमारे कोशआदिकी पूर्णता होगी. शय्याका दान करनेसे सुख प्राप्त होगा ॥ ६० ॥ छतरीदान करना तो साम्राज्यकी प्राप्ति होगी. विधिसे स्नान करौ और माधवकी पूजा करौ ॥ ६१ ॥

कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि ॥ मासोऽयं माधवो नाम तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ ५९ ॥ गां च सकृत् प्रसूताख्यां देहि विप्राय सीदते ॥ तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छय्यां देहि सुखं भवेत् ॥ ६० ॥ कुरु छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति ॥ स्नानं कुरु यथान्यायं तथैवार्चय माधवम् ॥ ६१ ॥ देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् ॥ आत्मतुल्यगुणान् पुत्रान् यदि कामयसे नृप ॥ ६२ ॥ सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु ॥ वैशाखोक्तानिमान् धर्मान् सम्यगाचर भूमिप ॥ ६३ ॥ तेन ते सकला लोका वशं यांति न संशयः ॥ निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान् करिष्यसि ॥ ६४ ॥ वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन् प्रीतये मधुघातिनः ॥ प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव निर्मलचेतसः ॥ ६५ ॥

सुन्दर प्रतिमा बनवाकर दान करौ. इससे तुमारी जीत होगी. हे राजन् ! जो तुम अपने समान पुत्रोंकी इच्छा करते हो ॥ ६२ ॥ तो सब प्राणियोंके हितार्थ प्रपादान ( पौशालाद्वारा जलदान ) करौ और हे राजन् ! वैशाखोक्त इन सब धर्मोंको भलीभांति करौ ॥ ६३ ॥ इससे सब लोक तुमारे वशमें हो जायँगे. इस वैशाखमासमें मधुसूदनभगवान्‌की प्रसन्नताके अर्थ, जो तुम निष्कामनासे इन सब धर्मोंको करौगे तो विष्णुभगवान् तुमको प्रत्यक्ष दर्शन देवैंगे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

जिन मनुष्योंने इन कल्याणकरी धर्मोंको किया है और करते हैं. उनको अक्षय लोककी प्राप्ति होती है. यह पुराणोंमें कवियोंने कहा है ॥ ६६ ॥ यह जिसप्रकार हमने सुनी और जैसे देखी सो सब तुमारे आगे कही. " इसप्रकार राजाको समझाकर दोनों कुलपुरोहित ॥ ६७ ॥ याज और उपयाज नामवाले अपने स्थानको चले गये. तब वह महापराक्रमी राजा अपने पुरोहितोंके समझानेके अनुसार ॥ ६८ ॥ श्रद्धापूर्वक वैशाखोक्त सब धर्मोंको करने लगा. तहां उपदेशके अनुसारही मधुसूदन भगवान्‌का पूजन

येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः ॥ तेषां च ह्यक्षया लोकाः पुराणे कवयो विदुः ॥ ६६ ॥ एतद् सर्वं तव प्रोक्तं यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ इति राजानमामंत्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ ॥ ६७ ॥ याजोपयाजकौ नाम जग्मतुस्तौ यथाऽऽगतौ ॥ ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥६८॥ वैशाखधर्मान् सकलांश्चकार श्रद्धयान्वितः ॥ यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमचर्यत् ॥६९॥ ततो लब्धप्रभावः सन् बंधुभिः सकलैर्वृतः ॥ पांचालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥ ७० ॥ ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः ॥ प्रवेशं च पुरस्याथ पुनराजग्मुरुद्धताः ॥ ७१ ॥ तदा पांचालभूपेन नृपाणामभवद्रणः ॥ जिग्ये सर्वान् महाबाहूनेक एव महारथः ॥ ७२ ॥

किया ॥ ६९ ॥ इन धर्मोंके प्रभावसे अपने सम्पूर्ण कुटुंबसमेत बचीहुई सब सेना साथ लेके अपनी पांचाल नगरीमें प्रवेश किया ॥ ७० ॥ अनन्तर जब राजाके शत्रुओंने सुना कि-' राज फिर आ गया है, ' तब मदोन्मत्त होकर राजाके नगरपर चढाई करने लगे ॥ ७१ ॥ इसप्रकार पांचालदेशका राजा और शत्रुओंका संग्राम सदा होता रहा,

परंतु इस एकही महारथी राजाने सबको जीत लिया ॥ ७२ ॥ अनेक देशके आये हुये राजा हारकर भाग गये. उनके हाथी घोडोंको राजा स्वयं ले आया ॥ ७३ ॥ दश अरब घोडे, तीन करोड हाथी, एक अरब रथ और दशहजार ऊँट तथा ॥ ७४ ॥ तीन लाख गधा, उस पुरीमें लाया. वैशाखोक्त धर्मके प्रभावसे तत्क्षणही सब उस राजाको ॥७५॥ कर देने लगे. मनोरथभंग हो गये. चरणोंमें आय गिरे तथा पांचाल देशमें बडा सुभिक्ष होता हुआ ॥७६॥ और मधुसूदनकी कृपासे एकछत्र राज्य हुआ. तथा

पलायितेषु भूपेषु नानादेशपथिष्वपि ॥ राज्ञां कोशगजानश्वान् स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥ ७३ ॥ अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् ॥ रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥ ७४ ॥ रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यात् क्षणात् सर्वे च भूभृतः ॥ ७५ ॥ करदा भग्नसंकल्पाः पादाक्रांता बभूविरे ॥ सुभिक्षमतुलं चासीत् पांचालविषयेषु च ॥ ७६ ॥ एकछत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः ॥ पुत्राः पंचापि तस्यासन् शौर्यौदार्यगुणान्विताः ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्न-स्तथाऽपरे ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥ ७८ ॥ अनुरक्ताः प्रजाश्चासन् धर्मेण प्रतिपालिताः ॥ वैशाखस्य प्रतापेन प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ॥ ७९ ॥ पुनश्चकार तान् धर्मान् पांचालनगरीश्वरः ॥ अकामुकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ॥ ८० ॥

पांच पुत्र शूरवीर और उदार उत्पन्न हुये ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, विजय, चित्रकेतु ये सब मयूरध्वजके सदृश हुये ॥ ७८ ॥ धर्मपूर्वक प्रतिपालित सब प्रजा अपने राजामें अनुराग करती हुई और वैशाखके प्रतापसे तत्क्षण सब विश्वास करने लगे ॥ ७९ ॥ अनन्तर पांचालदेशका राजा, निष्कामनापूर्वक प्रसन्नमनसे मधुसूदन

भगवान्‌के निमित्त सब धर्म करता हुआ ॥ ८० ॥ और इस धर्मसे प्रसन्न होकर मधुसूदनभगवान् अक्षयतीजके दिन राजाको प्रत्यक्ष दर्शन देते हुये ॥ ८१ ॥ तब अच्युत भगवान्‌को देखकर राजा परम विस्मयको प्राप्त हुआ. कैसे भगवान् नारायण हैं कि चार जिनके भुजायें हैं, जिनमें शंख–चक्र–गदा–पद्म धारण किये है ॥ ८२ ॥ पीताम्बर पहरे, वनमाला गलेमें सुशोभित हो रही, लक्ष्मी और पार्षदोंकरके युक्त हैं तथा गरुडपर विराजमान हैं ॥ ८३ ॥ इसप्रकार देखकर राजा तेज नहीं सह सका. तब नेत्र

धर्मेणानेन संतुष्टो भगवान् मधुसूदनः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् ॥ नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ८२ ॥ पीतांबरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥ ८३ ॥ निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः ॥ उत्पतन् संपतन् हर्षान्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥ ८४ ॥ पुलकांकितसर्वांगो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्रांजलिः प्रणतो भुवि ॥ ८५ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालदेशाधिपतेर्जयावाप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोध्यायः ॥ ॥ १५ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना ॥ चिरं निरीक्ष्याकुललोचनैरमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम् ॥ १ ॥

बद कर लिये; अनंतर भगवान्‌के दर्शन कर हर्षके कारण उन्मत्तकीसी चेष्टा करने लगा ॥ ८४ ॥ सब शरीरके रोम खडे हो गये. नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे. तब परम भक्तिसे हाथ जोड शिर नवाय प्रसन्नमनसे स्तुति करने लगा ॥ ८५ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रुतदेवजी बोले–" भगवान्‌के दर्शनसे आनन्दमें मग्नहृदयवाला राजा तुरन्त शिर झुकाय प्रणाम करता हुआ और बहुत समयपर्यन्त आकुल

नेत्रोंसे विश्वात्मदेव जगदीश भगवान्के दर्शन करता हुआ ॥ १ ॥ और भगवान्के चरण धोय उस चरणोदकको शिरपर धारण किया, जिन चरणोंसे उत्पन्न हुई गंगाजी सब जगत्को पवित्र करती हैं. तदनन्तर वह राजा बहुत मूल्यवान् वस्त्र, आभूषण और चन्दनआदिसे विष्णुका पूजन करता हुआ ॥ २ ॥ धूप, दीप, फूलमाला, नैवेद्य और आत्मसमर्पण आदिसे पुराणपुरुष नारायण निर्गुण अद्वितीय भगवान् विष्णुको प्रसन्न करता हुआ ॥ ३ ॥ निरंजन, ब्रह्मआदिके स्वामी, परात्पर, ब्रह्माआदिसे वन्दित, जिनकी मायाकरके तत्वज्ञानी बडे बडे उत्तमजनभी मोहित हो रहे हैं; विश्व रचनेवालोंके अधीश्वर ॥ ४ ॥ जिनकी मायामें मूढबुद्धिवाले मोहित हैं, अनेक गुणोंसे भगवान्

दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजा ब्रह्म जगत् पुनाति ॥ समर्चयामास महाविभूति--महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ २ ॥ स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिस्स्वगात्रवित्तात्मसमर्पणेन ॥ तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ३ ॥ निरंजनं विश्वसृजामधीशं परात्परं ब्रह्मभवादिवंदितम् ॥ यन्मायया तत्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥ ४ ॥ मुह्यंति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽथ ॥ ५ ॥ समस्त-देवासुरसौख्यदुःख-प्राप्त्यै भवान् पूर्णमनोरथोऽपि ॥ तत्रापि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥ ६ ॥ तमो-गुणं राक्षसबंधनाय रजोगुणं निर्गुण विश्वमूर्ते ॥ दिष्ट्या त्वदंघ्रिं प्रणताघनाशनं तीर्थास्पदं हृदि धृतं सुविपक्वयोगैः ॥ ७ ॥

हैं और चेष्टासे रहित हैं, अनेक रूपोंकरके जगत्का स्वयं उत्पत्ति स्थिति (पोषण) और संहार करते हैं ॥ ५ ॥ समस्त देवता और असुरोंके सुख और दुःखकी प्राप्तिके निमित्त पूर्णमनोरथ होनेपरभी आप लीन नहीं होते हैं. तथापि काल पाय अपने भक्तोंकी रक्षाके निमित्त आप सतोगुण धारण करते हैं, तथा दुष्टोंका दमन करनेके अर्थ ॥ ६ ॥ तमोगुण और राक्षसोंका बन्धन करनेको रजोगुण धारण करते हैं. हे निर्गुण विश्वमूर्ते ! आपके चरणकमल धन्य हैं. जिन चरणोंके शरणागत होनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं. जब

कि कर्मोंके योगसे तीर्थरूप आपके चरण हृदयमें धारण किये जाते हैं ॥ ७ ॥ जो प्राणी, तुमारे चरण स्मरणरूप तोयमें जिनका परिपूर्ण भक्तिसं देहभान विस्मृत हो गया है ऐसे अपने अंतःकरण आर्द्र करेंगे तो उनको उत्तम गति प्राप्त होगी और वे भवरूप कालसर्पके पाशसे व जन्मजरादि दुःखोंसे मुक्त होंगे ॥ ८ ॥ तुमारे चरणोंकी विस्मृतिसे विलावके समान प्याससे पीडित अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हूं. न मैने दान किया, न तुमारी कथा सुनी, न साधुजनोंकी सेवा मैने करी ॥ ९ ॥ उसी अपराधसे शत्रुओंने मुझको परास्त कर दिया. मेरा विभव नष्ट होगया. तब वनमें जाकर वसा. वहां मैने अपने गुरुजनोंका स्मरण किया. स्मरण करतेही वे मेरे समीप आय उन्होंने मेरी दीन दशापर दया कर मुझको दुःखसे छुडानेका उपदेश किया ॥ १० ॥ वेदोक्त शुभस्वर्गअपवर्ग पुरुषार्थ चतुष्टय ( अर्थ–धर्म–काम–मोक्ष ) के देनेवाले वैशाखके धर्म

उत्सिक्तभक्त्युपहृताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतोये ॥ भवाख्यकालोरगपाशबंधः पुनः पुनर्जन्मजरादिदुःखैः ॥८॥ भ्रमामि योनिष्वदमाखुभक्षवत् प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः ॥ नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयापि सेविताः ॥ ९ ॥ तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरुर्ह्यहं स्मरन् ॥ स्मृतौ च तौ मांसमुपेत्य दुःखात् संबोधयांचक्रतुरार्तबंधू ॥ १० ॥ वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादिपुमर्थहेतुभिः ॥ तद्बोधतोऽहं कृतवान् समस्तान् शुभावहान् माधवमासधर्मान् ॥ ११ ॥ तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाखिलाः संपद ऊर्जिता इमाः ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥१२॥ उपासितास्तेपि हरंत्यघ चिरा द्विपश्चितो घ्नंति मुहूर्तसेवया ॥ यन्मन्यसे त्वं भविताऽपि भूरिशस्त्यक्तैषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् ॥ १३ ॥

जिसप्रकार हमारे पुरोहितोने बताये उसीप्रकार मैंने उन धर्मोको किया. माधवमासके ये धर्म परम शुभ फलके देनेवाले हैं ॥ ११ ॥ उन्हीं धर्मोंके प्रभावसे मैं परम प्रसन्न हूं. मुझको उन्हींके प्रभावसे सब विभव प्राप्त हुआ है. अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी, मन ॥ १२ ॥ इनकी उपासना नहीं की. इनकी उपासना करनेपर बहुत दिनोंमें दुःख दूर होता है. परन्तु महात्माजन क्षणभरमेंही सब पापोंको दूर कर देते हैं. ये महात्मा कैसे हैं कि जिनने सब इच्छा त्याग दी हैं और तुमारेमेंही

अपना मन लगा दिया है ॥ १३ ॥ हे स्वतंत्र ! हे विचित्र कर्म करनेवाले ! हे परमात्मन् ! हे साधुजनोंपर अनुग्रह करनेवाले ! आपको नमस्कार है. मैं आपकी मायामें मोहित होकर अनर्थरूप स्त्री–धनआदि गुणोंमें भ्रम रहा हूं ॥ १४ ॥ तुमारे चरणकमल संसाररूप दुःखोंको मूलसे उखाडनेवाले है. सब पापोंके नाश करनेवाले और निर्मल हैं. सुखकी इच्छासे अनर्थके मूलकारण जो अपने स्त्री–पुत्रादि हैं तिनकी ममतामें पडकर ॥ १५ ॥ न मुझको नींद आती है, न कहींभी सुख मिलता है. क्योंकि, वारंवार इन्हींमें मेरी तृष्णा वढ रही है. राजाका दुर्लभ शरीर पाकरभी जो अर्थ–धर्म–काम–मोक्षका एक मात्र हेतु ॥ १६ ॥ ऐसे भगवच्चरणारविन्दोंका ध्यान मैं नहीं करता हूं.

नमः स्वतंत्राय विचित्रकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय ॥ त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥ १४ ॥ त्वत्पादपद्मं स्रुतिमूलनाशनं समस्तपापापहरं सुनिर्मलम् ॥ सुखेच्छयानर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः ॥ १५ ॥ न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् ॥ लब्ध्वा दुर्गमं नरदेवजन्म त्वं यत्नतः सर्वपुमर्थहेतुः ॥ १६ ॥ पादारविंदं न भजामि देव! संमूढचेता विषयेषु लालसः ॥ करोमि कर्माणि सुनिश्चितः सन् प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददन् ॥ १७ ॥ पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिंताशतलोलमानसः ॥ तदैव जीवस्य भवेत् कृपा विभो दुरंतशक्तेस्तव विश्वमूर्तेः ॥ १८ ॥ समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवांबुधिर्येन हि गोष्पदायते ॥ सत्संगमादेव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः ॥ १९ ॥

देव ! मेरी बुद्धि वडी मूढ है. विषयोंमें आसक्त है. अनेक कर्म करता हूं, तोभी इन विषयोंमें मेरी तृष्णा वढ रही है ॥ १७ ॥ " आज मैं ऐसा होऊं, कल ऐसा हो जाऊ " इसप्रकार रातदिन सैकडों प्रकार चिन्तामें मन डामाडोल रहा करता है. हे दुरन्तशक्ते ! विश्वमूर्ते ! जब तुमारी कृपा इस जीवपर होती है ॥ १८ ॥ तब महात्माओंका सत्संग प्राप्त होता है. जिससे यह संसारसागर गौके खुरके समान पुरुषोंको जान पडता है. हे देव ! जब साधुजनोंका समागम होता है

तवही आपमे मतिकी प्रवृत्ति होती है ॥ १९ ॥ आपने जो मेरे ऊपर अनुग्रह किया है, इससे अपने सब राज्यको निष्फलही मानता हूं. ब्रह्मादिक देवता और असुर आदि सब कि जिनकी तृष्णा निवृत्त हो गइ है, ऐसे संन्यासीगण यही प्रार्थना करते है ॥ २० ॥ अच्युत भगवान्को मै आदरसहित नमस्कार करता हूं; जिनक चरणकमल सांसारिकतापोको दूर करते हैं. दरिद्रियोंसे प्रार्थनाके योग्य अमन्द सौभाग्यके देनेवाले है. मै तुमारे चरणकमलसे भिन्न किसी वातकी कामना नहीं करता हूं ॥ २१ ॥ अतः मुझको न राज्यकी इच्छा है, न पुत्रआदिकी इच्छा, न धनकी इच्छा है. इस निरंतर पतन होनेवाली मिट्टीसे उत्पन्न देह करके उपासनाके

समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमंजसा ॥ यद्वार्यते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपि हंसयूथैः ॥ २० ॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभोः ॥ अकिंचनप्रार्थ्यममंदभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥२१॥ अतो न राज्यं न सुतादिकोशं देहेन शश्वत् पतता रजोभुवा ॥ भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविंदं मुनिभिर्विचिंत्यम् ॥ २२ ॥ प्रसीद देवेश जगन्निवास स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे ॥ सक्तिः सदा गच्छतु दारकोश--पुत्रात्मचिन्हेषु गुणेषु मे प्रभो ॥२३॥ भूयान्मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने ॥ नेत्रे मम स्यात्तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिता ॥ २४ ॥ घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे त्वद्भक्तगंधादिविलेपने सकृत् ॥ स्यातां च हस्तौ तव मंदिरे विभो संमार्जनादौ मम नित्यदैव ॥ २५ ॥

योग्य आपके चरणकमलोंका ध्यान करता हूं. मुनिजनभी निरन्तर आपके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ हे जगन्निवास! हे देवेश! आप प्रसन्न हो जाओ, जिससे आपके चरणकमलमे हमारी स्मृति होय. हे प्रभो! स्त्री–पुत्र–कोशआदिमे मेरी आसक्ति न होय ॥ २३ ॥ मेरा मन आपके चरणकमलमें लगे, मेरी वाणी आपकी दिव्य कथा कहनेमें प्रवृत्त होय, मेरे नेत्र आपकी मूर्तिके दर्शनमें लगें; मेरे कान आपकी कथा सुनते रहे और जिह्वा आपके गुणानुवादमें समर्पित होवै ॥२४॥ नासिका आपके चरणार-

विन्दका मकरंद सूंघनेमें प्रवृत्त हो, हाथ आपके मन्दिरको बुहारनेमें सतत लगे रहैं ॥ २५॥ मेरे पांव आपकी कथाके स्थानमें ले जायं. मेरा शिर आपकी वन्दनामें लगा रहै. आपकी कथामें मेरी कामना और आपके विचारमें मेरी बुद्धि रातदिन रहै ॥ २६ ॥ घरपर आये हुये मुनिके संग आपकी सत्कथाके गानमें मेरे दिन व्यतीत होवे. हे प्रभो ! एक क्षण वा आधा निमेषभी आपके प्रसंगविना व्यतीत नहीं होवे ॥ २७ ॥ हे विष्णो ! मैं पारमेष्ठ्य और समस्त भूमंडलका राज्य और धर्म–अर्थ–काम–मोक्षकी इच्छा नहीं

पादौ विभो क्षेत्रकथानुसर्पणे मूर्ध्नो च मे स्यात्तव वंदनेऽनिशम् ॥ कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यातव चिंतनेऽनिशम्
॥ २६ ॥ दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः ॥ हीनप्रसंगस्तव मे न भूयात् क्षणं निमेषार्द्धमथापि विष्णोः
॥२७॥ न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्ग्यं स्पृहयामि विष्णो ॥ त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः
॥२८॥ इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः ॥ मेघगंभीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥२९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ जाने
त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम् ॥ अथापि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम् ॥ ३० ॥ आयुष्यं चायुतं दिव्यं संपदश्च नरे-
श्वर ॥ भक्तिर्मयि दृढा भूयादंते सायुज्यमेव च ॥ ३१ ॥

करता हूं. मैं तो सदैव तुमारे चरणोंकी सेवाकी कामना करता हूं जिन चरणोंकी सेवाकी इच्छा लक्ष्मी और ब्रह्मा तथा महादेव आदि सब देवता करते हैं ॥ २८ ॥ इसप्रकार राजाकी स्तुति सुनकर कमलनयन भगवान् अतिप्रसन्नतापूर्वक मेघसमान गंभीर वाणीकरके राजाके प्रति बोले ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् कहने लगे— " हे राजन् ! मैं तुमको जानता हूं. तुम निष्काम और पापरहित हमारे दासोंमेंसे श्रेष्ठ भक्त हो. तथापि देवदुर्लभ वर हम तुमको देते हैं ॥३०॥ तुमारी आयु दश हजार वर्षकी होगी. दिव्य धनसम्पत्तिसे

युक्त होंगे. हमारी दृढ भक्ति रहेगी. अन्तमें सायुज्यमुक्ति प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ पृथ्वीपर जे कोई तुमारी की हुई स्तुतिसे हमारी स्तुति करेंगे उनपर प्रसन्न होकर हम उनको भक्तिमुक्ति प्रदान करेंगे ॥३२॥ आजका दिन पृथ्वीपर अक्षय्य तृतीयाके नामसे प्रसिद्ध होगा. जिसमें भुक्तिमुक्तिके देनेवाले हम तुमपर प्रसन्न हुये हैं ॥ ३३ ॥ अक्षय्यतृतीयाके दिन जो मूढ मनुष्य जाने अथवा विना जाने स्नानदान आदि क्रिया करेंगे, वे हमारे अक्षय पदको प्राप्त होवेंगे ॥ ३४ ॥ तथा जे अक्षय्यतृतीयाके दिन पितरोंका श्राद्ध करते हैं, सो अक्षय हो जाता है अर्थात् उस श्राद्ध-

त्वया कृतेन स्तोत्रेण मां स्तुवंति च ये भुवि ॥ तेषां तुष्टः प्रदास्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥ ३२ ॥ तृतीयैषाक्षया नाम भुवि ख्याता भविष्यति ॥ तस्यां तव प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ३३ ॥ ये कुर्वंति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ व्याजेनापि स्वभावाद्वा यांति मत्पदमव्ययम् ॥ ३४ ॥ ये चाक्षयतृतीयायां पितॄनुद्दिश्य मानवाः ॥ श्राद्धं कुर्वंति तेषां वै तदानंत्याय कल्पते ॥ ३५ ॥ न चानया तिथिर्लोके समा वा नाधिका भुवि ॥ अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ३६ ॥ यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुंबिने ॥ सर्वसंपत्प्रवर्षाख्या भुक्तिर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ३७ ॥ यो हि दद्यादनड्वाहं सर्वपापविनाशनम् ॥ कालमृत्युविमुक्तः सन् दीर्घायुष्यमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ वैशाखमासे यो धर्मान् कुरुते मत्प्रियावहान् ॥ तस्य मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम् ॥ ३९ ॥

का क्षय नहीं होता है ॥ ३५ ॥ भूमंडलमें इस तिथिके समान और कोई तिथि नही है. अक्षय्यतृतीयाके दिन थोडाभी किया हुआ कर्म अक्षय फल देता है ॥ ३६ ॥ हे राजसत्तम ! जो कुटुंबी ब्राह्मणके अर्थ गोदान करता है, उसको सर्व संपत्ति होती है; भक्ति और मुक्ति दोनों उसको हस्तगत हो जाती हैं ॥३७॥ जो बैल दान करता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और कालमृत्युसे छूटकर दीर्घायुकी उसको प्राप्ति होती है ॥३८॥ जो वैशाखमें मेरे प्रिय करनेवाले धर्मोंको करते हैं, उनके मृत्यु, जरा, जन्म, भय, पाप इनको नाश कर देता हूं ॥३९॥

जिसप्रकार मैं वैशाखोक्त धर्मोंसे प्रसन्न होता हूं, वैसे दूसरे किसी महीनेके धर्मोंसे प्रसन्न नहीं होता हूं. सब महीनोंमें वैशाखमास मुझको बहुत प्यारा है ॥ ४० ॥ जिनने सर्व धर्म त्याग दिये हैं और जो ब्रह्मचर्यसे रहित हैं, वेभी वैशाखोक्त धर्मोंके करनेसे अव्यय पदको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ तप, सांख्य, योग और यज्ञआदिसेभी जो प्राप्त नहीं हो सकता, वैशाखोक्त धर्ममें तत्पर होनेसे मनुष्य उस परम धामको जाते हैं ॥ ४२ ॥ हे अनघ ( पापरहित ) ! यह वैशाखमास हजारों पापोंको दूर कर देता

यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि ॥ मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥ ४० ॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः ॥ वैशाखमासनिरता यांति मत्पदमव्ययम् ॥ ४१ ॥ यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि ॥ तद्धाम परमं यांति वैशाखनिरता नराः ॥ ४२ ॥ अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ ॥ प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥ ४३ ॥ गुरूपदिष्टः कांतारे वैशाखनिरतो भवान् ॥ समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥ ४४ ॥ धर्मेणानेन संप्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते ॥ भुक्त्वा भोगान् यथाकामान् देवैरपि सुदुर्लभान् ॥ ४५ ॥

है अथवा सब प्रायश्चित्तोंसे हीन हो जाता है. जैसे, हमारे चरणोंके स्मरणसे पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥ गुरुके उपदेशसे तुम वनमें वैशाखधर्म करने लगे और जगत्के नाथ भगवान्की आराधनासे तुमको सब वस्तु प्राप्त हो गई है ॥ ४४ ॥ इस धर्मसे प्रसन्न होकर मैं तुमारे सामने प्रत्यक्ष हुआ हूं. अब तुम देवताओंको भी दुर्लभ ऐसे

भोगोंको भोग करो" ॥ ४५ ॥ देवदेव जनार्दन भगवान् इसप्रकार राजाको वरदान देके सबके देखते वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ४६ ॥ तब वह राजसत्तम परम विस्मयको प्राप्त हुआ और ऐसा हृष्टपुष्ट शरीर हुआ, जैसे कोई खोये हुये धनको पाकर सन्तुष्ट होता है ॥ ४७ ॥ तदनन्तर विष्णुभगवान्में अपना मन लगाकर पृथ्वीका शासन करने लगा. और बडेबडे महात्मा और गुरुसे प्रतिदिन ज्ञान प्राप्त करता हुआ ॥४८॥ और भगवान् वासुदेवके विना अन्य किसीको नहीं जानता हुआ जिनके संपर्कसे स्त्री, अमात्य और

इति तस्मै वरं दात्त्वा देवदेवो जनार्दनः ॥ पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवांतरधीयत ॥ ४६ ॥ ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यंतविस्मितः ॥ हृष्टपुष्टतनुर्भूप लब्धनष्टधनो यथा ॥ ४७ ॥ ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः ॥ महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्च निरंतरम् ॥ ४८ ॥ नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः ॥ यत्संपर्कात् प्रिया आसन् दारामात्यसुतादयः ॥ ४९ ॥ सर्वान् धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान् पुनः पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥ भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् देवानामपि दुर्लभान् ॥ अंते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥५१॥ य इदं परमाख्यानं शृण्वंति श्रावयंति च ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यांति विष्णोः परं पदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पुत्रआदि सब प्रिय होते हुये; ऐसे ॥ ४९ ॥ वैशाखके सब धर्मोंको राजा वारंवार करता हुआ, जिन धर्मोंके प्रभावसे पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि हुई ॥५०॥ तथा देवताओंको भी दुर्लभ ऐसे मनोरथोंको भोगकर वह राजा अन्तमे विष्णुभगवान् चक्रपाणिकी सायुज्यताको प्राप्त हुआ ॥५१॥ जो इस परम मनोहर आख्यानको सुनते और सुनाते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमदको जाते हैं ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीष संवादे पांचालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

श्रुतकीर्तिजी बोले-" हे मुनिवर ! मैने सब वैशाखधर्म सुने, जो लोक परलोक दोनोंमें फलदायक हैं: जिनको वारंवार सुननेसेभी मेरी तृप्ति अबभी नहीं होती है ॥ १ ॥ जहां निष्कपट धर्म है, जहां शुभदायक विष्णुकथा होती है, उस कानोंको सुख देनेवाली कथको सुनते सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ मेरे पूर्वजन्मके पुण्योंका उदय हुआ है, जो अतिथिरूपसे आप मेरे घर आकर प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ आपके मुखारविंदसे निकले हुये परम अद्भुत और अमृतरूपी वचनोंसे मैं ऐसा तृप्त हुआ हूं कि-"अब मैं पारमेष्ठ्य पद और मोक्ष-

श्रुतकीर्तिरुवाच ॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्र फलप्रदान् ॥ भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाद्यापि मानद ॥ १ ॥ यत्र चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णुकथाः शुभाः ॥ तच्छास्त्रं शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥ २ ॥ पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् ॥ आतिथ्य व्यपदेशेन यद्भवान् गृहमागतः ॥ ३ ॥ वचनामृतं मुखांभोजनिःसृतं परमाद्भुतम् ॥ पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा च न कामये ॥ ४ ॥ तस्मात्तानेव धर्मान् मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् भूयो विस्तरतो वद ॥ ५ ॥ इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः ॥ संहृष्टात्मा शुभान् धर्मान् पुनर्व्याहर्तुमारभे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः ॥ ७

कीभी इच्छा नहीं करता हूं" ॥४॥ इसकारण, भुक्तिमुक्तिको देनेवाले और विष्णुभगवानको प्रसन्न करनेवाले दिव्य धर्मोंको विस्तारसहित आप वर्णन कीजिये " ॥५॥ राजाके यह वचन सुनकर महायशस्वी श्रुतदेवजी बहुत प्रसन्न हुये और शुभ धर्मोंका फिर वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव कहने लगे-" हे राजन् ! सुनो, पापोंको नाश करनेवाली

कथा फिर मैं कहता हूं. यह कथा वैशाखधर्म सम्बन्धी मुनियोंकरके भावित है ॥ ७ ॥ पंपाके समीप शंखनाम एक महायशस्वी ब्राह्मण सिंहके बृहस्पतिमें उत्तमा गोदावरी नदीपर आता हुआ ॥ ८ ॥ पवित्र भीमरथीके पार जाकर कंटकयुक्त पहाडी वनमें जाता हुआ. इस वनमें न जल था. न कोई मनुष्य था। इसप्रकार वैशाखके तापसे सन्तप्त ॥ ९ ॥ दो पहरके समय यह ब्राह्मण एक वृक्षकी छायामें बैठ गया. उसी समय वहां एक दुराचारी व्याध, हाथमें धनुष् लिये आ पहुंचा ॥ १० ॥ यह व्याध सब प्राणियोंसे

पंपातीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशाः ॥ गुरौ सिंहगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभा ॥ ८ ॥ तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाचले ॥ निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तपकर्शितः ॥ ९ ॥ वृक्षे चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः ॥ तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधश्चापधरः शठः ॥ १० ॥ निर्घृणः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः ॥ तं कुंडलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुंडलादिकमुग्रधीः ॥ उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमंडलुम् ॥ १२ ॥ पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥ १३ ॥ ततः स गच्छन् पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे ॥ संतप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्चचारोपवसन्नूर्ध्वरेताः ॥ १४ ॥

घृणा करता था और साक्षात् दूसरे यमराजके समान था. उसने सूर्यके समान प्रकाशमान् कुंडलधारी इस ब्राह्मणको ॥ ११ ॥ देखकर बांध लिया और उसके कुंडल, जूता, छत्र, रुद्राक्षकी माला, कमंडलु ये सब छीन लिये ॥ १२ ॥ पश्चात् उसको छोडकर वह मूढबुद्धिवाला व्याध कहने लगा कि– "अब जाओ" ॥ १३ ॥ तब वह ब्राह्मण उस दुष्टसे छूटकर मार्गसे चलने लगा. जहां मार्गमें सूर्यकी किरणसे गरम रेती बिछ रही; जिनपर पांव जलते जाते हैं. पीनेको जल मिला नहीं. इसप्रकार उस कांटेवाले वनमें तृणसे

आच्छादित किसी स्थानपर वह ब्रह्मचारी बैठ गया ॥ १४ ॥ अनन्तर वह कहीं गिर पडे, कहीं ठहर जाय. इसप्रकार उस पीडित ब्राह्मणके हाय ! हाय ! ! शब्दको सुन-
कर वह व्याध शीघ्रही उसके समीप पहुँचा और मुनिको व्याकुल देख दोपहरके समय इसके दया उत्पन्न हो आई ॥ १५ ॥ यह व्याध धर्मसे विमुख और पापबुद्धिवाला
था, तथापि उस ब्राह्मणकी रक्षा करनेमें तत्पर हुआ कि पांवोंकी रक्षा कर सुख दूंगा यह विचार किया ॥ १६ ॥ और जो चोरीसे वा अपने धर्मसे ( छीनकर ) वनमें ग्रहण

स वै द्रुतं संपतन् क्वाति तिष्ठन् हाहेति वादी च जगाम तूर्णम् ॥ दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यंगते पूष्णि दया बभूव ॥ १५ ॥
व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदांखलु पादरक्षाम् ॥ १६ ॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनांतरे ॥ तदीयमेव तत्
सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥ १७ ॥ तस्मादुपानहौ दास्ये सुहुर्दुःखापनुत्तये ॥ तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥ १८ ॥ जीर्णौ
चोपानहौ दिव्यौ वर्तेते पादयोर्मम ॥ नावाभ्यामस्मि मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ
च ते ॥ शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥ २० ॥ उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिं च परां ययौ ॥ सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिरभि-
नंद्य च ॥ २१ ॥

कर लिया सो स्वधर्मसे मिलानेसे सब अपनाही हैं यह व्याधोंका न्याय है ॥१७॥ इसकारण, उस ब्राह्मणके क्लेशोंके नाशके लिये मैं अपना जोडा उसको दान देता हूं उस योगसे
मेरे पाप क्षालनेक लिये मेरेको कुछ पुण्य होगा ॥१८॥ ये जो मेरे पांवमें पुराना जोडा जूतेका है, जिससे हमारा काम चल रहा है, सो इस ब्राह्मणको मैं देता हूं ॥१९॥ यह मनमें निश्चय
कर शीघ्र जाय उसको जूतेका जोडा दे दिया वालूकी तापसे पांव उसके जले जाते थे. जूते पानेसे श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥२०॥ दोनों जूते लेकर परम सुख पाय वह ब्राह्मण

आशीर्वाद देने लगा कि सुखी रहो ॥२१॥ यह वैशाखमासमें दियेहुये दानोंके पुण्यका उदय है कि इस दानके प्रभावसे विष्णुभगवान् दुर्बुद्धि व्याधपरभी प्रसन्न हो जाते हैं॥२२॥ जो सुख सब प्रकारकी वस्तुओंके मिलनेसे होता है, वही सुख मुझको भी प्राप्त हुआ है." तब यह वचन सुन अत्यन्त विस्मित होकर ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवादी ब्राह्मणसे व्याध कहने लगा कि-" यह आपकीही वस्तु आपको दी है. इसमें मेरा क्या पुण्य है है ? ॥२४॥ आप वैशाखकी प्रशंसा करते हो और हरिभगवान् संतुष्ट होगा ऐसे बोलते हो, तो

नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानयम् ॥ व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति॥२२॥ सर्वस्याप्त्या च भूयोपि यत् सुखं तद्-भून्मम ॥ ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥२३॥ व्याजहार पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम् ॥ त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम ? ॥ २४ ॥ प्रशशंसि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् को वैशाखस्तु को हरिः ॥ २५ ॥ को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा शंखस्तुष्टमना अभूत् ॥ २६ ॥ प्रशंसन् स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः ॥ इदानीं दत्तवान् पाद-त्राणे मे लुब्धकः शठः ॥ २७ ॥ यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत ॥ २८ ॥

हे ब्रह्मन्! यह बताओ कि वैशाख कौन है और हरि कौन है ? ॥२५॥ क्या उसका धर्म है और क्या उसका फल है ? हे दयानिधे ! यह मेरेको सुननेकी इच्छा है." व्याधका यह वचन सुनकर शंख प्रसन्नमन हुआ ॥ २६ ॥ फिर मनमें विस्मित होकर वैशाखकी प्रशंसा करने लगा. इस लुब्ध शठने अभी मुझको पादत्राण दिये ॥ २७ ॥ इस दुर्मति व्याधकी बडी

विचित्र विषमता हुई है ॥ २८ ॥ कि सब धर्मोंका फल जन्मान्तरमें मिलता है, परन्तु वैशाखमासके धर्मका फल तत्काल प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इस पापआचारवाले दुष्टात्मा और दुरात्मा व्याधकीभी दैवयोगसे उपानह दान करनेसे सत्वशुद्धि हो गई ॥ ३० ॥ जो कर्म विष्णुको प्रिय है, जिससे निर्मल संतोषकी प्राप्ति होती है, वही धर्म है. मनुआदि धर्मवेत्ताओंने यही धर्म वर्णन किये हैं. वैशाखमासके धर्म, विष्णुभगवान्‌को बहुत प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ केशव भगवान् जिसप्रकार वैशाखधर्मोंसे प्रसन्न होते हैं, वैसे सर्व दान, तप और बडे बडे यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥ सब धर्मोंमें इसके तुल्य कोई धर्म नहीं है. गयाजी न जाओ; गंगास्नान करने चाहे न जाओ;

सर्वेषामेवधर्माणां फलं जन्मांतरेषु वै ॥ वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणं नृणाम् ॥२९॥ पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥
दैवादुपानहोर्दानात् सत्वशुद्धिरभूदहो ॥ ३० ॥ यच्च विष्णोः प्रियं कर्म यत् तत् संतोषनिर्मलम् ॥ तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः ॥
धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥३१॥ धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः ॥ न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः
॥ ३२ ॥ नानेन सदृशो धर्मः सर्वधर्मेषु विद्यते ॥ मा गयां यातु मा गंगां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥३३॥ मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं
स्यमंतकम् ॥ मा गोदां मा च कृष्णां च मा सेतुं मा मरुद्वृधाम् ॥ ३४ ॥ वैशाखधर्म माहात्म्यं शंसंती च कथापगा ॥ तत्र स्नातस्य
वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुद्ध्यते ॥३५॥ मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन् यत् स्वल्पेनैव साध्यते ॥ न तद्बहुव्ययैर्दानैर्धर्मैर्नापि च वै मखैः ॥ ३६ ॥

प्रयाग और पुष्करमें मत जाओ ॥ ३३ ॥ केदारनाथ, कुरुक्षेत्र और प्रभास आदितीर्थोंको न जाओ; गोदावरी, कृष्णा, सेतुबन्ध, रामेश्वर, कावेरीआदि तीर्थोंपर चाहे न जाओ ॥ ३४ ॥ परन्तु वैशाखधर्म कहनेवाली कथारूपी नदीमें स्नान करनेवालेके हृदयमें विष्णुभगवान् विराजमान रहते हैं ॥ ३५ ॥ इस माधव नामक वैशाखमासमें अनायाससे और स्वल्प व्ययसे धर्माचरण करके जैसा महान् फल मिलता है, वैसा बडा खर्च करके महान महान् दानें कीं, धर्म किये और यज्ञ किये, तोभी नहीं मिलता है ॥ ३६ ॥

" हे व्याध ! यह माधवनाम मास पुण्योंको बढानेवाला है. इस मासमें तापको हरनेवाली पादुका तुमने मुझको दी हैं ॥३७॥ इसकारण, तुमारे पूर्वजन्मके पुण्य उदय हो आये हैं. हे व्याध ! तुमारे ऊपर भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ३८ ॥ नहीं तो तुमारी बुद्धि इसप्रकार उत्तम कैसे हो सकती थी ? " जब मुनि ऐसे कहही रहे थे कि इतनेमें मृत्युकरके प्रेरित महाबली ॥ ३९ ॥ एक सिंह एक व्याघ्रको मारनेके निमित्त क्रोधसे विकल हो दौडता हुआ. परंतु बीचमें दैवकल्पित हाथीको देखके ॥ ४० ॥

मासोऽयं माधवो नाम व्याध पुण्यविवर्धनः ॥ तस्मिन् मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥ ३७ ॥ तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् ॥ तुष्टस्तु भगवान् प्रायः श्रेयो व्याध भविष्यति ॥३८॥ अन्यथा ते कथं भूयाद्बुद्धिरेतादृशी शुभा ? ॥ मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥ ३९ ॥ सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत् क्रोधविह्वलः ॥ मध्ये दृष्ट्वा च मातंगं दैवाद्देवेन कल्पितम् ॥ ४० ॥ तं हंतुमुद्यतो गच्छन् पादाक्रांतं व्यवस्थितम् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन् ! सिंहमातंगयोर्वने ॥ ४१ ॥ श्रांतौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षंतौ च तस्थतुः ॥ व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना ॥ ४२ ॥ समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ ॥ तेनैव मासमाहात्म्यश्रवणेनामलाशयौ ॥ ४३ ॥

उसके मारनेको उद्यत हुआ. हे राजन् ! तब सिंह और हाथी इन दोनोंका उस वनमें महाघोर संग्राम हुआ ॥ ४१ ॥ युद्ध करते करते दोनों थककर गिर पडे और युद्ध छोडकर दोनों एक दूसरेको देखने लगे और वहीं पडे रहे. व्याधके प्रति जो कथा महात्मा मुनिने कही ॥ ४२ ॥ वह सब पापोंको दूर करनेवाली है. दैवयोगसे उन दोनों

( सिंह हाथी ) ने यह कथा सुनी ! वैशाखमासमाहात्म्यकें सुननेहीसे उनके पाप दूर होकर देह निर्मल हो गये ॥ ४३ ॥ शाप छूट जानेसे तुरन्त पशुयोनिको त्यागकर स्वर्गलोकको गमन करते हुये. दोनौं दिव्यरूप धारण करते हुये और सुन्दर सुगन्धित चन्दनादि करके लेपित ॥ ४४ ॥ दिव्य विमानपर बैठ दिव्य स्त्रियोंसे सेवित, शिर नवाय हाथ जोड दोनौं खडे हुये ॥ ४५ ॥ मार्गमें व्याधके प्रति धर्मोपदेश करनेवाले मुनि उन दोनौंको देख विस्मित हो पूछने लगे-' कि तुम कौन हो ? ॥ ४६ ॥ दुर्योनिमें तुम्हारा

शापान्मुक्तौ च तौ देहात् सद्यो मुक्तौ दिवं गतौ ॥ दिव्यरूपधरौ दिव्यौ दिव्यगंधानुलेपनौ ॥ ४४ ॥ दिव्यं विमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ ॥ सद्योवनतमूर्द्धानौ प्रांजली चोपतस्थतुः ॥ ४५ ॥ मुनींद्रो धर्मवक्ता च व्याधमुद्दिश्य वै पथि ॥ तौ दृष्ट्वा विस्मितः प्राह कौ युवामिति निश्चलः ॥ ४६ ॥ दुर्योनौ तु कुतो जन्म युवयोर्वा कथं मृतिः ? ॥ अहेतुर्विपिने चास्मिन् परस्परवधोद्यतौ ॥ ४७ ॥ एतत् सर्वं सुविस्तार्यं सम्यग् वदत मेऽनघौ ॥ इत्युक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः ॥ ४८ ॥ मतंगस्य मुनेः पुत्रौ दंतिलः कोहलोऽपरः ॥ शापदोषेण तौ जातौ नाम्ना दंतिलकोहलौ ॥ ४९ ॥ रूपयौवनसंपन्नौ सर्वविद्याविशारदौ ॥ आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिता धर्मार्थकोविदः ॥ ५० ॥

जन्म कैसे हुआ है ? विनाकारण एक दूसरेको मारनेको उद्यत होकर मृत्यु कैसे हुई ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! यह सब विस्तारपूर्वक तुम हमसे कहौ. ' इसप्रकार मुनिने पूछा तब वे दोनौं बोले ॥ ४८ ॥ " मतंगमुनिके दंतिल और कोहल नाम दो पुत्र हुये. शापके दोषसे दंतिलकोहलनामवाले होते भये ॥ ४९ ॥ रूप और यौवनसम्पन्न सब विद्याओंमें पंडित ऐसे हम दोनौं थे. सो हमसे धर्मार्थमें निपुण पिताने कहा ॥ ५० ॥

मतंगनाम ब्रह्मर्षि सब धर्मोंके जाननेमें श्रेष्ठ कहने लगे—" हे पुत्रो ! मधुसूदन भगवान्के प्यारे वैशाखमासमें ॥ ५१ ॥ मार्गमें प्याऊ लगाओ; पंखासे मनुष्योंके सुख-निमित्त पवन करो; मार्गमें छायाके स्थान बनाओ; अन्न और शीतल जल दान करो ॥ ५२ ॥ प्रातःकालमें स्नान करो; विष्णुभगवान्की पूजा करो. प्रतिदिन हरि-कथा सुनो, जिससे संसारका वन्धन छूट जावे " ॥ ५३ ॥ इसप्रकार बहुतसे वाक्योंद्वारा हम दोनौंको समझाया; परन्तु खोटी बुद्धिके कारण, हमारी समझमे कुछभी नहीं

मतंगो नाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः ॥ वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥ ५१ ॥ प्रपां कुरुत मार्गे च जनान् वीजयतं क्षणम् ॥ मार्गे छायां विधत्तं च भूर्यन्नं शीतलांबु च ॥५२॥ कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम् ॥ कथां च शृणुतं नित्यं यया बंधो निवर्तते ॥ ५३ ॥ एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती ॥ क्रुद्धोऽभवं दंतिलोऽहं मत्तोऽयं कोहलाह्वयः ॥५४॥ क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥५५॥ अब्रह्मण्यं च राजानं त्यजेत् सद्यो न चेत् पतेत् ॥ दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं यः प्रकुर्वते ॥५६॥ ते सर्वे नरकं यांति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥५७॥

आया ! पिताके वचन सुनकर मुझ दंतिलको क्रोध हुआ. यह कोहल मदोन्मत्त हो गया ॥ ५४ ॥ तब धर्मकी लालसावाले हमारे पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि—'धर्मसे विमुख पुत्र और कटु वचन कहनेवाली स्त्री ॥ ५५ ॥ और जो राजा अब्रह्मण्य हो अर्थात् ब्राह्मणभक्त न हो, इनको तत्काल त्याग देवै, जो न त्यागे तो पापी होवे. जो दाक्षिण्यसे अथवा धनलोभसे इनका संसर्ग करते हैं ॥ ५६ ॥ वे सब चौदह मन्वन्तरपर्यन्त नरकको जाते हैं. इसप्रकार जानकर मद और क्रोधसे युक्त हम दोनौंको

शाप दिया ॥ ५७ ॥ कि–हे " दंतिल ! तू क्रोधके कारण, सिंह हो जा और मदोन्मत्त कोहल हाथीकी योनिमें जावे. " इसप्रकार शाप पाकर मैं क्रोध करनेवाला दंतिल सिंह हुआ और मदोन्मत्त कोहल हाथी ही गया ॥ ५८ ॥ शाप पानेसे हमने पितासे शापसे निवृत्तिके लिये प्रार्थना करी. तब पिताने शापसे मोक्ष होनेका उपाय बताया ॥ ५९ ॥ कि–" तुम दोनों पशुयोनि पाकर कुछ समय उपरान्त एक दूसरेको मारनेके लिये उद्यत होओगे ॥ ६० ॥ उसी समयमें व्याध और शंखमुनिके

क्रुद्धोऽहं दंतिलो भूयाः सिंहः क्रोधपरिप्लुतः ॥ मत्तस्तु कोहलो भूयान्मत्तो मातंगयूथपः ॥ ५८ ॥ कृतानुतापौ पश्चात्तु प्रार्थयावो विमोचनम् ॥ आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥५९॥ युवां प्राप्य च दुर्योनिं कियत्कालांतरेऽपि च ॥ संगमो भविता तत्र परस्परवधैषिणोः ॥ ६० ॥ तस्मिन्नेव हि समये संवादं व्याधशंखयोः ॥ वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वां श्रवणस्य च ॥ ६१ ॥ गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति ॥ शापान्मुक्तौ पूर्वमेव रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥ ६२ ॥ मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् ॥ इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥ ६३ ॥ प्राप्य दैवात् संगतिं च परस्परवधैषिणौ ॥ संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥ ६४ ॥

संवादद्वारा. वैशाखधर्मकी वार्ता तुम्हारे कानमें दैवयोगसे पहुँचेगी ॥ ६१ ॥ सुनतेही क्षणमात्रमें उसके प्रभावसे तुमारी मुक्ति हो जायगी और शापसे छूट पूर्वरूप धरकर ॥ ६२ ॥ हमारे समीप आकर वास करोगे. हमारा वचन मिथ्या नहीं. " इसप्रकार पिताके शापसे हम दोनोंको पशुयोनि प्राप्त हुई ॥ ६३ ॥ परस्पर एक दूसरेको वध करनेकी इच्छासे

दैववश हम दोनों यहां चले आये और आप दोनोंका दिव्य संवाद सुना ॥ ६४ ॥ उसीके प्रभावसे हमारी तत्काल मृत्यु हो गई." इसप्रकार अपना समाचार कह मुनीश्वरको प्रणाम करके ॥ ६५ ॥ और मुझसे आज्ञा ले अपने पिताके समीप चले गये. वही सब कथा दयानिधि मुनिने व्याधके प्रति कही ॥ ६६ ॥ देखो, वैशाखमाहात्म्यके सुननेका फल कैसा महत्वका है. जो कोई क्षणमात्रभी सुन लेता है, उसको तत्काल मुक्ति प्राप्त होती है" ॥ ६७ ॥ जब मुनिने इसप्रकार कहा, तब व्याधने अपने शस्त्रोंको फेंक दिया

तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवावयोरभूत् ॥ इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥ ६५ ॥ समामंत्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरंतिकम् ॥ तदेतत् संप्रदश्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥ ६६ ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत् ॥ मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ६७ ॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुंगवं तं दयानिधिं निस्पृहमग्र्यबुद्धिम् ॥ विशुद्धसत्वं सुकृतैकपात्रं संन्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥ ६८ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दंतिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने पापोऽतिदुष्टधीः ॥ दयालवो महांतो हि स्वभावादेव साधवः ॥ १ ॥ क्व व्याधश्चाकुलीनोऽहं क्व च वा मतिरीदृशी ॥ केवलं भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥

और कृपालु, निस्पृह, कुशाग्रबुद्धि, विशुद्धसत्व तथा पुण्यपात्र मुनिसे कहने लगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दंतिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्याध बोला—"हे मुने! मैं महापापी और दुष्टबुद्धिवाला हूं. आपने मुझपर बडी कृपा की. अच्छे साधु महात्मा स्वभावसेही दयावान् होते हैं ॥ १ ॥ कहां मैं व्याध

कुलहीन ? कहां मेरी ऐसी मति ? परंतु यह सब केवल आपके परम अनुग्रहका कारण है ॥२॥ हे साधो ! मैं आपका शिष्य हूं, आपका कृपापात्र हूं; आपकरके अनुग्रह करनेके योग्य हूं; पुत्र हूं. हे दयानिधे ! मुझपर कृपा करो ॥ ३ ॥ कि जिससे फिर मेरेको ऐसी अनर्थ करनेवाली दुष्ट बुद्धि कभी न होवे. सत्संग होनेके उपरान्त अब फिर दुःख भोगना न पडे ॥ ४ ॥ इसकारण हे विप्र ! मुझको ऐसे उत्तम और पापनाशक मंत्रोंका उपदेश करो, कि जिससे मोक्षकी इच्छावाले जन सहजहीमें संसारसागरसे पार हो जायं ॥ ५ ॥

अथ साधोश्च शिष्योऽस्मि कृपापात्रोऽस्मि मानद ॥ अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥२॥ यथा मे न पुनर्भूयादसन्मतिरनर्थदा ॥ सद्भिस्तु संगतः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥ ४॥ तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः ॥ येन चाद्धा तरिष्यंति संसाराब्धिं मुमुक्षवः ॥ ५ ॥ साधूनां समचित्तानां तथाभूतदयावताम् ॥ न हीनश्चोत्तमः क्वापि नात्मीयो हि परस्तथा ॥ ६ ॥ एकाग्रेण विचिन्वंति चित्तशुद्धिं च पृच्छति ॥ सर्वदोषयुतो वाऽपि सर्वधर्मोज्झितोऽपि वा ॥ ७ ॥ कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरुम् ॥ तदैवोपतिशंत्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥ ८ ॥ यथा गंगा मनुष्याणां पापनाशस्वभाविनी ॥ तथा मंदसमुद्धारस्वभावाः साधवः स्मृताः ॥ ९ ॥

साधुमहात्मा समानचित्तवाले और सब प्राणियोंपर दया करनेवाले होते हैं. उनको न कोई अधम है, न उत्तम है; न अपना है, न पराया है ॥६॥ जो एकाग्र होकर चित्तको शुद्ध कर पूछता है, वह सम्पूर्ण दोषोंसे युक्त हो अथवा सब धर्मोंसे रहित हो ॥७॥ परन्तु जब अपने किये दुष्कर्मका पछतावा करके गुरुसे पूछता है, तबही गुरुदेव संसारबन्धसे छुडानेवाले ज्ञानका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ जिसप्रकार गंगा स्वाभवसेही मनुष्योंके पापोंको दूर करती है, इसीप्रकार दुष्टबुद्धिवालोंके उद्धार करनेका स्वभाव महात्माओंका

होता है ॥ ९ ॥ हे भक्तवत्सल ! हे दयालो ! आपकी संगतिसे सेवा, नम्रता और चित्तकी शुद्धिद्वारा मैं शुद्ध हूं. मुझको आप उपदेश करिये " ॥ १० ॥ यह व्याधका वचन सुनकर विस्मितचित्तसे फिर मुनि बोले— " हे व्याध ! तुम धन्य हो, धन्य हो." यह कह धर्मोपदेश करने लगे ॥ ११ ॥ शंखने कहा—"हे व्याध ! विष्णुको प्रसन्न करनेवाले, संसारसागरसे पार करनेवाले दिव्य वैशाखधर्मोंको करो; जो अपने कल्याणकी इच्छा हो ॥ १२ ॥ हे व्याध ! यहां धूप बहुत सताती है. न यहां छाया है, न जल है. इसकारण

मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल ॥ शुश्रूषत्वान्नतत्त्वाच्च शुद्धत्वात्तव संगतेः ॥ १० ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥ ११ ॥ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् संसाराब्धिविमोचनान् ॥ कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध शमिच्छसि ॥ १२ ॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नांबु चात्र च ॥ तस्मात् स्थलांतरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते ॥ १३ ॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सच्छायां च समाश्रितः ॥ तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १४ ॥ विष्णोर्माधवमासस्य यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृतांजलिः ॥ १५ ॥ इतोऽविदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥ कपित्थास्तत्र वै संति फलभारेण पीडिताः ॥ १६ ॥

दूसरे स्थानपर चलो. जहां छाया होवे ॥ १३ ॥ वहां चलकर जल पीकर सुन्दर छायामें बैठ सावधानमन होकर पापनाश करनेवाले माहात्म्यको तुमारे आगे कहूंगा ॥ १४ ॥ विष्णुके माधवमासका माहात्म्य जैसा देखा और जैसा सुना है, वैसेही कहूंगा." मुनिने यह कहा तब व्याध हात-जोड़कर बोला ॥ १५ ॥ "यहांसे कुछही दूरपर एक सरोवरमें

जलभरा है. वहां कैथके वृक्ष हैं, जो फलके बोझसे झुक रहे हैं ॥ १६ ॥ वहां हम तुम चलैं, अवश्य चित्त प्रसन्न हो जायगा. " व्याधने जब यह कहा, तब उसके संग उसके मुनि गये ॥ १७ ॥ कुछ दूर जानेपर आगे एक सरोवर देखा. बगुला, राजहंस, चकवाचकवीसे वह सरोवर सुशोभित हो रहा है ॥ १८ ॥ हंस, सारस और क्रौंच पक्षी चारों और विचर रहे हैं. वास, वंग और वेतकरके शोभित है, भौंरे भी गुंजार कर रहे हैं ॥ १९ ॥ मगर कछुआ मछलीआदिसे मनोहर है, कमोदनी–उत्पल–कल्हार–पुंडरीक आदि-

गच्छावस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः ॥ व्याधेनैवं समादिष्टस्तेन सार्कं ययौ मुनिः ॥ १७ ॥ कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्रे सरोवरम् ॥ बककारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ १८ ॥ हंससारसक्रौंचाद्यैः समंतात् परिशोभितम् ॥ कीचवंगकशाद्यैश्च कूजितं भ्रमरैरपि ॥ १९ ॥ नक्रकच्छपमीनाद्यैरगाह्यं सुमनोहरम् ॥ कुमुदोत्पलकल्हारपुंडरीकादिभिर्महत् ॥ २० ॥ शतपत्रैः कोकनदैः समंतात् परिशोभितम् ॥ पक्षिणां च कलारावैर्सुस्वरं नयनोत्सवम् ॥ २१ ॥ तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्च शोभितम् ॥ वटैः कजैर्नीपैश्च चिंचिणीभिस्तथैव च ॥ २२ ॥ निंबप्लक्षप्रियालैश्च चंपकैर्बकुलैः शुभैः ॥ पुन्नागैस्तुंबरैश्चैव कपित्थामलकैरपि ॥ २३ ॥

करके महान् शोभायुक्त ॥ २० ॥ तथा शतपत्र–कोकनदआदि कमलोंकरके सुशोभित और पक्षियोंका कलरव जहां हो रहा, जिससे नेत्रोंको आनन्द हो रहा ॥ २१ ॥ सरोवरके तटपर वांसके वृक्ष तथा अन्य वृक्ष चारों ओर शोभा दे रहे; तथा वड, कंथा, कदंब, इमली ॥ २२ ॥ नींब, पाकर, चिरोंजी, चंपा, बकुल, पुन्नाग, तुंबर, कैथ, आंवला ॥ २३ ॥

और जामुनआदि चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं, वनके हाथी-हिरण-शूकर और भैंसा आदि क्रीडा कर रहे ॥ २४ ॥ शश ( खरगोश ), सेही, रोझ, गैंडा, कस्तूरियामृग, व्याघ्र, सिंह, भेडिया ॥ २५ ॥ गधा, खच्चर, शरभ, सुरागाय, आदि अनेक पशुओंकरके सुशोभित हो रहा; तथा वानर लंगूर आदि छलांग मारनेवाले जीव वृक्षोंकी शाखाओंपर छलांग मार रहे हैं ॥ २६ ॥ बिल्ली, रीछ और रुरु घूम रहे, तथा झिल्ली झंकार रहे, तथा वाँस चटक रहे ॥ २७ ॥ प्रचंड पवनके वेगसे वृक्ष झुक रहे, ऐसा

निर्भेषणैश्च जंबूभिः समंतात् परिशोभितम् ॥ वन्यमातंगसारंगवराहमहिषादिभिः ॥ २४ ॥ शशैश्च शल्लकैश्चैव गवयैः परिशोभितम् ॥ खड्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैरपि ॥ २५ ॥ खरांतकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमंडितम् ॥ शाखाशाखांतरं शीघ्रं प्लवमानैः प्लवंगमैः ॥ २६ ॥ मार्जारैश्चैव भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा ॥ झिल्लीशब्दैश्च केकारैः कीचकानां रवैस्तथा ॥ २७ ॥ घोरवायुविनिर्घातदारुभारैः समन्वितम् ॥ एतादृशं सरो दिव्यं व्याधेनैव प्रदर्शितम् ॥ २८ ॥ ददर्श मुनिशार्दूलस्तृषया बाधितो भृशम् ॥ स्नात्वा मध्याह्नवेलायां सरस्यस्मिन् मनोरमे ॥ २९ ॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥ देवपूजां ततः कृत्वा भुक्त्वा फलमतंद्रितः ॥३०॥ व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च ॥ सुखोपविष्टः पप्रच्छ व्याधं धर्मरतं पुनः ॥ ३१ ॥

सुन्दर सरोवर व्याधने दिखाया ॥२८॥ तृषाकरके व्याकुल मुनिशार्दूल उस सरोवरको देखते हुये, तब इस रमणीय सरोवरमें मध्याह्नके समय मुनि स्नान कर ॥ २९ ॥ वस्त्र धारण कर दोपहरको समयकी क्रिया करने लगे, अनन्तर देवपूजा करके फलोंको खाते हुये ॥ ३० ॥ व्याधके लायेहुये मीठे श्रमनाशक कैथके फल खाकर शंखमुनि सुखसे

बैठे और धर्ममें रत व्याधसे फिर पूछने लगे ॥३१॥ "हे धर्म सुननेमें तत्पर व्याध! अब तुम इस समय क्या सुना चाहते हो सो हम कहैं. धर्म तो बहुतसे हैं और उनकी रीतियां पृथग् पृथग् है और उनके मार्ग भी अनेक प्रकारके हैं ॥३२॥ तहां वैशाख मासके धर्म सूक्ष्म और बहुत फलदायक हैं. ये सब मनुष्योंको लोक और परलोक दोनों स्थानमें फल देनेवाले हैं ॥३३॥ जो तुमारे मनमें पूछनेकी इच्छा हो सो पहले पूछ लो." तब मुनिका वचन सुनकर हाथ जोडकर व्याध बोला ॥३४॥ व्याध कहने लगा– "हे विप्र! कौन कर्मसे मुझको

किं वक्तव्यं मया ह्यद्य तवादौ धर्मतत्पर ॥ धर्माश्च बहवः संति . नानामार्गाः पृथग्विधाः ॥ ३२ ॥ तत्र वैशाखमासोक्ताः सूक्ष्मा अपि महार्थदाः ॥ सर्वेषामेव जंतूनामिहामुत्र फलप्रदाः ॥ ३३ ॥ यत् प्रष्टव्यं मनसि ते यच्चादौ तच्च पृच्छताम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्रांजलिरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ केन वा कर्मणा चासीद्व्याधजन्म तमोमयम् ॥ केन वा चेदृशी बुद्धिः संगतिर्वा महात्मनः ॥३५॥ एतच्चान्यत् समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो ! ॥ इत्युक्तः पुनरप्याह शंखो नाम महामुनिः ॥ ३६ ॥ मेघगंभीरया वाचा स्मयमानमुखांबुजः ॥ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥ ३७ ॥

यह तमोगुणवाली व्याधयोनि प्राप्त हुई और किस कर्मसे मेरी ऐसी बुद्धि हुई और महात्माका सत्संग प्राप्त हुआ ? ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! यदि आप मुझको मानते हो अर्थात् मुझपर कृपा हो तो यह सब वृत्तान्त आप मेरे आगे कहिये." यह सुन शंखनाम महामुनि बोले ॥ ३६ ॥ "मेघसमान गम्भीरवाणीवाले मुखारविन्दसे हंसते हुये शंखने कहा-

"शाकलनाम नगरमें पूर्व तुम वेदपाठी ब्राह्मण थे ॥ ३७ ॥ महातेजस्वी स्तंबनाम तथा श्रीवत्स गोत्रमें तुमारा जन्म हुआ. एक वेश्यासे तुमारा प्रेम था. उसीकी संगतिके दोषसे ॥ ३८ ॥ तुम नित्यकर्मोंको त्यागकर शूद्रसमान अपने घर आया करते थे. शूद्रआचार, दुष्टस्वभाव, नित्यकर्मत्यागी होनेसेभी ॥ ३९ ॥ तुमारी स्त्री ब्राह्मणी रूपवती सो तुमारी सेवा किया करती थी और तुमारी वेश्याकीभी सेवा किया करती थी ॥ ४० ॥ तुम दोनोंके चरण धोती थी. तुमारा

स्तंबो नाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्संगदोषतः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा नित्यक्रियां नित्यं शूद्रव-द्गृहमागतः ॥ शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणी च तदा चासीद्भार्या कांतिमती तव ॥ सा त्वां पर्यचरत् सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥ ४० ॥ उभयोः क्षालयंती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी ॥ उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥ ४१ ॥ वे-श्यया वार्यमाणापि पातिव्रत्यव्रते स्थिता ॥ एवं शुश्रूषयंत्या हि भर्तारं वेश्यया सह॥४२॥जगाम सुमहान् कालो दुःखिताया महीतले ॥ अपरस्मिन् दिने भर्त्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् ॥ ४३ ॥ अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥ तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥ ४४ ॥

प्यार भलीभांति करती थी. तुम दोनों पलंगपर सोते थे और वह नीचे सोती थी ! तुम दोनोंकी आज्ञा मानती थी ॥ ४१ ॥ वेश्याने निवारणभी किया, तोभी वह स्त्री पतिव्रताधर्ममें स्थित रही ! इसप्रकार अपने पति और वेश्याकी सेवा करते करते ॥ ४२ ॥ और दुःख भोगते भोगते बहुत समय बीत गया. एकदिन उसके पतिने भैंसका दूध और मूली एक साथही भोजन किया ॥ ४३ ॥ और शूद्रोंका अन्न अभक्ष्य निष्पाव ( मटर मांस ) और तिलभक्षण करनेसे अपथ्य भोजन होनेके

कारण, वमन और विरेचन ( दस्त ) होनें लगें ॥ ४४ ॥ इस अपथ्यसें दारुण भगन्दररोग प्रगट हो गया. इस रोगसे रातदिन बहुत पीडा होनें लगी ॥ ४५ ॥ जबतक घरमें धन रहा, तबतक वेश्या ठहरी रही—फिर उसका सब धन लेकर वह वेश्या घर छोंड चली गई ॥ ४६ ॥ जब वह दूसरेके पास चली गई, तब इस ब्राह्मणको घोर घृणा उत्पन्न हुई. अनन्तर रोगसे महादुःखित हो, दीनवाणीकरके ॥ ४७ ॥ रोता हुआ रोगसें व्याकुल मन अपनी स्त्रीसें कहने लगा—" हे देवि ! मेरी रक्षा करो. मैं वेश्यासक्त हूं और

अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः ॥ स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥४५॥ यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥ गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मंदिरे ॥४६॥ अन्यस्य पार्श्वमासाद्य गता घोरा सुनिर्घृणा ॥ ततः स दीनवचनो व्याधिबाधासु पीडितः ॥ ४७ ॥ उक्तवान् स रुदन् भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥ परिपालय मां देवि ! वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् ॥ ४८ ॥ न मयोपकृतं किंचित् त्वयि सुंदरि पापिना ॥ यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्हितः ॥ ४९ ॥ स षंढो भविता भद्रे दशजन्मसु पंचसु ॥ दिवारात्रं महाभागे निंदितः साधुभिर्जनैः ॥ ५० ॥ पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥ अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवाश्रुनयनेन वै ॥ ५१ ॥

बडा निष्ठुर हूं ॥ ४८ ॥ हे सुन्दरि ! मुझ पापीने तुमारा कुछभी उपकार नहीं किया है. जो पापासक्त मनुष्य अपनी नम्र हुई स्त्रीका मान नहीं करता है ॥४९॥ वह पन्द्रह जन्मोंतक नपुंसक होता है. हे महाभागे ! रातदिन साधुजनों करके निंदित ॥ ५० ॥ तुझ साध्वीकी अवज्ञा करनेसे मैं पापयोनिमें जाऊंगा. अर्थात् तुमारा अपमान करनेसे मैं दुष्ट-

एवं ब्रुवाणं भर्त्तारं कृतांजलिपुटाऽब्रवीत् ॥ न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कांत मां प्रति ॥ ५२ ॥ न चापि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धो वदस्यथ ॥ पुरा कृतानि पापानि दुःखानीह भवंति हि ॥ ५३ ॥ तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स सत्तमः ॥ यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥५४॥ तद्भुंजंत्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥ इत्येवमुक्त्वा भर्त्तारं सा सुश्रूषत्तं च पालयत् ॥५५॥ आनीय जनकाद्वित्तं बंधुभ्यो वरवर्णिनी ॥ क्षीरोदवासिनं देवं भर्तारं चैव चिंतयत् ॥ ५६ ॥ शोधयंती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥ नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन् कष्टाच्छनैः शनैः ॥५७॥

योनिमें जन्म पाऊंगा. मैं तुमारे क्रोधसे और तुमारे नेत्रोंके आंसुवोंसे दग्ध हूं अर्थात् नम्रभावसे तुमारे रोनेपरभी मैं क्रोधके मारे जलता रहा हूं " ॥५१॥ जब उसके स्वामीने इसप्रकार कहा, तब ब्राह्मणी हाथ जोडकर बोली–" हे कान्त ! तुम मेरे सामने दीनता न करो और न लज्जा करो ॥ ५२ ॥ मैने तुमपर कभी क्रोध नहीं किया है, जिससे दग्ध हुये कहते हो. पूर्वकिये हुये पापोंसे दुःख होते हैं अर्थात् इस संसारमें पूर्वजन्मकृत पाप उदय होते हैं, तब दुःख प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ उन पापोंको सहन करनेवाली स्त्री साध्वी होती है और वही पुरुष उत्तम साधु होता है; जो मुझ पापिनीने पूर्वजन्ममें पाप किये है ॥ ५४ ॥ उन पापोंके भोगनेमें मुझको कुछ दुःख वा विषाद नहीं है. इस प्रकार अपने पतिसे कहकर वह सुन्दरी अपने पतिकी सेवा करने लगी ॥ ५५ ॥ अपने पिता और बन्धुजनोंसे धन लाकर वह पतिव्रता ब्राह्मणी क्षीरशायी विष्णु भगवान् और अपनी पतिकी सेवामें तत्पर होती हुई ॥५६॥ दिनरात अपने पतिके मलमूत्र निकालती और उस भगंदरमें पडे हुये कीडे अपने नखसे कष्टपूर्वक धीरेधीरे निकालती थी ॥५७॥

वह पतिव्रता न रातको सोती थी, न दिनमें सोती थी और पतिके दुःखके संतापसे दुःखित होकर बोली ॥५८॥ ' हे देवताओ ! हे पितरो ! तुम मेरे पतिको रोगसे रहित करो और निष्पाप करो अर्थात् हमारे स्वामीके पापोंका नाश करो॥५९॥मेरे पतिके आरोग्यप्राप्तिके लिये मैं भगवती चंडीको माहिषका बली दूंगी रक्त-मांसयुक्त उत्तम प्रकारका अन्नभी समर्पण करूंगी॥६०॥ महात्मा गणेश विघ्ननायकके अर्थ मोदक( लड्डु )बनाऊंगी और भोग लगाऊंगी और दश शनैश्चरके उपवास ( व्रत ) करूंगी॥६१॥ मीठा नहीं खाऊंगी; घी नहीं

न सा स्वपति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी ॥ भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमवोचत ॥ ५८॥ देवाश्च पांतु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥
कुर्वंतु रोगहीनं मे भर्त्तारं गतकल्मषम् ॥५९॥ चंडिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् ॥ सुअन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥ ६० ॥
मोदकान् कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥ मंदवारे करिष्यामि चोपवासान् दशैव तु ॥ ६१ ॥ नोपभुंजामि मधुरं नोपभुंजामि वै
घृतम् ॥ तैलाभ्यंगविहीनाहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥ ६२ ॥ जीवतां रोगहीनोऽयं भर्ता मे शरदां शतम् ॥ एवं सा व्याहरद्देवी वासरे
वासरे गते ॥ ६३ ॥ तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥ वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम् ॥ ६४ ॥
तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग् वै गृहमागतः ॥ तेन वै रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् ॥६५॥

खाऊंगी; शरीरपर तैल मर्दन और उबटन लगाना छोड दूंगी. इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ यह मेरा पति रोगहीन अर्थात् आरोग्य होकर सौ वर्षपर्यन्त जीवे.' इसप्रकार यह देवी प्रतिदिन बोलती रही ॥ ६३ ॥ उसीसमयमें एक मुनि देवलनाम महात्मा वैशाखमासमें घामकी गरमीसे व्याकुल उसके घर आये ॥ ६४ ॥ तब वह स्त्री कहने लगी कि

यह वैद्य हमारे घर आये हैं. ये अपने रोगका निवारण करेंगे. इसवास्ते मैं उनका अतिथिसत्कार करती हूं ॥ ६५ ॥ तुमको धर्मसे विमुख जानकर वैद्यके मिस अर्थात् ये वैद्य हैं ऐसा कहके ठगाया ! ऋषिका चरणप्रक्षालन कर उस जलको शिरपर छिडका ॥ ६६ ॥ और घामसे व्याकुल उस महात्माको मीठा जलदान किया, कि जिससे उसकी गरमी शान्त हुई ॥ ६७ ॥ प्रातःकाल सूर्यउदय होनेपर वह मुनि जैसे आये वैसे चले गये. कुछ समय बीते तुमको सन्निपात हो गया ॥ ६८ ॥ जब तुमारी स्त्री तुमको

ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वंचितः॥ पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साऽक्षिपत् ॥६६॥ पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥ त्वयानुमोदिता सायं घर्मतापनिवारकम् ॥ ६७ ॥ स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथागतः ॥ अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥ ६८ ॥ त्रिकटुं नीयमानायां भर्तांगुलिमखंडयत् ॥ उभयोर्दंतयोः श्लेषः सहसा समपद्यत ॥ ६९ ॥ तत् खंडमंगुलेर्वक्त्रे स्थितं भर्तुः सुकोमलम् ॥ खंडयित्वांगुलिं भर्ता पंचत्वमगमत्तदा ॥ ७० ॥ शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं शुभाम् ॥ मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमती तव ॥ ७१ ॥ विक्रीत्वा चापि वलयं गृहीत्वा चेंधनं बहु ॥ चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥७२॥

त्रिकुटा प्यायवेको लाई, तब तुमने उसकी अंगुली काट ली और तुमारी दोनौं दांती विंधगईं ॥ ६९ ॥ अंगुलीका वह एक खंड तुमारे मुखमें रहगया, उसी समय तुमारी मृत्यु होगई ॥ ७० ॥ अपनी सुन्दर शय्यापर उसी वेश्याका ध्यान करते हुये तुम मर गये. तब तुमको मरा जानकर तुमारी रूपवती स्त्री ॥ ७१ ॥ अपना कंकण बेचकर बहुतसा इंधन लाई और बहुत बडी चिता बनाय उस साध्वीने चिताके बीचमें पतिको रखकर ॥ ७२ ॥

भुजाओंसे भुजा मिलाय दोनों चरणोंसे चरण मिलाय मुखमें मुख और हृदयमें हृदय लगाकर ॥ ७३ ॥ जांघोंमें जांघें मिलाय आत्माको सन्निवेशित कर अपने स्वामीके रोग-पीडित देहको अग्निसंस्कार करती हुई. इसप्रकार वह कल्याणी अपने शरीरको अग्निमें भस्म कर सती होगई ॥ ७४ ॥ अपने शरीरको छोड पतिका आलिंगन कर तुरन्त विष्णुलोकको चलीगई. वैशाखमासमें जलदान करनेसे और चरण धोकर जलको शिरपर छिडकनेसे योगियोंको भी दुर्लभ गति उसको प्राप्त हुई ॥ ७५ ॥ स्त्रीके पुण्यसे तुम सब

अवगुह्य भुजाभ्यां च पदौ चाश्लिष्य पादयोः ॥ मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥ ७३ ॥ जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च ॥ दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम्॥आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥७४॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिंग्य मुरारिलोकम् ॥ पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन् पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥ ७५ ॥ त्वमंतकाले गणिकां विचिंतयन् देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः ॥ जन्म व्याधं प्राप्तवान् घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारि ॥ ७६ ॥ दत्ता त्वया पानकस्यापि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे साध्विजाने ॥ व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान् प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥ ७७ ॥ धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ॥ तेनेयं ते संगतिर्मे वनेऽस्मिन् यया भूयात् संपदः संततिश्च ॥ ७८ ॥ इत्येतत् सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत् कृतम् ॥ कर्म पुण्यं पापकं च दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ७९

पापोंसे छूटनेपरभी अन्तसमयमें वेश्याका ध्यान करनेसे देहको छोड लोगोंको सदा भय उत्पन्न करनेवाला घोर व्याधका जन्म पाया; जिस जन्ममें तुमको सदैव हिंसा प्रिय है ॥ ७६ ॥ तुमने वैशाखमें मीठे जलदानकी आज्ञा दी, इसीसे व्याधयोनि प्राप्त होनेपरभी तुमारी ऐसी सुबुद्धि हुई है, जिससे तुमने सब सुखोंके हेतु धर्म पूछे ॥ ७७ ॥ और तुमने उस पापनाशक मुनिचरणोदकको मस्तकपर छिडका, इसीसे तुमको सत्संगति हुई, जिससे धनसंतानकी वृद्धि होती है ॥ ७८ ॥ इसप्रकार पूर्वजन्ममें तुमने जो जो कर्म किये,

सो सब कहे. ये तुमारे पाप और पुण्य कर्म हमने दिव्यदृष्टिसे देखे हैं ॥७९॥ अब जो कोई गुप्त बात पूछनेकी तुमारी इच्छा हो सो, तुम पूछ लो; तुमारा चित्त शुद्ध हो गया है. हे महामते! तुमारा कल्याण होवै" ॥ ८० ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्याध बोला—" हे ब्रह्मन्! पूर्वे आपने विष्णुकी प्रीतिके अर्थ शुभफल देनेवाले भागवतधर्म कहे. उनमें भी वैशाखके धर्म सबसे उत्तम है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! वह विष्णु कैसे

गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवान् श्रोतुमिच्छति ॥ जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः ॥ तत्रापि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥ १ ॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन्! किं वा तस्य हि लक्षणम् ॥ किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान् विभुः ॥ २ ॥ कीदृशा वैष्णवा धर्माः केनासौ प्रीयते हरिः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् किंकराय महामते ॥ ३ ॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः ॥ प्रणम्य जगतामीशं नारायणमनामयम् ॥ ४ ॥ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् ॥ यदचिंत्यं विरिंच्याद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥५॥

हैं? विष्णुके लक्षण क्या हैं? उनका मान क्या है? उत्तम भावोंसे किन लोगोंद्वारा विष्णुभगवान् जाने जाते हैं? ॥ २ ॥ वैष्णव धर्म कौनसे हैं? किस कर्मसे हरिभगवानकी प्रसन्नता होती है? हे ब्रह्मन्! हे महामते! यह मुझ सेवकके आगे आप कहिये" ॥ ३ ॥ इसप्रकार व्याधने पूछा, तब वह शंखमुनि जगत्के स्वामी अनामय नारायणको प्रणाम कर बोलने लगे ॥ ४ ॥ शंखमुनि बोले—" हे व्याध! सुनौ, हम विष्णुके पापरहित रूपका वर्णन करते हैं. जो रूप ब्रह्माआदि किसी मुनिके ध्यानमें नहीं

आता है ॥ ५ ॥ तथा जो पूर्णशक्तिवाला, पूर्णगुणविशिष्ट,सबके ईश्वर,निर्गुण,निश्चेष्ट, अनन्त और सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसा श्रीहरिका रूप है ॥६॥ यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जगत्के ब्रह्मेन्द्रादि अधिपति जिसके आश्रयसे यह जगत् रहता है ऐसे महाभूतादि उनके सह इस नारायणके वशमें स्थित है ॥७॥ अब तुमारे आगे में ब्रह्मपरमात्माके लक्षण कहता हूं. जिस ब्रह्मसे उत्पत्ति, स्थिति, संहार, आवृत्ति नियम ॥ ८ ॥ प्रकाश, बन्ध, मोक्ष और वृत्ति ये होते हैं, पंडित जन उसीको ब्रह्म कहते हैं ॥ ९ ॥ इसीको साक्षात्

पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः सकलेश्वरः ॥ निगुणो निष्कलोऽनंतः सच्चिदानंदविग्रहः ॥ ६ ॥ यदेतदखिलं विश्वं सचराचरमीदृशम् ॥ साधीशं साश्रयं यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥ ७ ॥ अथ ते लक्षणं वच्मि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥ ८ ॥ प्रकाशो बंधमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवंत्यमी ॥ स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां संमतो विभुः ॥ ९ ॥ साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि ॥ ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः ॥ १०॥ नान्येषां ब्रह्मता क्वापि तच्छक्त्यैकांशभागिनाम् ॥ तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥ ११ ॥ शास्त्रं च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् ॥ इतिहासः पंचरात्रं भारतं च महामते ॥ १२ ॥ एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथंचन ॥ ना वेदविदमुं विष्णुं मनुत च नरः क्वचित् ॥ १३ ॥

ब्रह्म कहते हैं. ब्रह्मके पश्चात् ब्रह्माआदिकोंकोंभी ब्रह्मशब्दकरके कहते हैं. यह पंडितोंका मत है ॥ १० ॥ जो ब्रह्मके एकएक अंशकरके युक्त हैं, उनमें ब्रह्मभाव कहा ? उस परमात्माके जन्म आदि तो केवल शास्त्रद्वारा जाने जाते हैं ॥ ११ ॥ शास्त्र, वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, पंचरात्र, भारत हे महामते ॥ १२ ॥ इन्हींके द्वारा विष्णु भग-

वान् जाने जाते है. अन्य किसी प्रकारसे भी नही जाने जाते हैं वेदवेत्ताके सिवाय अन्य किसीको विष्णुकी योग्यता नही समझती है ॥ १३ ॥ वेदोंसे जानने योग्य सनातन नारायणभगवान् इन्द्रिय, अनुमान और तर्कद्वारा जाननेमें नही आते हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्मकेही जन्म, कर्म और गुणोंको यथाबुद्धि जानकर प्राणी बन्धनसे छूट जाते हैं और सदैव उसके वशमें रहते हैं ॥ १५ ॥ क्रमसे विष्णुका माहात्म्य अतिशय होगया है. देव, ऋषि, पिता और माता इनमें भगवान्की एक एक शक्ति स्थित रहती है ॥ १६ ॥

नेंद्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् ॥ ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥ १४ ॥ अस्यैव जन्मकर्माणि गुणान् ज्ञात्वा यथामति ॥ मुच्यंते जीवसंघाश्च सदा तद्वशवर्तिनः ॥ १५ ॥ क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् ॥ एकैकस्मिन् स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमातृके ॥ १६ ॥ प्रत्यक्षेणागमेनापि तथैवानुमयापि च ॥ आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखे तथा ॥ १७ ॥ तस्माद्भूपं शतगुणं विद्यात् ज्ञानादिभिर्वृतम् ॥ भूतान्मनुष्यगंधर्वान् विद्याच्छतगुणाधिकान् ॥ १८ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् ॥ तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥ १९ ॥ सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्यादयस्तथा ॥ सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणो प्राणादिंद्रो महाबलः ॥ २० ॥

प्रत्यक्ष, आगम तथा अनुमानसे बल, ज्ञान एवं सुखमें प्रथम मनुष्यको उत्तम जानै ॥ १७ ॥ मनुष्योंसे ज्ञानआदिकरके युक्त राजाको सौगुणा जानै; राजासे गन्धर्वमनुष्योको सौगुण अधिक जानै ॥१८॥ इनसे तत्त्वाभिमानी देवताओंको सौगुणा अधिक जानै; तत्त्वाभिमानी देवताओंसे सप्तऋषि बडे हैं ॥१९॥ सप्तऋषिसे अग्नि, अग्निसे सूर्यआदि, तथा

सूर्यसे बृहस्पति, बृहस्पतिसे वायु, वायुसे इन्द्र ॥२०॥ इन्द्रसे पार्वती, पार्वतीसे जगद्गुरु महादेवजी और शंभुमहादेवजीसे बुद्धिदेवि, बुद्धिसे प्राण बलवान् है ॥२१॥ प्राणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है. प्राणमें सब प्रतिष्ठित है. प्राणसे विश्वका प्रादुर्भाव हुवा है. प्राणमय यह सब जगत् है ॥ २२ ॥ प्राणमें यह सब प्रोत है. प्राणसेही सब जगत् चेष्टित है. नीलमेघके समान कान्तिमान् सबका आधारभूत इसको सूत्र कहा है ॥ २३ ॥ लक्ष्मीके कटाक्षमात्रसे इस प्राणकी स्थिति होती है." यह सुन व्याधने कहा-" वह लक्ष्मी

इंद्राच्च गिरिजा देवी देव्याः शंभुर्जगद्गुरुः ॥ शंभोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलात्मकः ॥२१॥ न प्राणात् परमं किंचित् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ प्राणाज्जातमिदं विश्वं प्राणात्मकमिदं जगत् ॥ २२ ॥ प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते ॥ सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलांबुदप्रभम् ॥२३॥ लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपालेशैकभाजिनी ॥ २४ ॥ न विष्णोः परमं किंचिन्न समो वा कथंचन ॥ कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामाधिकोऽभवत् ॥ २५ ॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्ये कथं विभो ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् ! कथं प्राणाद्विभुः परः ॥ २६ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि यत् पृष्टं निर्णयं त्वया ॥ प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥ २७ ॥

देवदेव हरिभगवान्‌की एकही कृपापात्र है ॥ २४ ॥ विष्णुभगवान्‌से श्रेष्ठ अथवा समान कोई नहीं है. जीवमें यह प्राण सूत्रनामवाला श्रेष्ठ कैसे हुआ ? ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसका निर्णय आप मेरे आगे कहो, कि परमात्मासे प्राण कैसे परे हैं और प्राणसे परे परमात्मा कैसे है ? " ॥ २६ ॥ शंखमुनि बोले-" हे व्याध ! सुनो, जो निर्णय तुमने

पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः स्रष्ट्वा ब्रह्मादिकान् देवानिदं प्राह जनार्दनः॥२८॥साम्राज्येहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् ॥
यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वराः ॥ २९ ॥ तं स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् ॥ इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्र-
पुरोगमाः ॥ ३० ॥ एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति ॥ सर्वे विवदमानाश्च सूर्यं केचित् परं विदुः ॥ ३१ ॥ शक्रं केचित् परं
कामं केचित्तूष्णीं तु तस्थिरे ॥ ते निर्णयमपश्यंतः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥ ३२ ॥ नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्रांजलयोऽमराः ॥
विचारितं महाविष्णो ! सर्वैरस्माभिरंजसा ॥ ३३ ॥

पूछा वह मैं तुमसे कहता हूं. प्राणके आधिक्यके उद्देशसे सब जीवोंद्वारा वर्णन करता हूं ॥ २७ ॥ सनातन नारायणदेवने पहले अपने नाभिकमलसे ब्रह्मादिक देवताओंको रचा और यह कहा ॥ २८ ॥ कि–' राज्यस्थापन करके तुम सब देवताओंका राजा मै ब्रह्माजीको नियत करता हूं और तुममें जो देवता अधिक श्रेष्ठ हो, वह युवराजके योग्य होगी ॥२९॥ उसको युवराज बनाओ, परंतु शील, शौर्य और उदारताआदि गुणोंकरके जो युक्त हो ' इसप्रकार जब हरिभगवान्‌ने कहा, तब सब देवता इन्द्रके आगे जाकर प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ और इसप्रकार परस्पर विवाद करने लगे कि– 'हम होंगे.' सब विवाद करते करते कोई बोले कि–'सूर्य सबोंमें श्रेष्ठ है ' ॥ ३१ ॥ कोई बोले कि–' इन्द्र सबोंमें श्रेष्ठ हैं.' कोई चुपचाप स्थित रहे. जब वे किसी प्रकार निर्णय नहीं कर सके, तब पूछनेके निमित्त नारायणके समीप गये ॥ ३२ ॥ सब देवता नमस्कार कर हाथ जोड कहने लगे— "हे महाविष्णु ! हम सबने परस्पर बहुत विचार किया है ॥ ३३ ॥

हम सबमें कोईभी अधिक नहीं जान पडता. हे भगवन्! आपही निर्णय करके हम सब देवताओंके संशयको दूर कर दीजिये " ॥ ३४ ॥ सब देवताओंनें जब यह पूछा, तब भगवान् हंसकर यह वचन बोले कि– " वही राजा है, जिसके निकल जानेसे यह देह ॥ ३५ ॥ गिरजावै; जिसके प्रवेश होनेसे देह उठै वही सब देवताओंमें अधिक है. दूसरा कोईभी नहीं है " ॥३६॥ भगवान्‌ने यह कहा, तब सब देवता कहने लगे कि–'ऐसाही हो.' अनन्तर जयंतनाम देव पांवोसे निकल गया

अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथंचन ॥ त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनस्त्विमे ॥३४॥ इति पृष्टोऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ देहादस्मान्न वै राजा ह्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥ ३५ ॥ पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन् वै ह्युत्थितो भवेत् ॥ स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथंचन ॥ ३६ ॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथास्त्विति वचोऽब्रुवन् ॥ निश्चक्राम जयंताह्वः पादात् पूर्वं सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ तदा पंगुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्तेचलन्नपि ॥ ३८ ॥ पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रांतो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ तदा षंढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ३९ ॥ शृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रांत इंद्रः सर्वामरेश्वरः ॥ ४० ॥

॥ ३७ ॥ तब पंगु कहा गया, परंतु शरीर नहीं गिरा. सुनता, पीता. बोलता, सूँघता, देखता और चलता रहा ॥३८॥ अनन्तर गुह्यनाम इन्द्रियसे दक्षप्रजापति निकल गया, तब यह षंढ कहया, परन्तु शरीर नहीं गिरा ॥ ३९ ॥ परन्तु पूर्वसमान सुनता, पीता, बोलता, सूँघता, देखता और चलता रहा. पश्चात् हाथोंसे सब देवताओंका ईश्वर इन्द्र

निकला ॥ ४० ॥ तब इसको हांथोंसे रहित कहा, परंतु शरीर नहीं गिरा; पूर्वकी नाईं सुनता पीता, बोलता, सूंघता, देखता और चलता रहा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर नेत्रोंसे सब तेजस्वियोमें उत्तम सूर्य निकल गया. तब यह शरीरकारण कहाया, परंतु शरीर तबभी नहीं गिरा ॥ ४२ ॥ और पहलेके समान सुनता, पीता, बोलता, सूंघता, देखता और चलता रहा. तत्पश्चात् घ्राण इन्द्रियसे अश्विनीकुमार निकल गये ॥ ४३ ॥ तो इसको नासिकाहीन कहा, परन्तु शरीर न गिरा और पूर्ववत् सुनता, पीता, बोलता,

हस्तहीनमसुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ श्रृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ ४१ ॥ लोचनाभ्यां विनिष्क्रांतः सूर्यस्तेजस्विनां वरः ॥ तदा काणमसुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४२ ॥ श्रृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ घ्राणात् पश्चाद्विनिष्क्रांतौ नासत्यौ विश्वभेषजौ ॥ ४३ ॥ अजिघ्राणमसुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ श्रृण्वन् पिबन् वदन्नास्ते पश्यंश्चैव चलन्नपि ॥ ४४ ॥ श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रांता न देहः पतितस्तदा ॥ तदाऽसुं बधिरं प्राहुर्न मृतेति कथंचन ॥ ४५ ॥ श्रृण्वन् जीवंश्चलन्वदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रांतस्ततः परम् ॥ ४६ ॥ तदाऽरसज्ञमेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्वदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ ४७ ॥

सूंघता, देखता और चलता रहा ॥ ४४ ॥ फिर कानोंसे दिशायें निकल गईं. तबभी शरीर नहीं गिरा और इसको बधिर कहने लगे, मृत किसीने नहीं कहा ॥ ४५ ॥ और पूर्ववत् सुनता, पीता, बोलता, सूघता, देखता, चलता रहा. तदनन्तर जिह्वासे वरुण निकल गया ॥ ४६ ॥ तब यह अरसज्ञ कहाया, तबभी शरीर नहीं गिरा और जीता

चलता, खाता, जानता और श्वास लेता रहा ॥४७॥ अनंतर वाणीसे वागीश्वर अग्नि निकल गया, तब इसको मूक कहा; परंतु शरीर नहीं गिरा ॥४८॥ और जीता, चलता, खाता, तथा जानता और श्वास लेता रहा. अनंतर मनको चैतन्य करनेवाले रुद्र मनसे निकल गये ॥४९॥ तब इसको जड कहने लगे, तब भी शरीर नहीं गिरा और जीता, चलता, खाता, तथा जानता और श्वास लेता रहा ॥ ५० ॥ पश्चात् प्राण निकल जानेसे इसको मृत कहा और फिर सब देवता विस्मित होकर यह कहने लगे ॥ ५१ ॥ 'जो इस देहको उठानेमें

ततो वाचो विनिष्क्रांतो वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४८ ॥ जीवंश्चलन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रांतो मनसो बोधनात्मकः ॥ ४९ ॥ तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥५०॥ पश्चात् प्राणो विनिष्क्रांतो मृतमेनं तदा विदुः ॥ पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥५१॥ देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः ॥ स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजो भविष्यति ॥ ५२ ॥ इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथा क्रमम् ॥ जयंतः प्राविशत् पादौ नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ ५३ ॥ गुह्यं च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ इंद्रो हस्तौ विवेशाथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५४ ॥ चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ ५५ ॥

समर्थ होगा, वही हम सबमें श्रेष्ठ होगा और युवराज होवेगा' ॥ ५२ ॥ इसप्रकार परस्पर कह सुनकर यथाक्रम प्रवेश होने लगे. प्रथम जयन्त चरणोंमें प्रविष्ट हुआ, परन्तु शरीर नहीं उठा ॥५३॥ गुह्येंद्रियद्वारा दक्षप्रजापति प्रविष्ट हुआ, परन्तु शरीर नहीं उठा. अनन्तर इन्द्र हाथोंमें प्रविष्ट हुआ, परन्तु शरीर नहीं उठा ॥५४॥ नेत्रोंमें सूर्यनारायण प्रविष्ट हुये परन्तु

शरीर नहीं उठा. इसीप्रकार दिशा कानोंमें प्रविष्ट होनेसेभी शरीर नहीं उठा ॥५५॥-अनन्तर जिह्वामें वरुण प्रविष्ट होनेसेभी शरीर नहीं उठा. एवं नासा इन्द्रियमें अश्विनीकुमार प्रविष्ट हुये तौंभी शरीर नहीं उठा ॥ ५६ ॥ फिर वाणीमें अग्नि प्रविष्ट हुआ, तोभी शरीर नहीं उठा. ज्योंका त्यो पडा रहा. रुद्र मनमें प्रविष्ट हुये, परंतु शरीर नहीं उठा ॥ ५७ ॥ पश्चात् प्राण प्रविष्ट हुये. प्राण प्रविष्ट होतेही शरीर उठ खडा हुआ ! तब देवताओंने निश्चय किया कि–' प्राणही सब देवताओंमें श्रेष्ठ और व्यापक है ॥५८॥

वरुणः प्राविशज्जिव्हां नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ ५६ ॥ वन्हिश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ मनश्च प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तव् कलेवरम् ॥ ५७ ॥ पश्चात् प्राणो विवेशासौ तदोत्तस्थौ कलेवरम् ॥ तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥ ५८ ॥ बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च ॥ ततोऽभिषेचयांचक्रुर्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥ ५९ ॥ उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः ॥ तस्मात् प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः ॥ ६० ॥ न प्राणहीनं जगदस्ति किंचित् प्राणेन हीनं न च वै समेधते ॥ प्राणेन हीनं स्थितिमन्न किंचित् प्राणेन हीनं न च किंचिदस्ति ॥ ६१ ॥ तस्मात् प्राणः सर्वजीवाधिकोऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवांतरात्मा ॥

तथा बल, ज्ञान, धीरज और वैराग्य एवं जीवनमें भी सबसे अधिक है. अत एव प्राणहीको युवराज किया ॥ ५९ ॥ उत्कृष्ट स्थितिके हेतुसे सामवेदका गान किया. इसी कारण, स्थावरजंगमात्मक यह सब जगत् प्राणमय है पूर्णअंश और बलकरके युक्त यह प्राण सर्व जगत्पति है ॥ ६० ॥ प्राणहीन जगत् कुछ नहीं है. बिंना प्राणके वृद्धिको भी प्राप्त नहीं होता है. प्राणविना कुछ स्थिति नहीं है. तथा प्राणके विना संसारमें कुछभी नहीं है. ॥ ६१ ॥ इसकारण, प्राण सब जीवोंमें अधिक बलवान् तथा सब

जीवोंका अन्तरात्मा है. प्राणोंसे अधिक वा समान शास्त्रोंमें न पहले देखा है; न सुना है ॥ ६२ ॥ भिन्नभिन्न कार्योंको सम्पादन करनेके निमित्त एक प्राणदेवही अनेक प्रकारका हो जाता है अर्थात् अनेक रूप धारण करतासा दीख पडता है. इसकारण, प्राणकी उपासना करनेवाले प्राणोंको सबसे उत्तम मानते हैं ॥ ६३ ॥ लीलाकरके सब जगत्के रचने, संहार करने और पालन करनेमें समर्थ है. शेष–शिव–इन्द्रआदि चेतन और जड कोई भी ॥६४॥ विना वासुदेवके प्राणका पराभव नहीं कर सकते हैं. सर्व

प्राणात् कोपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चास्ते ॥६२ ॥ तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवो ह्यनेकधा ॥ तस्मात् प्राणं वरं प्राहुः प्राणोपासनतत्पराः ॥ ६३ ॥ लीलयैव जगत् स्रष्टुं हंतुं पालयितुं प्रभुः शेषा हि शिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडाअपि ॥ ६४ ॥ वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥ सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयो विभुः ॥ ६५ ॥ वासुदेवानुगो नित्यं तथा विष्णुवशे स्थितः ॥ वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति ॥ ६६ ॥ देवाः प्रतीपं कुर्वंति रुद्रेंद्राद्याः सुरेश्वराः ॥ प्रतीपं क्वापि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः ॥ ६७ ॥ तस्मात् प्राणो महाविष्णोर्वलमाहुर्मनीषिणः ॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यं लक्षणं तथा ॥ ६८ ॥ पूर्वबंधानुगं लिंगं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् ॥ ६९ ॥

देवात्मक यह प्राण है और सर्वदेवमय व्यापक है ॥ ६५ ॥ तथा वासुदेवका नित्य अनुगामी है. एवं विष्णुके वशमें स्थित है. वासुदेवके प्रतिकूल न सुनता है, न देखता है ॥ ६६ ॥ रुद्रइन्द्रआदि देवता प्रतिकूल कार्य करते हैं; कोईभी प्रतिकूल कार्य करै, परंतु सर्वान्तर्यामी प्राण कभी प्रतिकूल काम नहीं करता है ॥ ६७ ॥ इसकारण, पंडितजन इस प्राणको विष्णुका सहायक कहते हैं. इसप्रकार विष्णुभगवान्के माहात्म्य और लक्षणको जानकर ॥ ६८ ॥ जैसे सांप केंचुली छोडता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मानुबंध-

शरीरको त्यागकर नारायणके परम धामको जाता है" ॥ ६९ ॥ यह वाक्य शंखमुनिका सुनकर व्याध बहुत प्रसन्न हुआ और नम्रभावसे फिर शंखमुनिसे पूछने लगा ॥ ७० ॥ कि—" हे ब्रह्मन् ! महानुभाव, जगद्गुरु इस प्राण सर्वेश्वरकी महिमा लोकमें क्यों प्रगट नहीं है ? ॥ ७१ ॥ देवता, मुनि, राजा और महात्माओंकी महिमा लोकमें और पुराणोंमें अनेक प्रकारसे सुननेमें आती है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मेरे आगे आप कहो. सुननेकी मुझको बडी अभिलाषा है. " शंखमुनि बोले—"पूर्वसमयमें प्राण, हरिदेव अनामय

श्रुत्वा शंखोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः प्रश्रयावनतो भूत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिः ॥ ७० ॥ ब्रह्मन् महानुभावस्य प्राणस्य च जगद्गुरोः ॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै ॥ ७१ ॥ देवानां च मुनीनां च भूपानां च महात्मनाम् ॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः ॥ ७२ ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रोतुं कौतुहलं हि मे ॥ शंख उवाच ॥ ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयम् ॥ ७३ ॥ अश्वमेधैर्यष्टुकामो गंगातीरम् ययौ मुदा ॥ हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः ॥ ७४ ॥ अंतर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नाम समाधिगः ॥ हलोत्कृष्टो विनिष्क्रांतः क्रोधादिदमुवाच ह ॥ ७५ ॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम् ॥ अद्यप्रभृति विख्यातिं महिमा भुवनत्रये ॥ ७६ ॥

नारायण भगवान्का ॥ ७३ ॥ अश्वमेध यज्ञद्वारा पूजन करनेके निमित्त प्रसन्नतापूर्वक गंगाजीके तीरपर गया. अनेक मुनियोंसहित हलसे पृथ्वीको शुद्ध करते समय ॥ ७४ ॥ वहां एक वांवी निकली; उसमें एक महात्मा कण्वमुनि समाधि लगाये बैठे थे. हलके द्वारा बाहर निकल आनेपर मुनि क्रोधकरके बोले ॥ ७५ ॥ और प्राणको अपने सामने

देखकर शाप दिया "आजसे तेरी महिमा तीनों भुवनोंसे जाती रहेगी ॥७६॥ और विशेषकरके भूलोकमें तुझको कोई नहीं मानैगा. त्रिलोकीमें तेरे अवतार अप्रख्यात होंगे" ॥ ७७ ॥ जब मुनिने इसप्रकार शाप देके कहा, तब वायुने क्रोधकरके कहा—"तुमने विनाअपराध मुझको शाप दिया है. क्योंकि, हमारा कुछ अपराध नहीं है ॥ ७८ ॥ इसकारण, हे महाबाहो कण्वमुनि ! तुम शीघ्र गुरुद्रोही होओ और संसारमें तुमारी वृत्ति निन्दित होय " ॥ ७९ ॥ तबहीसे इस संसारमें महाप्रभु प्राण लोकमें प्रगट नहीं है.

तव नाप्नोति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥ प्रख्यातास्ते भविष्यंति ह्यवतारा जगत्त्रये ॥ ७७ ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तथाऽब्रवीत् ॥ विनापराधं शप्तोऽसि तितिक्षुर्मां निरागसम् ॥७८॥ तस्मात् कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवाशु च ॥ लोके निंदितवृत्तिश्च भवेत्याह सदा गतिः ॥७९॥ ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन् प्राणस्यास्य महाप्रभो ॥ न ख्यातो महिमा लोके भूलोके तु विशेषतः ॥८०॥ शापात् कण्वो गुरुं जग्ध्वा सूर्यशिष्योऽभवत्तदा ॥ ८१ ॥ इत्येतत् कथितं सर्वं यत् पृष्टं तु त्वयाधुना ॥ यच्छ्रोतव्यमितो व्याध पृच्छ मां मा विचारय ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ ॥

विशेषकरके भूलोकमें प्रसिद्ध नहीं है ॥ ८० ॥ शापसे कण्व अपने गुरुका त्याग करके आगे सूर्यका शिष्य हुआ ॥ ८१ ॥ हे व्याध ! यह जो कुछ तुमने पूछा, सो हमने कहा अब जो कुछ सुननेकी तुमारी इच्छा हो, सो पूछो: विचार मत करो ॥ ८२ ॥ ॥इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

॥ व्याधने कहा– " हे ब्रह्मन् ! जगदीश्वरने ये हजारों करोडों जीव क्यों रचे हैं और इन सनातन जीवोंके कर्म व मार्ग-भिन्न भिन्न क्यों है ? ॥ १ ॥ हे महामते ! इन सबके स्वभाव एकसे क्यों नहीं है ? यह सब जाननेकी मेरी अभिलाषा है; विस्तारसे आप कहिये" ॥ २ ॥ शंखमुनि बोले–"रजोगुणी, सतोगुणी, तमोगुणी इन तीन प्रकारके जीव हैं. रजोगुणी जीव रजोगुणके कर्म करते हैं तथा तमोगुणी तमोगुणके कर्म करते हैं ॥ ३ ॥ सतोगुणी सतोगुणके कर्म करते है. ये यथाक्रम कर्म करते हैं और कभी कभी

व्याध उवाच ॥ ॥ किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः ॥ दृश्यंते भिन्नकर्माणो नानामार्गाः सनातनाः॥१॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते॥ सर्वं तव् पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥२॥ शंख उवाच ॥ ॥ त्रिविधा जीवसंघा हि रजःसत्वतमोगुणाः ॥ राजसा राजसं कर्म तामसा तामसं तथा ॥३॥ सात्विकाः सात्विकं कर्म कुर्वंत्येते यथाक्रमम् ॥ कचिच्च गुणवैषम्यमेतेषां संस्तो भवेत् ॥४॥ तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वन्ते फलभापिनः ॥ क्वचित् सुखं क्वचिद्दुःखं क्वचिच्चोभयमेव च ॥५॥ गुणानामेव वैषम्यात् प्राप्नुवंति नरा इमे ॥ प्रकृतिस्था इमे जीवा बद्धा गतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां व्यत्ययः फलम् ॥ गुणानुगुण्यं भूयस्ते प्रकृतिं यांत्यमी जनाः ॥ ७ ॥

इन गुणोंमें विषमता भी हो जाती है ॥ ४ ॥ उसी ऊंचे नीचे कर्म करके फलके भोगनेवाले होते हैं. कभी सुख, कभी दुःख; कभी अभय पाते हैं ॥ ५ ॥ इस संसारमें ये मनुष्य गुणोंकीही विषमतासे सुख–दुःख आदि पाते हैं और ये प्रकृतिस्थ जीव इन्हीं तीनों गुणोंसे बधे हैं ॥ ६ ॥ गुण और कर्मके अनुसारही कर्मोंका नाश और फल है. इन्हीं

गुणोंके अनुगुणी होकर ये मनुष्य प्रकृतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ प्रकृतिस्थ मनुष्य प्रकृतिक गुणकर्मोंसे अभिमूर्ति हैं और वे प्राकृतिक गतिको प्राप्त होते हैं. तथा प्रकृतिका कभी नाश नहीं होता ॥ ८ ॥ तमोगुणी बहुत दुखी रहते हैं. उनकी वृत्ति सदा तमोगुणी रहती है. संसारमें ये निर्दयी, निष्ठुर और सबसे द्वेष रखनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥ राक्षससे पिशाचतक सब तामसी गतिको प्राप्त होते हैं और रजोगुणवालोंकी वुद्धि मिली होती है. ये पुण्य पाप दोनों करते है ॥१०॥ पुण्यसे स्वर्गगामी होते हैं, पापसे नरकमें

प्रकृतिस्थाः प्राकृतिका गुणकर्माभिमूर्छिताः ॥ गतिं प्राकृतिकीं यांति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥८॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः ॥ निर्दया निष्ठुरा लोके सदा द्वेषैकजीविनः ॥ ९ ॥ राक्षसाद्याः पिशाचांतास्तामसीं यांति वै गतिम् ॥ राजसा मिश्रगतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥ १० ॥ पुण्यात् स्वर्गं प्राप्नुवंति क्वचित् पापाच्च यातनाम् ॥ अत एते मंदभाग्या आवर्तन्ते पुनःपुनः ॥ ११ ॥ धर्मशीला दयावंतः श्रद्धावंतोऽनसूयकाः ॥ सात्विकाः सात्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठंत आसते ॥ १२ ॥ ते चोर्ध्वं यांति विमला गुणापाये महौजसः ॥ अतो विभिन्नकर्माणः पृथग्भावाः पृथग् धियः ॥ १३ ॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः ॥ कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥ १४ ॥

गिरते हैं. इससे ये मंदभागी वारंवार जन्मते हैं ॥ ११ ॥ और धर्मशील, दयालु, श्रद्धावान्, पराई निंदा न करनेवाले, सतोगुणी हैं. इनकी वृत्ति सतोगुणी है ॥ १२ ॥ वे निर्मल गुणवाले. महाओजस्वी स्वर्गलोकको जाते हैं. अतएव भिन्नकर्म, भिन्नभाव और पृथक् वुद्धिवाले हैं ॥ १३ ॥ इन्हींके गुणकर्मानुसार विष्णु महाप्रभु इनसे अपने स्वरूपकी

प्राप्तिके निमित्त कर्म कराते हैं ॥१४॥ पूर्णकामनावाले विष्णुभगवान्को विषमता नहीं है. विष्णुभगवान् उत्पत्ति, पालन और संहार समान भावसे करते हैं ॥ १५ ॥ अपने गुणोंसेही ये सब कर्मोंके फल भोगते हैं. जैसे, बागीचामे उत्पन्न हुये सब वृक्षोंपर मेघ समान भावसे वृष्टि करता है ॥ १६ ॥ जैसे, सब वृक्ष एकही नालीसे सींचे जाते हैं, परंतु प्रकृति सब वृक्षोंकी पृथक् पृथक् होती है. बागीचाके लगानेवालेको कुछ विषमता वा निर्घृणता नहीं है " ॥१७ ॥ व्याधने पूछा—हे मुने ! पूर्णभोगवालोंको मुक्ति कब

विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै न हि ॥ सृष्टिं स्थितिं हृतिं चैव समामेव करोत्ययम् ॥ १५ ॥ स्वगुणादेव ते सर्वे कर्मणः फलभागिनः ॥ आरामोप्तान् यथा सर्वान् समं वर्षयति द्रुमान् ॥ १६ ॥ एककुल्याजला ह्यंग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः ॥ नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथंचन ॥ १७ ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने ॥ सृष्टिकालेऽथवा ह्यंतकाले वा स्थापनस्य च ॥ १८ ॥ क्वचिच्च सृष्टिकालस्य संहारस्यापि वै स्थितेः ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन् ! भगवच्चेष्टितं वद ॥ १९ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ रात्रिश्च तावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥ २० ॥ दश पंच दिनान्याहुः पक्षं मासो द्व्यात्मकः ॥ मासद्वयं ऋतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥ २१ ॥ अयने द्वे वत्सरः स्यात्तादृक् शतसमा यदि ॥ गच्छंति ब्रह्मणो ह्यस्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥ २२ ॥

होती है ? सृष्टिकालमें अथवा प्रलय कालमें वा स्थितिकालमें ॥ १८ ॥ और सृष्टि, स्थिति तथा संहारकालकी मर्यादा कितनी है ? सो हे ब्रह्मन् ! यह विस्तारपूर्वक आप मेरे सामने कहिये " ॥ १९ ॥ यह प्रश्न सुन शंखमुनि बोले—चारहजार युगोंका ब्रह्माका एक दिन कहा है. इतनीही रात्रि होती है. दिनरात मिलकर पूरा दिन होता है ॥ २० ॥ पन्द्राह दिनोका एक पक्ष और तीनऋतुओंका एक अयन कहा है॥२१॥दो अयनोंका एक वर्ष. ऐसे जब सो वर्ष व्यतीत होते हैं तब ब्रह्माकी पूर्ण आयु ब्रह्मकल्प कहा है ऐसा जानना॥२२॥

यही दिनप्रलयकाल है. यह वेदके जाननेवालोंका मत है. प्रलय तीन प्रकारका होता है. पहला मानव प्रलय; वह तव है, जब मनुष्योंका अन्त होता है ॥ २३ ॥ दूसरा दिनप्रलय: जो ब्रह्माके दिनप्रमाणाका होता है. वह दैनप्रलयभी कहाता है. पश्चात् ब्रह्माजीके लयसमयमें जो प्रलय होता है उसको ब्राह्मप्रलय कहते हैं ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीके एक मुहूर्तमें एक मनुका प्रलय होता है. एवं जब चौदह मनुप्रलय हो जाते हैं ॥ २५ ॥ तब एक दैनंदिन प्रलय होता है. उन प्रलयोंकी उतनीही अवधिपर्यन्त

तावान् हि प्रलयः काल इति वेदविदां मतम् ॥ प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥ २३ ॥ दैनंदिने द्वितीयो हि ब्रह्मणो दिवसात्यये ॥ ब्रह्मणोऽथ लयं पश्चाद्ब्राह्मं च प्रलयं विदुः ॥ २४ ॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु मनोस्तु प्रलयं विदुः ॥ प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥ २५ ॥ दैनंदिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिं पुनः ॥ त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वंतरे भवेत् ॥ २६ ॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां क्षयो भवेत् ॥ उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ २७ ॥ मन्वंतरांते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः ॥ दैनंदिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयो भवेत् ॥ २८ ॥ सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यंति साधिपाः ॥ सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुराननने ॥ २९ ॥

स्थिति रहती है. मन्वन्तरप्रलयमें भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका लय हो जाता है॥२६॥उस मन्वतरप्रलयमें चेतन जीवोंहीका नाश होता है, परन्तु लोकोंके स्वरूपका नाश नहीं होता है. पूर्वके समान उन लोकोंकी केवल जलसे पूर्ति हो जाती है ॥ २७ ॥ अनन्तर मन्वन्तरके अंतमें चेतन जीवोंकी उत्पत्ति फिर होती है और हे व्याध ! दैनंदिन प्रलयमें लोक और लोकस्थ सबका क्षय होता है ॥२८॥ विना सत्यलोकके और कोई लोक नहीं रहते हैं. सब नष्ट हो जाते हैं और चेतन अधिभूत जीवोंसहित

सब लोकोंका ब्रह्माजीके शयन करनेपर नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ तत्वाभिमानी देवता और कुछ मुनि शेष रहते हैं और सत्यलोकके शयन करनेवालेभी शेष रहते हैं ॥ ३० ॥ और वे कल्पपर्यन्त निद्रित हो शयन करते रहते हैं. अनन्तर रात्रिके समाप्त होनेपर पूर्वसृष्टिके अनुसार ब्रह्माजी जगत्को रचते हैं ॥ ३१ ॥ ऋषि, देव और पितृलोकोंको तथा वर्णधर्मसहित चारों वर्णोंको पृथक् पृथक् रचते हैं. तब चक्र धारण करनवाले विष्णुभगवान्के दश अवतार होते हैं ॥ ३२ ॥ इसीप्रकार

तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा ॥ शिष्यंति सुप्ताः सर्वेपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ ३० ॥ तिष्ठंति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतींद्रियाः ॥ पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥३१॥ ऋषीन् देवान् पितॄन् लोकान् धर्मान् वर्णान् पृथक् पृथक्॥ पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ३२ ॥ नियमेन भवंत्येते तथान्येऽपि च भूरिशः ॥ देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च गिरां पतेः ॥ ३३ ॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः ॥ भूपाश्च साधवो ये च सिद्धिं प्राप्ताः परं गताः ॥ ३४ ॥ तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तन्नाम्नाश्रुतिसंस्थिताः ॥ ३५ ॥ तत्तद्गोत्रेषु जायंते तत्तत्कर्मरताः सदा ॥ दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः ॥ ३६ ॥

१२ नियमसे अन्यभी बहुतसे देवता, ऋषि, कल्पपर्यंत ब्रह्माजीके द्वारा ॥ ३३ ॥ फिर होते हैं और जो ब्रह्माके संग मुक्तिमें जानेवाले हैं वो ब्रह्मलोकहीमें रहते हैं तथा जो राजा, साधु सिद्धिको प्राप्त हैं और ब्रह्मलोकवासी हैं ॥ ३४ ॥ वे सब सत्यलोकमेही स्थित रहते हैं, यहां नहीं आते हैं. तथा जो उस राशिपर जानेवाले उसी नामसे श्रुतिमें भलीभांति स्थित हैं वे फिर जाते हैं ॥ ३५ ॥ और उन्हीं उन्हीं गोत्रोंमें उन्हीं उन्हीं कर्म करनेवाले जन्म धारण करते हैं और जब कलियुगकी समाप्ति होती है, तब सब

दैत्योंका भी ॥ ३६ ॥ नाश हो जाता है. तब वे सब कलियुगसमेत अपनी गतिको जाकर प्राप्त होते हैं. उनका निरय स्थान होता है और उनकी राशिपर स्थित उनके नामवाले और भी हैं ॥ ३७ ॥ वे अपने कर्मानुसार आगे कर्म करनेके लिये उत्पन्न होते हैं, अब मैं तुमारे आगे सृष्टिकाल तथा मुक्तिकालका वर्णन करता हूं ॥ ३८ ॥ ब्रह्माआदि देवताओंका मुक्तिकाल सावधान मन होकर सुनौ. देवदेव भगवान्‌का निमेषकाल ब्रह्माजीके कल्पके बराबर होता है ॥ ३९ ॥ उस कल्पका अंत होनेपर उस महा-

कलिना सह गच्छंति स्वां गतिं निरयालयाः ॥ तेषां च राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेपि च ॥ ३७ ॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः ॥ सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च ॥ ३८॥ ब्रह्मादीनां च देवानां समाहितमना भव ॥ निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः ॥ ३९ ॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः ॥ निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान् ॥ ४० ॥ सोऽपश्यन् स्वोदरे सर्वान् जीवसंघाननेकशः ॥ सृज्यान् मुक्तानमून् सर्वान् लिंगभंगमुपागतान् ॥ ४१ ॥ सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेपि तमोगा अपि सर्वशः ॥ पूर्वकल्पे लिंगभंगमापन्ना विधिपूर्वकम् ॥ ४२ ॥ मानवांता जीवकोशा जीवन्मुक्ताश्च मुक्तिगाः ॥ पूर्वकल्पे विमुक्ताश्च ब्रह्माद्या मानवांतकाः ॥ ४३ ॥

प्रभु भगवान्‌का उन्मेष ( पलक खोलना ) होता है. निमेषके अंतमें भगवान् नारायणको अपने कुक्षिगत लोकोंके रचनेकी इच्छा होती है ॥ ४० ॥ और अपने उदरमें सब लोकोंको और अनेक जीवसमुदायोंका भगवान् देखते हैं. मनमें कितनेही सृजने योग्य हैं. कितनेही मुक्त हैं. कितनेही ऐसे है, जिनका लिंगदेह छूट गया है ॥४१॥ वे सुप्त हैं. संसारमें स्थित हैं, वे सब तमोगुणसंयुक्त हैं और ऐसेभी हैं, जो विधिपूर्वक पूर्वकल्पमें लिंगभंगको प्राप्त हुये है ॥ ४२ ॥ मानवांत, जीवकोश, जीवन्मुक्त, मुक्तिगामी, पूर्वकल्पमें

विमुक्त ब्रह्माआदि मनुष्यपर्यन्त ॥ ४३ ॥ विष्णुकी कुक्षिमें स्थित होनेपरभी ध्यानावस्थित रहते है. उन्मेषके प्रथम भागमें चतुर्व्यूहात्मक विभु ॥ ४४ ॥ होकर व्यूहमें स्थित षड्गुणवाले वासुदेवसे ब्रह्माको सायुज्यमुक्ति देकर तदनन्तर महाविभु ॥ ४५ ॥ महात्माओंको तत्वज्ञानरूप सायुज्यमुक्ति देकर सारूप्यमुक्ति देते हैं. तथा किन्हीको विभु भगवान् सामीप्यमुक्ति देते हैं ॥ ४६ ॥ तथा अन्य मनुष्योंको देवदेव जनार्दन सालोक्य मुक्ति देकर अनिरुद्धरूपसे सम्पूर्ण स्थित लोकोंको देखते हैं ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नरूपसे जगत् रचे-

ध्यानसंस्था हि तिष्ठंति विष्णुकुक्षिगता अपि ॥ उन्मेषप्रथमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४४ ॥ भूत्वा तु पूर्वषाड्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात् ॥ दत्त्वा तु ब्रह्मणे मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः ॥४५॥ दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम् ॥ सारूप्यं चैव केषांचित् सामीप्यं च तथा विभुः ॥ ४६ ॥ सालोक्यं च तथान्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः ॥ अनिरुद्धवशे सर्वान् स्थितांल्लोकानलोकयत् ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नस्य वशे दत्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे ॥ मायां जयां कृतिं शांतिमुपयेमे स्वयं हरिः ॥ ४८ ॥ चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात् ॥ ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४९ ॥ भिन्नकर्माशयं लोकं पूर्णकामो व्यजीजनत् ॥ उन्मेषांते पुनर्विष्णुर्योगमायां समाश्रितः ॥ ५० ॥

नेका विचार करते हुये स्वयं हरिभगवान् माया, जया, कृति, शांतिके साथ विवाह करते हैं ॥ ४८ ॥ वासुदेवआदि क्रमसे पूर्ण गुणयुक्त चतुर्व्यूह उन माया, जया आदि शक्तिसे युक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णु भगवान् ॥४९॥ कर्म और भिन्नआशयवाले लोकोंको रचते हैं. पूर्णकाम भगवान् नेत्र खोलनेके अन्तमें योगमायाका आश्रय लेकर ॥ ५० ॥

व्यूहगत संकर्षणद्वारा इस चराचरका नाश करते हैं. उस महात्माका यह सब अचिन्तनीय कार्य प्रसिद्ध है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माआदि योगियोंके द्वाराभी यह कार्य अचिन्त्य है. " यह सुन व्याधने पूछा– " हे ब्रह्मन् ! भागवतधर्म कौनसे हैं ? किन धर्मोंसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ? ॥ ५२ ॥ उन धर्मोंके सुननेकी हमारी इच्छा है. सो हे मुने ! आप मेरे सामने कहो. " यह प्रश्न सुनकर शंखमुनि बोले– " जिससे चित्तकी शुद्धि होती है और जिससे सज्जनोंका उपकार होता है ॥ ५३ ॥ उसको सात्विक धर्म

संकर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् ॥ तदेतत् सर्वमाख्यातं कार्यं चिंत्यं महात्मनः ॥ यदाचिंत्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ॥
॥ ५१ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ के च भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसीदति ॥ तानहं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं वद नो मुने ॥ ५२ ॥
शंख उवाच ॥ येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥५३॥ तं विद्धि सात्विकं धर्मं यश्च केनाप्यनिंदितः ॥ श्रुतिस्मृत्युदितो
यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥ यस्तु लोकाविरुद्धोऽपि तं धर्मं सात्विकं विदुः ॥ चतुर्विधा हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥
॥ ५५ ॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधा माताः ॥ ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥ ५६ ॥ तदा वै सा-
त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः ॥ देवतांतरदैवत्याः सकामा राजसा मताः ॥ ५७ ॥

जानो: जो किसीसे निन्दित नहीं है. तथा जो श्रुतिस्मृतिमें कहा है और कामनारहित होता है ॥५४॥ जो लोकसे विरुद्ध नहीं होता है, उस धर्मको सात्विक धर्म जानो. वह धर्म, वर्ण और आश्रमके विभाग करके चार प्रकारका होता है ॥ ५५ ॥ तथा नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन तीन भेदोंसे तीन प्रकारका है. परंतु जो वे सब अपने अपने धर्म विष्णुभगवान्‌को अर्पण किये जावें ॥ ५६ ॥ तब उनको सतोगुणवाले उत्तम भागवत धर्म जानो और जे धर्म कामनासहित अन्य देवताओंको अर्पण किये जाते हैं,

उनको राजसधर्म जानौ ॥ ५७ ॥ तथा यक्ष, राक्षस, पिशाच इनको देव मानकर किये हुये, तथा हिंसात्मक तथा लोकोंमें जो निन्दित धर्म हैं वे सब तामस कहाते हैं ॥ ५८ ॥ जो सतोगुणी पुरुष विष्णुभगवान्के प्यारे सात्विक धर्मोंको करते हैं, वे नित्य धर्म भागवतधर्म कहाते हैं ॥ ५९ ॥ जिनका चित्त सदा विष्णुमें रहता है, जो जिह्वासे विष्णुभगवान्का नाम रटते हैं, जिनके हृदयमें भगवान्के चरण रहते हैं वेही भागवत ( भगवत्संबंधी ) कहाते हैं ॥ ६० ॥ जे सदाचारमें तत्पर रहते हैं, जे सबका उपकार करते हैं औरं जे सदा

यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः ॥ हिंसात्मका निंदिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥ ५८ ॥ सत्वस्थाः सात्विकान् धर्मान् विष्णुप्रीतिकरान् शुभान् ॥ कुर्वंत्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५९ ॥ येषां चित्तं सदा विष्णौ जिव्हायां नाम वै विभोः ॥ पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६० ॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः ॥ सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६१ ॥ येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु ॥ ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६२ ॥ येषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ॥ श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६३ ॥ अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् ॥ श्रवणं सर्वधर्माणां विषयासक्तचेतसाम् ॥ ६४ ॥

ममतारहित रहते हैं, वेही भागवत कहाते हैं ॥ ६१ ॥ जिनका शास्त्र, गुरु, साधु और कर्म इनमें विश्वास है, जे निरंतर विष्णुभक्त हैं, वेही भागवत कहाते हैं ॥ ६२ ॥ जिनको विष्णुभगवान्के प्रिय होनेवाले धर्म सदा सम्मत हैं और श्रुति–स्मृति ओंमें ( वेद और धर्मशास्त्रमें ) जे धर्म कहे हैं, वेही धर्म उत्तम कहे हैं ॥ ६३ ॥ सब देशोंमें विचरना, सब कर्मोंको देखना और सब धर्मों-

को सुनना. परंतु विषयमें आसक्त चित्तवाले ॥ ६४ ॥ इनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकते हैं; जैसे नपुंसकके लिये सुन्दर स्त्री कुछभी आनन्द नहीं करती. सज्जनोंका मन साधुओंके दर्शनसेही द्रवीभूत हो जाता है ॥ ६५ ॥ जैसे, चन्द्रमाकी कौमुदी ( चांदनी ) के संगसे चन्द्रकांत मणि द्रवीभूत हो जाती है. कोई सत्शास्त्रोंके सुननेसे विषयोंकरके चलायमान मनवाले होते हैं ॥ ६६ ॥ सज्जनपुरुष सदा तेजरूप और पापरहित रहते हैं. जैसे, सूर्यकी किरणके संग सूर्यकांत मणि रहती है ॥ ६७ ॥ कामनारहित पुरुषोंसे

अकिंचित्करमेतेषां षंढस्येव वरस्त्रियः ॥ साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥ ६५ ॥ चंद्रस्य कौमुदीसंगाच्चंद्रकांतशिला यथा ॥ क्वचित् सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयेभ्यश्चलं मनः ॥ ६६ ॥ तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपं ह्यकल्मषम् ॥ पद्मबंधोः प्रभासंगात् सूर्यकांतशिला यथा ॥ ६७ ॥ निष्कामैर्हि जनैर्यैस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः ॥ यो विष्णुवल्लभो नित्यं धर्मो भागवतो मतः ॥ ६८ ॥ तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहामुत्र फलप्रदाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥ ६९ ॥ दध्नः सारमिवोद्धृत्य धर्मं वैशाखसंभवम् ॥ रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥ ७० ॥ मार्गेच्छायाविनिर्माणं प्रपादानं च वै तथा ॥ व्यजनैर्वीजनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ॥ ७१ ॥

श्रद्धापूर्वक जे विष्णुप्रिय नित्य धर्म किये जाते हैं, वेही भागवत धर्म हैं॥ ६८॥ इसलोक और परलोकमें सुख देनेवाले बहुतसे धर्म देखे, परंतु विष्णुभगवानको प्रसन्न करनेवाले धर्म सूक्ष्म और सब दुःखोंके दूर करनेवाले होते हैं ॥ ६९ ॥ जैसे, दहीमेंसे साररूप मक्खन निकाल लेते हैं, वैसेही सबके हितकी कामनासे क्षीरसागरमें भगवान्ने लक्ष्मीजीके- प्रति वैशाखधर्मको कहा है ॥ ७० ॥ मार्गमें छाया कराना, प्याऊ लगवाना, तथा पंखासे वायु कराना, योग्य पुरुषोंको दान देना ॥ ७१ ॥

छतरी, जूता, कपूर, गन्ध ( चंदनादि ) पदार्थोंका दान, विभव हो तो बावडी–कुवां–तालावका बनवाना ॥ ७२ ॥ सायंकालमें शर्बत और फूलोंका दान, तांबूलदान पापनाशक गोरसदान सबसे उत्तम है ॥ ७३ ॥ मार्गमें थके हुयेको लवणसंयुक्त छाछका दान, उवटन और थके ब्राह्मणका चरणप्रक्षालन ॥ ७४ ॥ चटाई, कंबल, शय्या इनका दान, एवं गोदान, मधुसहित तिलदान जो पापोंको विनाश करनेवाला है ॥ ७५ ॥ सायंकालमें ईख और ककड़ीका दान, तथा पितरोंके निमित्त

छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगंधयोः ॥ वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥ सायान्हे पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च ॥ तांबूलदानं पापघ्नं गोरसानां विशेषतः ॥ ७३ ॥ लवणान्विततक्रस्य दानं श्रांताय वै पथि ॥ अभ्यंगकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥ ७४ ॥ कटकंबलपर्यंकदानं गोदानमेव च ॥ मधुयुक्तं तिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥ ७५ ॥ सायान्हे चेक्षुदंडानां दानमुर्वारुकस्य च ॥ रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥ ७६ ॥ एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन् द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥ नित्यकर्माणि कृत्वैव मधुसूदनमर्चयेत् ॥ कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥ ७८ ॥ तैलाभ्यंगं वर्जयेच्च कांस्यपात्रे तु भोजनम् ॥ निषिद्धभक्षणं चैव वृथालापं तु वर्जयेत् ॥ ७९ ॥

रसायनका दान ॥ ७६ ॥ ये सब दान, इस माधवप्रिय-वैशाखमासमें विशेष धर्म कहे हैं. प्रातः सूर्योदयकालमें स्नान कर ब्राह्मणके मुखसे धर्म सुने ॥ ७७ ॥ नित्यकर्म करके मधुसूदन भगवान्‌की पूजा करे, वैशाखमाससम्बन्धी कथा मन लगाकर सुने ॥ ७८ ॥ तैलका मर्दन और कांस्यपात्रमें भोजन नहीं करे. निषिद्ध पदार्थ ( अभ-

रूप ) भोजन नहीं करे और वृथा वार्तालाप नहीं करे ॥ ७९ ॥ लौकी, गाजर, लशुन, तिलकुट, कांजी ( सिर्का ), फूट तथा घियातोरई ॥ ८० ॥ पोई, कलिंग ( वटवृक्ष ) सहिजना शाक वर्जित करे. मटर माष, कुलथी, मसूर इनको नहीं खावे ॥ ८१ ॥ वेंगन, कलिंदा, कोदों, चौलाईका शाक, कुसुंभ तथा मूली इनका त्याग करे ॥ ८२ ॥ गूलर, बेलफल तथा लिहसोडाका फल, इस माधवप्रिय ( वैशाख ) मासमें विद्वान् इनको सर्वथा वर्जित करे अर्थात् भूलकरभी इनका सेवन नहीं करे ॥ ८३ ॥ इनका

अलाबुं गृंजनं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् ॥ आरनालं भिस्सटं च घृतकोशातकीं तथा ॥८०॥ उपोदकीं कलिंगं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत् ॥ निष्पावानि कुलित्थानि मसूराणि च वर्जयेत् ॥ ८१ ॥ वृंताकानि कलिंगानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् ॥ तंदुलीयकशाकं च कौसुंभं मूलकं तथा ॥ ८२ ॥ औदुंबरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् ॥ सर्वथा वर्जयेद्विद्वान् मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ ८३ ॥ एतेष्वन्यतमं भुक्त्वा स चांडालो भवेद्ध्रुवम् ॥ तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८४ ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात् प्रीतये मधुघातिनः ॥ एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः ॥ ८५ ॥ मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् ॥ स्वार्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८६ ॥

सेवन करनेसे अवश्यमेव चांडालयोनिमें जन्म प्राप्त होता है; सौवार पशुयोनिमें जाना पडता है. इसमें विचार नहीं करना ॥ ८४ ॥ इसप्रकार मधुसूदन भगवान्‌की प्रीतिके अर्थ वैशाखमासमें व्रत करे. व्रत समाप्त होनेपर विष्णुभगवान्‌की प्रतिमा बनवावे ॥८५॥ फिर मधुसूदनकी प्रतिमाको वस्त्र पहराय दक्षिणासमेत अपने सम्पूर्ण विभवके अनुसार पूजन

करके ब्राह्मणको देवै ॥ ८६ ॥ वैशाखशुक्लपक्ष द्वादशीके दिन दही–भात जलपूर्ण घट, तांबूल, फल और दक्षिणा इनके सह अवश्य देवै ॥ ८७ ॥ अनन्तर जूता छतरीका दान देवै; ब्राह्मणको भोजन करावै. तदनन्तर शीतल जल, दही, अन्न, तांबूल, दक्षिणासहित देवै ॥ ८८ ॥ और यह वचन कहे कि–' मैं धर्मराजकी प्रसन्नताके अर्थ दान करता हूं, इस दानसे यमराज मुझपर प्रसन्न होओ. अपसव्य होकर अपना नामगोत्र और पिताका नाम संकल्पमें उच्चारण कर दान देवै ॥ ८९ ॥ पहले दही और

वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमंजसा ॥ सोदकुंभसतांबूलं सफलं च सदक्षिणम् ॥ ८७ ॥ दद्यादुपानहौ छत्रं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥ शीतलोदकदध्यन्नं सतांबूलं सदक्षिणम् ॥ ८८ ॥ ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः ॥ अपसव्यान् समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः ॥ ८९ ॥ दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ गुरुभ्यश्च तथा दद्यात् पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ॥ ९० ॥ शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् ॥ सदक्षिणं सतांबूलं सभक्ष्यं च फलान्वितम् ॥ ९१ ॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगीषया ॥ इति दत्त्वा यथाशक्त्या गां च दद्यात् कुटुंबिने ॥ ९२ ॥

अन्न पितरोंकी अक्षय तृप्तिके अर्थ देवै; अनन्तर गुरुके निमित्त, फिर विष्णुभगवान्के अर्थ देवै ॥ ९० ॥ शीतल जल, दही, अन्न, कांसेके उत्तम पात्रमें दक्षिणासहित तांबूल और खानेके योग्य फल रखकर देवै ॥ ९१ ॥ और कहे–' हे विष्णो ! मैं वैकुंठकी प्राप्तिके निमित्त ये दान करता हूं.' यह सब यथाशक्ति देकर कुटुम्बी ब्राह्मणके अर्थ गोदा-

न देवे ॥ ९२ ॥ ऐसे वैशाखमासमें सदा दंभरहित व्रत करै, तो वह सब पापोंसे छूटकर अपने सौ कुलोंका उद्धार कर ॥ ९३ ॥ सब प्राणियोंके देखते सूर्यमंडलको पारकर विष्णुके परम धामको जाता है. जो योगियोंकोभी दुर्लभ है " ॥ ९४ ॥ ऐसे श्रुतदेवजीने वैशाखमासके सम्पूर्ण धर्मोंको व्याधके पूछनेपर वर्णन किया. उसी समय शीघ्र सबके देखते २ पृथ्वीपर वह पंचशाख वृक्ष गिर पडा ॥ ९५ ॥ तब उस वृक्षकी खोहमेंसे एक बडा भयंकर सांप तुरंत पापरूप शरीरको छोडकर हाथ जोड शिर झुकाय वहां बैठ

एवं मासव्रतं कुर्यात् सदा दंभविवर्जितः ॥ स सर्वैः पातकैर्हीनः कुलमुद्धृत्य वै शतम् ॥ ९३ ॥ पश्यतामेव भूतानां भित्त्वा वै सूर्यमंडलम् ॥ याति विष्णोःपरं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥ ९४ ॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान् विष्णवादिष्टानतिमहितरान् व्याधपृष्टान् समस्तान् ॥ वृक्षः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पंचशाखी द्रुमोऽयम् ॥९५॥ वृक्षात्तस्मात् कोटरे संस्थितो हि व्यालःकश्चिद्दीर्घदेही करालः ॥ हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्रांजलिर्नम्रमूर्धा ॥९६॥ ॥इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शंखो व्याधसमन्वितः ॥ को भवानिति तं प्राह दशेषा च कुतस्तव ? ॥ १ ॥ केन वा कर्मणा सौम्य मतिस्तव शुभावहा ॥ अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥

गया ॥ ९६ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रुतदेवजी बोले–" तब तो शंखमुनि व्याधसहित विस्मित होकर शंखमुनिने पूछा कि–' तुम कौन हो और तुमारी यह दशा कैसे हुई ? ॥ १ ॥ हे सौम्य ! किस कर्मसे तुमारी उत्तम मति हुई है ? अकस्मात् तुमारी मुक्ति

कैसे होगई सो विस्तारपूर्वक हमारे आगे कहो ॥ २ ॥ शंखमुनिने जब इसप्रकार पूछा, तब वह पृथिवीपर दंडवत् गिर पडा. फिर शिर झुकाय हाथ जोड यह वचन बोला ॥ ३ ॥ " पूर्वसमय में प्रयागराजमें एक ब्राह्मण बहुत बात करनेवाला था. रूपयौवनसम्पन्न विद्याके मदसे अहंकारयुक्त था ॥ ४ ॥ धनवान् व बहुपुत्रवान् होनेसे सदैव अहंकारसे दूषित, कुसीदमुनिका पुत्र रोचननामसे मैं विख्यात रहा ॥ ५ ॥ आसन, शयन, निद्रा, व्यवाय, अक्षपरिक्रिया, लोकवार्ता, व्याज लेना यही मेरा व्यापार था ॥ ६ ॥

शंखेनैवं तदा पृष्टो दंडवत् पतितो भुवि ॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित् प्रयागे बहुभाषकः ॥
रूपयौवनसंपन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥ ४ ॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाहंकारदूषितः ॥ कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥ ५ ॥
आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रिया ॥ लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापरास्ते ममाभवन् ॥ ६ ॥ तंतुमात्राणि कर्माणि लोकनिंदा-
विशंकितः ॥ सदंभश्च सदा क्रूरो न श्रद्धा मे कदाचन ॥ ७ ॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियान् कालो गतोऽभवत् ॥ तदा वैशाखमासेऽस्मिन्
जयंतो नाम वै द्विजः ॥ ८ ॥ श्रावयामास तन्मास-धर्मान् भागवतप्रियान् ॥ तत्क्षेत्रवासिनां पुण्य-कर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥

लोकनिंदासे मैं निश्शंक, दंभी, सदा क्रूरस्वभाववाला हो गया. किसी बातमें मेरी श्रद्धा नहीं रही ॥ ७ ॥ मुझ दुर्मति दुष्टका बहुत समय इसप्रकार व्यतीत हुआ. तब इस वैशाखमासमें जयन्त नाम ब्राह्मण ॥ ८ ॥ भगवान्के प्यारे वैशाखधर्मोंको सुना रहा था. उस क्षेत्रके रहनेवाले पुण्यात्मा द्विज ॥ ९ ॥

स्त्री, पुरुष, हजारों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, प्रातःसमय स्नान कर अविनाशी मधुसूदन भगवान्‌की पूजा करके ॥ १० ॥ निरन्तर कथा सुने और जयंत कथा वांचे. मन पवित्रतापूर्वक बैठे मौन साधे, वासुदेवकी कथामें मन लगाये ॥ ११ ॥ वैशाखधर्मके प्रेमी, दंभ और आलस्य रहित कथा सुन रहे. वहां उस समयमें मैंभी कौतुक देखनेकी इच्छासे चला गया ॥ १२ ॥ शिरपर मेरे पगडी बंधी रही, मैंने वहां बैठे हुये जनोंको नमस्कार किया. मुखमें पान चवाये था, कंचुक

नार्यो नराः क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः ॥ प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधूसूदनमव्ययम् ॥ १० ॥ कथां शृण्वंति सततं जयंतेन समीरिताम् ॥ शुचिर्भूत्वा मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥ ११ ॥ वैशाखधर्मनिरता दंभालस्यविवर्जिताः ॥ तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥ १२ ॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽर्पितो जने ॥ तांबूलं च मुखे कृत्वा कंचुकं च मया धृतम् ॥ ॥ १३ ॥ कथाविक्षेपमकरवं लोकवार्ताभिरंजसा ॥ सर्वेषां चित्तचांचल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥ १४ ॥ क्वचिद्वासः प्रसार्याहं क्वचिन्निंदन् क्वचिद्धसन् ॥ एवं कालो मया नीतः कथा यावत् समाप्यते ॥ १५ ॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्टधीः ॥ सन्निपातेन पंचत्वं प्राप्तोऽहं च परे दिने ॥ १६ ॥ यमदूतैश्च नीतोऽहं नरके च भयंकरे ॥ घोरां च यातनां भुक्त्वा मन्वंतानि चतुर्दश ॥ १७ ॥

पहरे हुये था ॥ १३ ॥ सभामें जातेही मैं लोकवार्ता करने लगा, जिससे कथामें विघ्न पड गया. मेरी बातचीतसे श्रोताओंका मन चलायमान हो गया ॥ १४ ॥ कभी मैं वस्त्र फैलाता था, कभी निंदा करने लगता; कभी हंसता. इसी प्रकार कथासमाप्तिपर्यंत समय विताया ॥ १५ ॥ अनन्तर उसी दोषसे मेरी बुद्धि नष्ट हो गई. आयु क्षीण होने लगी. दूसरे दिन सन्निपातसे व्याकुल होकर मैं मरगया ॥ १६ ॥ यमके दूत मुझको नरकमें ले गये. वहां चौदह

१ पाठ " नरकमध्ये पूर्णे निरये च इत्यहम् ॥ प्राप्य भुक्त्वा यातनां च मन्वंतानि चतुर्दश " ॥ १७ ॥ एतदपि पाठो दृश्यते पुस्तकेषु ।

मन्वन्तरपर्यन्त मैं नरकपीडा भोगकर ॥ १७ ॥ चौरासी लाख योनियोंमें क्रमसे उत्पन्न हुआ. अब मैं इस समय इस वृक्षमें निवास करता था ॥ १८ ॥ यह वृक्ष दशयोजन लम्बा चौडा और सौ योजन ऊँचा है. इसकी सात योजनोंकी एक खोहमें मैं क्रूरसर्पकी तामस ॥ १९ ॥ योनि पाय वास करता हूं. हे विप्रर्षे ! यह मेरे पूर्वकर्मोंका फल है. ऐसे इस खोहमें रहते निराहार दशहजार वर्ष व्यतीत हुये हैं ॥ २० ॥ दैवयोगसे आपके मुखारविंदसे कही हुई कथामृतको चक्षुगोलकद्वारा सुनकर मेरे सब पाप

युगेष्वथ च लक्षेषु तथा चतुरशीतिभिः ॥ क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं चावसं द्रुमे ॥ १८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते ॥ व्यालोऽहं तामस क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥१९॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा ॥ अयुतं च समायातं निराहारस्य कोटरे ॥ २० ॥ दैवात्त्वं मुखांभोजसमीरितकथामृतम् ॥ श्रुत्वा च चक्षुश्रुल्कैः सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥ २१ ॥ व्यालयोनिं विसृज्याहं दिव्यरूपधरः पुमान् ॥ प्रांजलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥२२॥ कस्मिन् जन्मनि त्वं बंधुर्न जाने मुनिसत्तम ! ॥ न मयोपकृतं क्वापि सानुबंधः कुतः सताम् ? ॥ २३ ॥

दूर हो गये. हे मुने ! ॥ २१ ॥ अब सांपयोनि छोडकर मैं दिव्य पुरुषरूप धारण कर हाथ जोड, शिर झुकाय आपकी शरणमें आकर प्राप्त हुआ हूं ॥ २२ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैं नहीं जानता कि किस जन्ममें आप मेरे बन्धु हुये हो. मैंने कभी किसीका उपकार नहीं किया. फिर सत्पुरुषोंका सत्संग कैसे प्राप्त हो गया ? ॥ २३ ॥

समानचित्तवाले और सबपर दया करनेवाले, परोपकारकी प्रकृतिवाले, साधुजनोंकी मति कभी अन्यथा नहीं होती है ॥ २४ ॥ आज आपने मुझपर वडी कृपा करी. जैसे धर्ममें मेरी मति होवै और जैसे मेरी सुगति होवै तथा जैसे विष्णुभगवान्में प्रीति होवै ॥ २५ ॥ तथा चक्रधारी विष्णुभगवान्की कभी विस्मृति न होवै और साधुमहात्माओंकी संगति सदा बनी रहै ॥ २६ ॥ कभी मुझसे अधर्म नहीं होवै- अहंकार और मदसे युक्त मैं नहीं रहूं, मैं सदा दरिद्रीही बना रहूं, जो दरिद्र धनके मदसे अंधे

साधूनां समचित्तानां सदा भूतदयावताम् ॥ परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथा मतिः ॥ २४ ॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् ॥ यथा च सुगतिर्भूयाद्यथा विष्णौ रतिर्भवेत् ॥ २५ ॥ न भूयाद्विस्मृतिः क्वापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ महतां साधुवृत्तानां सद्गतिश्च सदा भवेत् ॥ २६ ॥ नाधर्मः क्वापि मे भूयान्नाहंकारो गदान्वितः ॥ दारिद्र्यमेव मे भूयान्मदांधानां यदंजनम् ॥ २७॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ प्रांजलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥ २८ ॥ शंखो दोर्भ्यां समुत्थाप्य पूर्णप्रेमपरिप्लुतः ॥ पस्पर्श पाणिना चांगं शंतमेन गताध्वसः ॥ २९ ॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन् दिव्यरूपधरे द्विजे ॥ प्राह तं कृपयाविष्टो भाविवृत्तान्तमंजसा ॥ ३० ॥

लोगोंका अंजनरूप है " ॥ २७ ॥ इसप्रकार शंखमुनिकी अनेक प्रकारसे स्तुति कर वारंवार प्रणाम कर हाथ जोड शिर झुकाय मुनिके आगे चुपचाप खडा रहा ॥ २८ ॥ तब शंखमुनिने प्रेमसे पूर्ण हो, उसको दोनों हाथोंसे उठाकर हाथोंसे स्पर्श किया, जिससे उसके सब पाप दूर हो गये ॥ २९ ॥ और उस दिव्यरूपधारी ब्राह्मणपर

कृपा करके भावी वृत्तान्त कहने लगे ॥ ३० ॥ हे द्विज ! वैशाखमासमाहात्म्य और हरिभगवान्का माहात्म्य सुननेसे तुमारे सब पाप दूर हो गये हैं ॥ ३१ ॥ तुम क्रमसे अतिवाहिक लोकोंको जाकर फिर पृथ्वीपर दशार्ण देशमें जाकर ब्राह्मणके घरमें जन्म पाओगे ॥ ३२ ॥ वेदशर्मानामसे तुम विख्यात होगें और सब विद्याओंमें विशारद होंगे. वहां तुमारी बहुतही जातिस्मृति होगी ॥ ३३ ॥ इस स्मृतिके अनुबन्धसे तुम सब इच्छाओंको छोडकर वैशाखोक्त हरिप्रिय धर्मोंको करोगे ॥ ३४ ॥

द्विज ते मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि ॥ माहात्म्यश्रवणात् सद्यो ध्वस्तनष्टाखिलाशुभः ॥ ३१ ॥ अतिवाहिकलोकांश्च क्रमाद्गत्वा पुनर्भुवि ॥ दशार्णे विषये पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ वेदशर्मेति विख्यातः सर्वविद्याविशारदः ॥ तत्र ते भविता जातिस्मृतिरात्यंतिकी शुभा ॥ ३३ ॥ तथा स्मृतानुबंधस्त्वं त्यक्तसर्वैषणः शुभः ॥ करोषि सकलान् धर्मान् वैशाखोक्तान् हरिप्रियान् ॥ ३४ ॥ निर्द्वन्द्वो निःस्पृहोऽसंगो गुरुभक्तो जितेंद्रियः ॥ सदा विष्णुकथालापो भविता तत्र जन्मनि ॥ ३५ ॥ ततः सिद्धिं सम्यगाप्य विध्वस्ताखिलबंधनः ॥ प्राप्नोषि परमं धाम योगैरपि दुरासदम् ॥ ३६ ॥ मा भैषीः पुत्र ! भद्रं ते भविता मत्प्रसादतः ॥ हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात् कामादथापि वा ॥ ३७ ॥

निर्द्वन्द्व, निस्पृह, निःसंग, गुरुभक्त और जितेन्द्रिय रहकर उस जन्ममें तुम सदा विष्णुभगवान्की कथाके आलापमें रहोगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर सिद्धिको प्राप्त होकर सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूट परम धामको प्राप्त होंगे जो योगियोंकोभी दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! भय मत करो; अब हमारी प्रसन्नतासे तुमारा कल्याण ( भला ) होगा. हंसीसे

भयसे तथा क्रोधसे, द्वेषसे अथवा कामसे ॥ ३७ ॥ वा स्नेहसे एक वारभी पापहारी भगवान्का नाम उच्चारण करे, तो विष्णुनामके प्रतापसे पापीभी निर्मल होके विष्णुलोकको चले जाते हैं ॥ ३८ ॥ फिर जो श्रद्धापूर्वक क्रोधको जीत जितेन्द्रिय और दयावान् होकर हरिकथा सुनते हैं, उनका तो कहनाही क्या है ? हे द्विजोत्तम ! वे विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ३९ ॥ कोई केवल भक्तिकरकेही कथालापमें तत्पर रहते हैं और सब धर्मोंको त्यागकर विष्णुके परम पदको जाते हैं ॥४०॥ तथा जो कोई द्वेषसे अथवा

स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च ॥ पापिष्ठा अपि गच्छंति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥ ३८ ॥ किमुत श्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेंद्रियाः ॥ दयावंतः कथां श्रुत्वा गच्छंतीति द्विजोत्तम ! ॥ ३९ ॥ केचित् केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः ॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि यांति विष्णोः परं पदम् ॥ ४० ॥ द्वेषादिना च भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते ॥ सोपि याति परं धाम पूतनेवासुहारिणी ॥ ॥ ४१ ॥ महद्भिः संगतो नित्यं वाग्विसर्गस्तदाश्रयः ॥ मुमुक्षुना च कर्तव्यः स विधिः श्रुतिचोदितः ॥ ४२ ॥ सवाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि शृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ४३ ॥ यः कष्टसेवां च न कांक्षते विभुनं वा धनं भूरि न रूपयौवने ॥ स्मृतः सकृद्वांछति धाम भास्करं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ ४४ ॥

भक्तिसे विष्णुकी उपासना करते हैं, वे परम धामको जाते हैं; जैसे, प्राण हरनेवाली पूतना मोक्षको प्राप्त हो गई ॥ ४१ ॥ प्रतिदिन महात्माओंका संग और वार्तालाप तथा उनका आश्रय मुमुक्षुओंको सदा कर्तव्य है: यही विधि वेदमें कही है ॥ ४२ ॥ महात्माओंके संग वार्तालाप करनेसे सब पाप दूर हो जाते है. भगवावान्के भिन्नभिन्न यशरूपके अंकित जो अनेक नाम हैं: उन्हीं नामोंको महात्मा साधु जन सुनते हैं, गान करते हैं और मनन करते हैं ॥ ४३ ॥ इस प्रकारकी जो भगवान्की

सेवा है, इसमें न कष्ट उठानेकी आवश्यकता है; न बहुत धनके खर्चेकी आवश्यकता है. न रूपयौवनसे भगवान् प्रसन्न होते हैं. भगवान्के स्मरणमात्रसे प्रकाशवान् धाम प्राप्त होता है; उस दयालु भगवान्की शरणमें हम जाते हैं ॥ ४४ ॥ उस अनामय नारायणकीही शरणमें जाओ; जो भक्तवत्सल, केवल एकाग्र अंतःकरणसेहि जानने योग्य और दयानिधि है ॥ ४५ ॥ हे महामते ! इन सब वैशाखोक्त धर्मोंको करो. इनके करनेसे जगन्नाथ प्रसन्न होकर सब प्रकारसे तुमारा मंगल करेंगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार कहकर मुनि चुप हो गये. तब व्याधको देख विस्मित हो वह दिव्य पुरुष फिर मुनीश्वरसे बोला ॥ ४७ ॥ दिव्य पुरुषने कहा–" मै धन्य हूं. हे शंखमुने आप दयालुने मेरे ऊपर

तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम् ॥ भक्तवत्सलमव्यग्रचेतोगम्यं दयानिधिम् ॥ ४५ ॥ कुरु सर्वानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तान् महामते ॥ तेन तुष्टो जगन्नाथः शर्म ते च विधास्यति ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वा विरामाथ व्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः ॥ स दिव्यः पुरुषः प्राह पुनस्तं मुनिपुंगवम् ॥ ४७ ॥ दिव्यपुरुष उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोस्मि त्वया शंख दयालुना ॥ दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव परां गतिम् ॥ ४८ ॥ इति तं च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ ॥ ततः सायमभूद्राजन् ! शंखो व्याधेन तोषितः ॥ ४९ ॥ संध्यां सायंतनीं कृत्वा रात्रिशेषं निनाय च ॥ नानाख्यानैश्च भूपानां देवानां च महात्मनाम् ॥ ५० ॥ लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्टिभिरेव च ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥ ५१ ॥

बडा अनुग्रह किया. आपकी कृपासे मेरी दुष्ट योनि जाती रही और उत्तम गति प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥ इसप्रकार परिक्रमा दे आज्ञा लेके स्वर्गलोकको चला गया. तदनन्तर सायंकाल हो गया. हे राजन् ! शंखमुनि व्याधसे प्रसन्न हो ॥ ४९ ॥ सायंकालकी संध्या कर राजा, देवता और महात्मा इनके अनेक इतिहासों करके रात्रिशेष विताय ॥ ५० ॥ विष्णुभगवान्के अवतारोंकी देखी और सुनी लीलासम्बन्धी कथा सुनाय ब्राह्ममुहूर्तमें उठ चरण धोय मौन साध ॥ ५१ ॥

तारक ब्रह्मका ध्यान कर शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर सूर्योदयसे पहले स्नान कर ॥ ५२ ॥ सन्ध्याआदि नित्य कर्म तथा पितरोंका तर्पण करके प्रसन्न-चित्तसे व्याधको बुलाय उसके शिरपर जल छिडक और कृपादृष्टिसे उसको देखकर ॥ ५३ ॥ वेदसेभी अधिक उत्तमफलदायक 'राम' येह दो अक्षर दिये. विष्णुका एक एक नाम सब वेदोंसे अधिक शुभफलदायक है ॥ ५४ ॥ ऐसे अनन्त नामोंसे अधिक विष्णु भगवान्के सहस्र नाम हैं. उन हजार नामोंसे अधिक रामनाम

ध्यायंश्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् ॥ वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक् च भगोदयात् ॥ ५२ ॥ कृत्वा संध्यादिकं कर्म तथा संतर्प्य चाखिलान् ॥ व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥ ५३ ॥ रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम् ॥ विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥ ५४ ॥ तेभ्यश्चानंतनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम् ॥ तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम् ॥ ५५ ॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरंतरम् ॥ धर्मानेतान् कुरु व्याध यावदामरणांतिकम् ॥ ५६ ॥ ततस्ते भविता जन्म वाल्मीकस्य ऋषेः कुले ॥ वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥ ५७ ॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥ व्याधोपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

है ॥ ५५ ॥ इससे हे व्याध ! तुम निरन्तर रामनामका जप करो और हे व्याध ! मरणपर्यन्त अर्थात् जबतक जियों तबतक इन वैशाखधर्मोंको करते रहो ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तुमारा जन्म वाल्मीकऋषिके कुलमें हो और वाल्मीक यह नाम पृथ्वीपर प्रसिद्ध हो ॥ ५७ ॥ ऐसे उस व्याधको समझाकर आप दक्षिण दिशाको

चले गये. व्याधभी मुनिकी परिक्रमा कर वारंवार प्रणाम कर ॥ ५८ ॥ कुछ दूरतक पीछे चला गया. फिर मुनिके विरहसे आतुर हो, रुदन करने लगा और जबतक नेत्रोंसे दिखाई दिये, तबतक मुनिकी चालको देखता रहा ॥ ५९ ॥ फिर बडी कठिनतासे रुका और शंखमुनिका अपने मनमें ध्यान करता हुआ, वनको निर्मल कर मार्गमें प्याऊ लगादिया ॥ ६० ॥ इन वैशाखोक्त धर्मोंको अतियोग्यताके साथ करता रहा और वनके कैथ, कटहर, जामुन, आम आदि फलोंसे ॥ ६१ ॥

किंचिद्दूरानुगो भूत्वा स रुदन् विरहातुरः ॥ यावद्दृष्टिपथं तावत् पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥५९॥ पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिंतयन् ॥ वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥ ६० ॥ अतियोग्यानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तांश्चकार ह ॥ वन्यैः कपित्थपनसै-र्जम्बुचूतादिभिः फलैः ॥ ६१ ॥ मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं पर्यकल्पयत् ॥ उपानद्भिश्चंदनैश्च छत्रैश्च व्यजनैरपि ॥ ६२ ॥ वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित् क्वचित् ॥ आजहार च पांथानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा ॥ ६३ ॥ प्रातः स्नात्वा दिवा रात्रं जपन् रामेति वै मनुम् ॥ व्याधजन्मनि नायासौ वाल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥ ६४ ॥ कृणुर्नाममुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे ॥ तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ ६५ ॥

थके हुये पथिक जनोंकी सेवा ( आहार आदि ) शुश्रूषा करने लगा और जूता, चन्दन, छतरी, पंखा इन पदार्थोंके दानसे भी प्रसन्न किया ॥ ६२ ॥ कहीं २ वालूके बिछौना और छाया आदिसे पसीना आये हुये पथिक जनोंकी थकावटको दूर करने लगा ॥ ६३ ॥ प्रातःसमय स्नान कर दिनरात भगवान्के नामका जप करता हुआ, व्याधके जन्मको पूरा करके वल्मीकके घर जन्म लेके उसका पुत्र हुआ ॥ ६४ ॥ उसी सरोवरमें कोई कृणु नाम मुनि कठिन तप कर रहे थे. बाहरके सब काम ऋषिने त्याग

लिये थे ॥६५॥ मुनिके शरीरपर बहुत समय बीत जानेके कारण बांबी बनगई थी. इसीसे मुनिवरको वाल्मीक कहने लगे ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! फिर तपके अन्तमें जब कुण्डलोंके कानमें स्त्रियोंके मधुर शब्द सुनाई देने लगे, तब मुनिका मन चलायमान हुआ ॥ ६७ ॥ और एक भील जातिकी स्त्रीको लाकर उसमें एक पुत्र उत्पन्न किया, जो भुवनोंमें महायशस्वी वाल्मीकि नामसे विख्यात हुआ ॥ ६८ ॥ जिस मुनिने अपने प्रबन्धसे मनोहर छन्दमें दिव्य रामकथा संसारमें प्रसिद्ध करी; जो रामकथा सब कर्म-

वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा ॥ वाल्मीक इति तं प्राहुस्ततो वै मुनिपुंगवम् ॥ ६६ ॥ पश्चात्तपोविरामांते कुणौ स्मृतिपथं गते ॥ स्त्रियो वै स्मरता राजन् स्खलितं चेंद्रियं मुनेः ॥ ६७ ॥ जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः ॥ वाल्मीकिरिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ॥ ६८ ॥ यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः प्रबंधैर्मनोहरैः ॥ लोके प्रख्यापयामास कर्मबंधनिकृंतनीम् ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूप लघ्वपि भूरिदम् ॥ व्याधोप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥ ७० ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैथिल उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्थितयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके ॥ कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः ॥ १ ॥

बन्धनोंको काटनेवाली है ॥ ६९ ॥ श्रुतदेवजी बोले-" हे राजन् ! वैशाखके माहात्म्यको देखो कि थोडे दानसे भी बहुत फल प्राप्त होता है. व्याध होनेपरभी केवल जूतेका जोडा देनेसेही दुर्लभ ऋषिपदवीको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ जो इस पापनाशक रोमहर्षण आख्यानको सुनता और सुनाता है, उसका जन्म फिर इस संसारमें नहीं होता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ मैथिल राजाने पूछा-" हे ब्रह्मन् ! वैशाख-

मासमें कौन तिथियां अधिक पुण्य देनेवाली हैं? उनमे कौन कौन दान देनेसे विशेषतासे शुभ फल प्राप्त होता हैं ॥ १ ॥ वे लोकमें किसने प्रसिद्ध करी है? यह विस्तरपूर्वक आप कहिये. " यह सुन श्रुतदेवजी बोले–" वैशाखमें मेषके सूर्य होनेपर तीसौ तिथियां पुण्य देनेवाली है ॥ २ ॥ एक एक तिथिमें पुण्य करनेसे कोटिकोटिगुणा फल मिलता है. सब दानोंके करनेसे जो पुण्य होता है, सब तीर्थोंमें जानेसे जो फल प्राप्त होता है ॥३॥ वह फल वैशाखके एक एक तिथिमें स्नान, दान, तप, होम, देवपूजन,

कैः प्रख्याताश्चा वै लोके एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ त्रिंशत्तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवो ॥ २ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ सर्वदानेषु यत् पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत् फलम् ॥ ३ ॥ तत् फलं समवाप्नोति ह्येकैकस्यां जलाप्लुतः ॥ स्नानं दानं तपो होमो देवतार्चनसत्क्रियाः ॥ ४ ॥ कथायाः श्रवणं चैव सद्योमुक्तिविधायकम् ॥ रोगाद्युपहतो यस्तु दरिद्रेणापि पीडितः ॥ ५ ॥ श्रुत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥ ६ ॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्चात्महा स्मृतः ॥ जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥ ७ ॥ माधवो मनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः ॥ साधवश्च दयावंतः को न सेवेत माधवम् ॥ ८ ॥

सत्कर्म इनके करनेसे होता है ॥ ४ ॥ और कथाके सुननेसे शीघ्र मुक्ति प्राप्त होती है, तथा जो रोगआदिसे युक्त हो वा दरिद्रसे पीडित हो ॥५॥ वह मनुष्य इस पवित्र कथाक सुनकर कृतकृत्य हो जाता है और जो विना स्नान दान किये इन शुभ तिथियोंको व्यतीत करता है ॥ ६ ॥ वह गोघाती, कृतघ्न, पितृघाती और आत्मघाती होता है. क्यों कि, जलाशय अपने आधीन हैं और शरीरभी अपने आधीन है ॥ ७ ॥ माधव भगवान् मनसे सेवा करनेके योग्य है; यह काल उत्तम गुणवाला है और साधुजन दयावान्

होते हैं. तो ऐसे समयमें कौन माधवकी सेवा न करे ? अवश्य माधवभगवान्‌की सेवा ऐसे अवसरमें करनी चाहिये ॥ ८ ॥ दरिद्री, धनी, लंगडा, अंधा, नपुंसक, विधवा स्त्री तथा पुरुष इनकरके ॥९॥ और कुमार ( बालक ), युवा, वृद्ध, रोगसे पीडित सबहीको हे राजन् ! वैशाखमासके धर्म अतीव सुखसाध्य हैं ॥१०॥ वैशाखमास आनेपर इन शुभ-धर्मोंको करो. ऐसे अवसरको पाय धर्मोंकेविषे कौन यत्न नहीं करे ? इससे शुभ और धर्म नहीं हैं ॥११॥ जो नराधम इन अति सुलभ धर्मोंको नहीं करता है, उसको सहजही



दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पंगुभिश्चांधकैस्तथा ॥ षंढैश्च विधवाभिश्च नारीभिश्च नरैस्तथा ॥ ९ ॥ कुमारयुववृद्धैश्च रोगार्तैरपि
भूमिप ! ॥ अतीव सुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥ १० ॥ मासमेनमनुप्राप्य धर्मान् कुरु इमान् शुभान् ॥ को न यत्नं
च कुरुते तस्मात् कोन्वपरः शुभः ॥ ११ ॥ योऽतीव सुलभान् धर्मान्न करोति नराधमः ॥ तस्यैव सुलभा लोका नरका नात्र
संशयः ॥ १२ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि तस्मिन् मासे नृपोत्तम ॥ तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥ १३ ॥
चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ पापघ्नी पितृदैवत्या गया कोटिफलप्रदा ॥ १४ ॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा
पुरातनी ॥ नरकं पितॄनुद्दिश्य सावर्णौ शासति क्षितिम् ॥ १५ ॥

नरक मिलनेमें सन्देह नहीं है ॥ १२॥ हे नृपोत्तम ! अब मैं इस मासमें उस पापनाशिनी तिथिको वर्णन करता हूं. जैसे, दहीमेंसे साररूप माखन निकाल लिया जाता है, वैसेही उत्तम फल देनेवाली तिथिको कहता हूं ॥ १३॥ चैत्रमासमें मेषराशिपर सूर्य स्थित हो, तब महापुण्या जो अमावास्या वह सब पापोंका नाश करनेवाली है. कोटि गया करनेके फलको देनी है ॥१४॥ यह पितरोंकी एक पुरानी गाथा सुनी जाती है. पृथ्वीपर जब सावर्णि मनुका राज्य था, तबकी नरक और पितरोंके संबंधकी यह पवित्र कथा है ॥१५॥

तीसवें कलियुगके अन्तमें जब सब धर्म नष्ट हो गये, उस समय आनर्त देशमें धर्मवर्ण नामवाला एक ब्राह्मण था ॥ १६ ॥ उस मुनिने घोर कलियुगमें मनुष्योंको पापसे युक्त देखा. उसी कलियुगके पहले चरणमें जब मनुष्य वर्णधर्मसे रहित हो गये ॥ १७ ॥ तब एकदिन यह मुनिजी महात्मा मुनियोंके सत्रयज्ञके दर्शन करनेको पुष्कर क्षेत्रमें आकर प्राप्त हुये. अनेक मौनधारी मुनि सत्रयज्ञ कर रहे थे ॥१८॥ वहां ऋषि लोग शास्त्रविहित पुण्यकथाओंको कह रहे थे, उनमेंसे कोई महान् महान् व्रत धारण करने वाले मुनि कलियुगकी

त्रिंशत्कलियुगस्यांते सर्वधर्मविवर्जिते ॥ आनर्ते तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा कलियुगे घोरे जनान् पापरतान् मुनिः ॥ तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते ॥ १७ ॥ स कदाचित् सत्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् ॥ अगमत् पुष्करेक्षेत्रे कुर्वतां मौनधारिणाम् ॥ १८ ॥ तत्र चासन् पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः ॥ तत्र केचित् कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥ १९ ॥ कृते यद्वत्सराद् साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ॥ त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥ २० ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ॥ अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥ २१ ॥ दयापुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते ॥ दयादानं च कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम् ॥ २२ ॥

प्रशंसा करने लगे ॥ १९ ॥ कि सतयुगमें वर्षभर पुण्य करनेसे माधव भगवान् प्रसन्न होते हैं. त्रेतामें एक मासभरमें, द्वापरमें एक पक्षभरमें माधवभगवान् प्रसन्न होते हैं ॥२०॥ हे राजन्! उससे दशगुणा पुण्य कलियुगमें विष्णुके स्मरणसे होता है. बहुत थोडा किया हुआभी पुण्य कलियुगमें करोड गुणा फल देता है ॥२१॥ जो दया और पुण्य इनसे हीन और दान-

धर्मसे रहित हैं, वे दयादान न करें. परन्तु केवल हरिका नाम एक एकवार उच्चारण करें ॥२२॥ जो अकालमें अन्नदान करता है, वह वैकुंठको जाकर प्राप्त होता है. जब यह प्रसंग हो रहा था, उसीसमय वहां नारदमुनि आकर प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ और एक हाथसे शिश्न, एक हाथसे जिह्वाको पकडकर मुनिवर नारदजी हंसते हुये उन्मत्तके समान वहां नाचने लगे ॥ २४ ॥ तब उस सभाके लोग बोले—"हे नारदमुने ! यह क्या चलाया है ?" तब बुद्धिवान् नारदजी हंसते और नाचते हुये उन सब सभ्योंके प्रति बोले ॥२५॥

स एव चोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षेचान्नदस्तथा ॥ एतत्प्रसंगावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥ २३ ॥ करेणैकेन शिश्नं च जिह्वां चैकेन वै हसन् ॥ प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः किमेतदिति नारद ! ॥ प्रत्युवाच स तान् सर्वान्नृत्यं कुर्वन् हसन् सुधीः ॥ २५ ॥ संतोषाद्यदिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः ॥ सिद्धा वयं न संदेहः पुण्योऽयं कलिरागतः ॥ २६ ॥ तत् सत्यं न च संदेहो बहु स्वल्पेन साध्यते ॥ स्मरणात्तोषमायाति केशवः क्लेशनाशनः ॥ २७ ॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं ध्रुवम् ॥ शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा ! जिव्हाया अपि नित्यशः ॥ २८ ॥ द्वयं यस्य वशे भूयात् स एव स्याज्जनार्दनः ॥ भवद्भिर्नात्र स्थातव्यं तस्मात् कलियुगागमे ॥ २९ ॥

"भवितात्माओंने सन्तोषपूर्वक नृत्य करते हुये जो कहा है, उससे हम सिद्ध हो गये हैं. निस्सन्देह यह पुण्यरूप कलियुग आकर प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥ यह सत्य है और इसमें कुछभी सन्देह नहीं है. कि बहुत थोडे परिश्रमसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है. क्लेशहारी केशवभगवान् स्मरणमात्रसेही प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २७ ॥ तथापि हम कहते हैं कि हे पुत्रो ! शिश्न और जिह्वा इन दोनोंका निग्रह करना बहुत कठिन है ॥ २८ ॥ जिसके वशमें शिश्न और जिह्वा हैं वही जनार्दनके समान है. इसकारण, कलियुगके आगमनमें

आप लोगोंको यहां ठहरना उचित नही है ॥ २९ ॥ इस पाखंडमय भारतको छोडकर सुखपूर्वक अन्यत्र विचरौ, जिस किसी देशमें जहां तुमारा मन प्रसन्न रहै, वहां जाकर वास करौ " ॥ ३० ॥ यह नारदवचन सुनकर व्रत धारण करनेवाले मुनिगण सत्रयज्ञको समाप्त कर सुखपूर्वक सहसा वहांसे चले गये ॥३१॥ धर्मवर्णनेभी यह सुनकर भूमिको त्याग देनेका विचार किया. व्रतधारी तेजवान् दंडकमंडलू धारण कर ॥ ३२ ॥ जटा और वल्कलवस्त्रधारी मनमें विस्मय करता हुआ कलियुगमें अनाचारोंको देखनेके अर्थ

पाखंडं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् ॥ यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति ॥ ३० ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥ सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथासुखम् ॥ ३१ ॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनो दधे ॥ सव्रतं चोर्ध्वतेजस्कं धृत्वा दंडकमंडलू ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः ॥ कलौ युगे त्वनाचारान् द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यज्जनान् घोरान् पापाचाररतान् खलान् ॥ पाखंडिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्रजिनस्तथा ॥ ३४ ॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा ॥ भृत्यश्च स्वामिहंता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५ ॥ शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः ॥ गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥ ३६ ॥

जाता हुआ ॥ ३३ ॥ वहां देखा कि मनुष्य घोर पाप करनेमें तत्पर हैं, स्वभाव दुष्ट हो गया है, सब द्विज ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ) और शूद्र तथा संन्यासी पाखंडी हो गये हैं ॥३४॥ स्त्री अपने पतिसे विरोध करती है; तथा शिष्य अपने गुरुसे द्रोह करता है. सेवक स्वामीको और पुत्र पिताके मारनेमें तत्पर है ॥ ३५ ॥ सब द्विज शूद्र-

समान हो रहे हैं; गौवें बकरीके तुल्य हो गईं, वेद कहानीके समान हैं. तथा वेदोक्त शुभकर्म साधारण कर्म हो गये हैं ॥ ३६ ॥ भूत-प्रेत-पिशाच आदि देवतारूपसे फलदायक हो रहे हैं; पापीलोग श्रद्धासे इन्हींका पूजन कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ सब कुकर्ममें आसक्त हैं और कुकर्मकेलिये अपना प्राणत्याग कर देते हैं. झूंठी साक्षी (गवाही) देते हैं और मनमें सदा कपट रखते हैं ॥ ३८ ॥ एक विचार मनका, एक वाणीका, एक कर्मका, सदा कलियुगमें देखा. इस प्रकार सबकी पाखंडमयी विद्याही राजमंदिरमें प्रतिष्ठा

भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः ॥ ता एव श्रद्धयार्चंति जनाः पापरताः खलाः ॥ ३७ ॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ कूटसाक्षिप्रवक्तारः सदा कितवमानसाः ॥ ३८ ॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ ॥ सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमंदिरे ॥ ३९ ॥ गीताद्याश्च कला विद्या नृपाणां च प्रियावहाः ॥ हीनाश्च पूज्यतां याति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥ ४० ॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे ॥ विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते ॥ ४१ ॥ प्रायः पाखंडभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥ शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तापसाः कलौ ॥ ४२ ॥ सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः ॥ सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वे च ग्रहणोत्सवाः ॥ ४३ ॥

पाती है ॥ ३९ ॥ गीतआदि कलाविद्यायें राजाओंको प्यारी लगती हैं. कलियुगमें नीचजन पूज्य होगये, उत्तम मनुष्य नीच हो गये ॥ ४० ॥ वेदपाठी सब ब्राह्मण कलियुगमें दरिद्री हो रहे हैं, मनुष्योंके हृदयसे विष्णुभगवान्‌की भक्ति जाती रही है ॥ ४१ ॥ पुण्यक्षेत्रोंमें प्रायः पाखंड भर गया है; शूद्रलोग धर्मोपदेश करने लगे हैं. कलियुगमें जटाधारीही तपस्वी हैं ॥ ४२ ॥ सब मनुष्य अल्पायु, दयाहीन और शठ हो गये हैं; सबही धर्मवक्ता बन गये और सबही उत्साहरहित हो रहे हैं ॥ ४३ ॥

और अपनीही पूजा चाहते है, वृथा निन्दामें लगे रहते हैं. बहुतेरे ऐसे हैं कि स्वामीके घर चले जानेपर उसकी निन्दा करते हैं ॥ ४४ ॥ भाई बहिनसे और पिता पुत्रीसे संगम करते हैं तथा कलियुगमें सबही शूद्रा और वेश्याओंमें मन डुला रहे है ॥ ४५ ॥ साधुजनोंकी अवज्ञा करते हैं. पापी जनोंका सन्मान करते हैं. साधुओंमें एक दोष होनेपरभी प्रगट करते हैं ॥ ४६ ॥ पापियोंके दोषोंको गुण समझकर बखान करते हैं. निर्गुणी जन कलियुगमें दोषहीको ग्रहण करते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे, स्तनमें लगी

स्वार्चनं चापि हीच्छंति वृथा निंदापरायणाः ॥ असूयानिरताः सर्वे परे प्रभौ गृहं गते ॥ ४४ ॥ भ्राता च भगिनीगंतो पिता पुत्रीं च वै कलौ ॥ सर्वेऽपि शूद्रीनिरताः सर्वे वारांगनारताः ॥ ४५ ॥ साधूंनैव विजानंति बहुपापांश्च मन्यते ॥ व्यक्तीकुर्वंति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥ ४६ ॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदंति हि ॥ दोषमेव प्रगृह्णंति कलौ तु विगुणा जनाः ॥ ४७ ॥ जलूकस्तनसंयुक्तो रक्तं पिबति नो पयः ॥ ओषध्यः सत्वहीना हि ऋतूनां व्यत्ययारतथा ॥ ४८ ॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या काले न सूयते ॥ नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमंतो नराः कलौ ॥ ४९ ॥ वेदवेदांतविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः ॥ भूतान् पश्यंति तान् मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिलाशिषः ॥ ५० ॥

हुई जौंक केवल रुधिरहीका पान करती है, दूध नहीं पीती है. औषधियां सत्वहीन हो गई. ऋतुओंका उलट पलट हो गया तथा ॥ ४८ ॥ सब राज्यभरमें अकाल पडता है. कन्याके पुत्र उत्पन्न होता है. है. कलियुगमें मनुष्य नट और नृत्यविद्यामें प्रेम करते है ॥ ४९ ॥ वेदवेदांतविद्याके प्रेमी और अधिक गुणवालोंको मूढलोग सेवकके समान देखते इसप्रकार ये सब मूढ सर्वमंगलोंसे भ्रष्ट हो रहे हैं ॥ ५० ॥

श्राद्ध आदि कर्म और वेदोक्त कर्म सबने परित्याग कर दिये हैं. विष्णुभगवानका नाम जीभसे कभी उच्चारण नहीं करते. शृंगाररसमें सब मग्न हो रहे हैं और उसीप्रकारके गीत गाते हैं ॥ ५१ ॥ न विष्णुकी सेवा करते हैं, न शास्त्रवार्ता उनको अच्छी लगती है, न योगकी दीक्षा लेते हैं, न कुछ विचार करते हैं, न तीर्थयात्रा करते हैं, न दानधर्म करते हैं. इसप्रकार कलियुगी मनुष्योंकी विचित्र गति है ॥ ५२ ॥ उनको देखकर धर्मवर्णभी बहुत डर गया और विस्मयको प्राप्त हुआ.

त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदोदितक्रियाः ॥ जिव्हायां विष्णुनामानि न वर्तंते कदाचन ॥ शृंगाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः ॥ ५१ ॥ न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न योगदीक्षा न विचारलेशः ॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वापि बभूव चित्रम् ॥५२॥ तान् दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यंतविस्मितः ॥ वंशं पापात् क्षयं यातं दृष्ट्वा द्वीपांतरं ययौ॥ ५३ ॥ स चरन् सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेव तु सर्वशः ॥५४॥ पितृलोकं ययौ धीमान् कदाचित् कौतुकान्वितः ॥ तत्रापश्यन्महाघोरान् भ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥ ५५ ॥ धावतो रुद्यमानांश्च पततः पातितानपि ॥ तत्रापश्यच्चान्धकूपे पतितान् स्वान् पितॄनथ ॥५६॥ दूर्वाग्रलंबिनो दीनान् दूर्वाच्छेदं हि शंकितान् ॥ तदाखुः खादयत्यद्धा दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥ ५७ ॥

वंशको पापसे क्षय होता देखकर द्वीपांतरको जाय ॥ ५३ ॥ सब द्वीप और लोकोंमें विचरता हुआ ॥ ५४ ॥ वह बुद्धिमान् पितृलोकको गया. बड़ा आश्चर्ययुक्त होता हुआ यह देखा कि महाघोर कर्मोंद्वारा भ्रमण करते हुये ॥ ५५ ॥ दौड़ते रोते और गिरते हुये अन्धकूपमें गिरे हुये अपनेही पितर नरकमें देखे ॥ ५६ ॥ उसमें कोई दूबके सहारे लटके

है और दूबके उखडने अथवा टूटनेसे शकित हो रहे हैं और उनके आश्रयवाली दूबकी जडको मूषक क्तर रहे हैं ॥ ५७ ॥ उस दूबसे तीन भाग मूषकने करत डाले। एक भाग शेष रहा, उसको देखकर वे दुःखसे दुर्बल हो रहे हैं ॥ ५८ ॥ नीचे अधकूपको देखकर जो अतिभयानक दुर्गम महाघोर कर्मोंसे प्राप्त दुखोसे पीडित होकर पडे हैं ॥ ५९ ॥ आगेकी ओर यह कूप दुर्गम है, जिसमें कुछ अवलंब नहीं. उन पितरोंको देख विस्मित हो दयाभावसे धर्मवर्णमुनि कहने लगे ॥ ६० ॥ " तुम लोग कौन

तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः ॥ तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाण-मूलं दुःखेन कर्शिताः ॥ ५८ ॥ अधो दृष्ट्वा चांधकूपं पटपातातिभीषणम् ॥ दुरुत्तरं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः ॥५९॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलंबविवर्जितम् ॥ तान् दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन् केन दुस्तरकर्मणा ॥ कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वो मुक्तिरूर्जिता ॥ ६१ ॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोद्य भविष्यति ॥ इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथ सुदुःखिताः ॥ ६२ ॥ तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ॥ पितर ऊचुः ॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि संतानवर्जिताः ॥ ६३ ॥ पिंडश्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् ॥ निःसंतानोपि नो वंशो जातः पापैः कलौ युगे ॥ ६४ ॥

हो ? किस दुस्तरकर्मसे यहां पडे हो ? कौन गात्रेमें उत्पन्न हुये हो ? तुमारी मुक्ति कैसे होगी ? ॥ ६१ ॥ यह तुम मुझसे कहो. आजही तुमारा कल्याण होगा. " धर्मवर्णने जब इसप्रकार पूछा, तब दुःखसे व्याकुल पितरलोग प्रसन्न हो ॥ ६२ ॥ धर्म और वेदको आगे कर दीनवाणीसे बोले. पितर कहने लगे—" हम श्रीवत्सगोत्रीय है. पृथ्वीपर सन्तानसे रहित है ॥ ६३ ॥ पिडश्राद्धसे रहित हैं, इसीसे हम दुःख भोग रहे हैं. कलियुगमें पापोंके कारण, हमारा वंश निःसंतान रहा ॥ ६४ ॥

हमारा वंश पापसे क्षय हो गया. हमको पिंड देनेवाला कोई नहीं है. इसीसे हम दुरात्मा अंधकूपमें पडे है ॥ ६५ ॥ हमारे वंशमें एक महायशस्वी धर्मवर्णही रह गया है. परंतु वह विरक्त हुआ विचरता है. उसने गृहस्थ होनेकी इच्छा नहीं की ॥ ६६ ॥ दूर्वाका तंतुरूप वही है, जिसको पकडकर हमलोग लटक रहे हैं. वहां तंतुहीन है, इसीसे उसकी जडको मूषक प्रतिदिन कतर रहा है ॥ ६७ ॥ अकेला वही बचा है, इसीसे थोडीसी शेष है. हे सौम्य ! उसको भी देखो, मूषक कतर रहा है ॥ ६८ ॥ हे

नास्माकं पिंडदश्चास्ति वंशे पापात्र क्षयं गते ॥ तेनांधकूपे पतनं निस्तंतूनां दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः ॥ स विरक्तश्चरत्येको न गार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥ ६६ ॥ तंतुना तेन विश्रामो दूर्वानालविलंविताः ॥ निस्तंतुत्वाच्च तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥ ६७ ॥ एकस्यैवावशिष्टत्वात् किंचिन्मूलावशेषितः ॥ आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥ ६८ ॥ तस्य चायुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति ॥ पश्चात् कूपे पतिष्यामो दुस्तारेऽधतामसे ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय ॥ अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥ ७० ॥ पितरस्ते भृशार्ता हि नरके पातिता मया ॥ अंधकूपे दुस्तारे दृष्टा दूर्वावलंबिताः ॥ ७१ ॥

तात ! उसकी आयु क्षीण हो जानेपर दूर्वाका शेष भाग मूषक कतर डालेगा और हम इस दुर्गम अंधकूपमें गिर पडेंगे ॥ ६९ ॥ इसकारण, तुम भूमिपर जाकर धर्मवर्णको समझा देना. उस गृहस्थधर्मसे विमुख मुनिको हमारे दीन वाक्योंद्वारा समझाकर कह देना ॥ ७० ॥ कि तुमारे पितर महादुःखित दुर्गम अंधकूपमें पडे हुये हमने देखे हैं. केवल एक दूबके सहारेसे लटक रहे हैं ॥ ७१ ॥

हे मुने ! यह वंशरूपी दूब है; इसकी जडको कालरूपी मूषक प्रतिदिन कतरता है ॥ ७२ ॥ इसी क्रमसे सब वंशनाश हो गया. एक तुमही शेष रहे हो. हे मुने ! कालरूप मूषकसे इस दूबके तीन भाग नष्ट हो गये हैं ॥ ७३ ॥ एक भाग तुम पृथ्वीपर शेष रह गये हो, सो थोडा थोडा मूषक कतर रहा है. तुमारी आयु प्रतिदिन क्षीण हो रही है ॥ ७४ ॥ तुमारी आयु बीत जानेपर और संतानके क्षय हो जानेपर हम और तुम सब अंधतामिस्र कूपमें पडेंगे ॥ ७५ ॥ इसकारण, गृहस्थधर्म

सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततं मुने ! ॥ कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥ ७२ ॥ वंशनाशानुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः ॥ तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टभागत्रयं मुने ! ॥ ७३ ॥ एकोभागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि ॥ किंचित् खादति वै त्वाखुस्तव चायुःक्षयः क्रमात् ॥ ७४ ॥ परेते त्वयि चास्माकं तवापि पतनं भवेत् ॥ कूप एवांधतामिस्रे संतानेऽपि क्षयंगते ॥ ७५ ॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु संततिवर्द्धनम् ॥ तेनास्माकं तवापि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥ ७६ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वा ऽश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ७७ ॥ यद्येकोपि च वैशाखे मासे वा कार्तिकेऽपि वा ॥ अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥ ७८ ॥

धारणकर संततिकी वृद्धि करो, इसीसे हमको ऊर्ध्वगति मिलेगी; इसमें संशय नहीं है ॥ ७६ ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करना उचित है. उनमे एकभी गयाको जाय अथवा अश्वमेध यज्ञ करै वा नीलरंगका सांड छोडै ॥ ७७ ॥ तथा एकभी उनमेंसे वैशाखमाघ अथवा कार्तिकमासमें हमारे निमित्त स्नान—श्राद्ध—दान करैगा ॥ ७८ ॥

उससे हमको ऊर्ध्वगति प्राप्त होगी और नरकोंसे उद्धार होगा. अथवा एकभी विष्णुभक्त ( वैष्णव ) हो अथवा कोई एकभी एकादशीव्रत करनेवाला हो ॥ ७९ ॥ अथवा एकभी विष्णुभगवानकी पापनाश करनेवाली कथा सुने उसके पूर्व बीतेहुये सौ कुल और आगे होनेवाले सौ कुल ॥ ८० ॥ उनमें कोईभी पापी हो तो वह नरकका दर्शन नहीं करता है. और बहुतसे दयाधर्मसे रहित पुत्रोंके होनेसे क्या है ? ॥ ८१ ॥ जिस कुलमें उत्पन्न प्राणी विष्णुनारायणकी पूजा नहीं करते हैं

तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः ॥ एको वा विष्णुभक्तः स्यादेको वा हरिवासरी ॥ ७९ ॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशनीम् ॥ तस्यातीतं कुलशतं भावि चापि कुलं शतम् ॥८०॥ अपि पापव्रतं क्वापि नरकं नैव पश्यति ॥ किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ॥८१॥ ये जीवा नार्चयंत्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले ॥ नापुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः ॥८२॥ तत्रापि च दयायुक्तं तत्र संतानं च दुर्लभम् ॥ इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ॥ ८३ ॥ विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु ॥ पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ॥ ८४ ॥ प्रणम्य प्रांजलिः प्राह रुदन् वै जातवेपथुः ॥ नाम्नाहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही ॥ ८५ ॥

उन पुत्रोंके होनेसेभी लोकमें कुछ फल नहीं होता है. यह सब जानते हैं ॥ ८२ ॥ तहांभी दयाधर्मसे युक्त सन्तान दुर्लभ है. इसप्रकार उसको सत्य वाक्योंसे समझाकर ॥ ८३ ॥ विरक्त और ऊर्ध्वरेता धर्मवर्णको गृहस्थधर्ममें आनेकी मति करो." पितरोंका यह वचन सुनकर धर्म अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ और हाथ जोड प्रणाम कर रोता हुआ कांपकर बोला कि-" मैंही तुम्हारा वंशधर दुराग्रही धर्मवर्ण हूं ॥ ८५ ॥

यज्ञमें महात्मा नारदका वचन सुनकर कि कलियुगमें जिह्वा और शिश्न किसीकेभी वशमें नहीं हैं ॥ ८६ ॥ पृथ्वीपर पापियोंको देखकर उन जनोंसे शंकायुक्त होकर और दुर्जनोंकी संगतिसे डरकर द्वीपान्तरमें विचरता और ठहरता हुआ ॥ ८७ ॥ इस कलियुगके तीन चरण बिताये; अब तीन चरण कलियुगके बीत गये और अंतवाले चौथे चरणमेंभी इस समय हे पितरो ! साढेतीन भाग व्यतीत होगये है ॥ ८८ ॥ हमने आपका दुःख नहीं जाना; हमारा जन्म वृथाही गया. जिस कुलमें मैं

सत्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ॥ जिव्हादार्ढ्यं गुह्यदार्ढ्यं न कस्यापि कलौ युगे ॥ ८६ ॥ दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्तान् जनानपि शंकितः ॥ भीतो दुर्जनसंगत्या चरन् द्वीपांतरे वसन् ॥ ८७ ॥ पादास्त्रयो गता ह्यस्य कलेः पादेऽतिमेऽपि च ॥ गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥ ८८ ॥ नाहं वेद्मि भवद्दुःखं वृथा जन्म गतं मम ॥ यस्मिन् कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वै हृतम् ॥ ८९ ॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा ॥ यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन् देवानृषींस्तथा ॥ ९० ॥ युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाज्ञापयत क्षितौ ॥ यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥ ९१ ॥ कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले ॥ इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥ ९२ ॥


उत्पन्न हुआ, उस कुलके पितरोंका ऋण दूर नहीं किया ॥ ८९ ॥ तो भूभाररूप अन्नशत्रु ऐसे मेरे जन्म लेनेमात्रसे क्या हुआ ? जो प्राणी विष्णुभगवान्का पूजन नहीं करै, तथा पितर, देवता और ऋषियोंकी पूजा नहीं करै, उसका जन्म संसारमें निष्फल है ॥ ९० ॥ मैं आपकी आज्ञा पालन करूंगा. परंतु आप यह आज्ञा करो कि पृथ्वीपर सांसारिक कर्तव्योंके करनेपर भी मुझको कलियुगी बाधा न हो ॥ ९१ ॥ और इस पृथ्वीपर कौनसे कौनसे कृत्य करने सोभी कहना. जब वगधर

नृहितान धर्मवर्णन इसप्रकार कहा ॥ ९२ ॥ तब हे महीपते ! मनमें कुछ धीरज धरकर पितर बोले—" हे पुत्र ! देखो, तुमारे महात्मा पितरोंकी यह दशा है ॥ ९३ ॥ कि संततिके अभावसे गिर रहे हैं. केवल दूबके सहारेसे ठहर रहे हैं. तुम गृहस्थधर्ममें प्रवृत्त होकर संतान उत्पन्न कर हम लोगोंका उद्धार करो ॥ ९४ ॥ जे विष्णुकथा सुनते रहते हैं और जे रातदिन हरिका स्मरण करते हैं. तथा जे सदाचारमें तत्पर रहते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९५ ॥ हे मानद ! शालिग्रामशिला ( श्रीठाकुरजीकी मूर्ति ) जिसके घरमें रहती है, अथवा जिसके घरमें भारतकथा होती है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९६ ॥ विष्णुभगवान्को

किंचिद्गाश्वस्त मनस इदमूचुर्महीपते ! ॥ पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ संतत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलंबिनाम् ॥
त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य संतत्यास्मान् समुद्धर ॥ ९४ ॥ ये च विष्णुकथारक्ता ये स्मरंत्यनिशं हरिम् ॥ ये सदाचारनिरता न तान् वै बा-
धते कलिः ॥ ९५ ॥ शालिग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद ! ॥ अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥ ९६ ॥ विष्णोर्निवे-
दितान्नं च वर्तते यस्य चोदरे ॥ कर्णे वा तुलसीपत्रं न तं वै बाधते कलिः ॥ ९७ ॥ यत्करे तुलसीमाला यद्धस्ते च पवित्रकम् ॥ य-
ज्जिह्वाग्रे हरेर्नाम न तं वै बाधते कलिः ॥ ९८ ॥ यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः ॥ कार्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते क-
लिः ॥ ९९ ॥ प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः ॥ पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥ १०० ॥

निवेदन किया अन्न जिसके उदरमें वर्तमान है अथवा कानमें तुलसीदल रहता है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९७ ॥ जिसके हाथमें तुलसीकी माला है और जिसके हाथमें पवित्रक ( कुशा ) है, तथा जिसकी जीभपर हरिनाम है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९८ ॥ जो वैशाख और माघस्नानमें निरत रहता है और जो कार्तिकमें दीपदान करता है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९९ ॥ तथा जो विष्णुभगवान्की पापनाशिनी मोक्षदायिनी दिव्य कथाको सुनता है,

उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ १०० ॥ जिसके घरमें वैश्वदेव होता है, जिसके घरमें तुलसीका निर्मल वृक्ष है, जिसके आंगनेमें सुन्दर गायकी सेवा होती है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ १०१ ॥ इसकारण, हे मानसपुत्र ! तुम पापात्मक युगमें भी घर जाओ. हे पुत्र ! यह माधवमास है ॥ १०२ ॥ सबके उपकारके निमित्त मेषकी संक्रांतिमें तीस पवित्र तिथि महापुण्यफलकी देनेवाली हैं ॥ १०३ ॥ एक एक तिथि ऐसी है कि उसमे पुण्य करनेसे कोटिगुणा फल प्राप्त होता है. उनमेभी

यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा ॥ यदंगणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः ॥ १०१ ॥ तस्मान्मानसपुत्र ! त्वं युगे पापात्मकेऽपि च ॥ शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र ! मासोऽयं माधवाह्वयः ॥१०२॥ सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या महापुण्यप्रदायकाः ॥ १०३ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तत्रापि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥ १०४ ॥ प्रिया च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायिनो ॥ ये वै पितॄन् समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वंति तद्दिने ॥ १०५ ॥ सोदकुंभं पिंडदानं तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ये च कुर्वंति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ! ॥ १०६ ॥ तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत् ॥ यदि श्राद्धं मधौ दर्शे शाकेनापि करोति च ॥ १०७ ॥ कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः ॥ कुंभं च पानकैः पूर्णं कर्पूरागरुवासितम् ॥ १०८ ॥

चैत्रकी अमावास्या तो मनुष्योंको मुक्तिकी देनेवाली है ॥ १०४ ॥ पितर और देवताओंकी प्यारी और शीघ्र मुक्तिकी देनेवाली है. अमावास्याके दिन जो कोई पितरोंके निमित्त श्राद्ध करते हैं ॥ १०५ ॥ जलका घट और पिंडदान करते हैं, उनको अक्षय फल प्राप्त होता है. हे पुत्र ! जो चैत्रमासमें अमावास्याको श्राद्ध करते हैं ॥ १०६ ॥ गयाक्षेत्रमें उन कियाहुआ श्राद्ध करोडगुना फल देनेवाला होता है. मधुमासकी अमावसके दिन जो शाकसे भी श्राद्ध करता है ॥ १०७ ॥ उसको कोटि गयाश्राद्ध

करनेका फल निस्सन्देह प्राप्त होता है. कपूर और अगरुकी वाससे युक्त ऐसा जलसे पूर्ण घट ॥१०८॥ जो मधुमासकी अमावसको नहीं देता है वह निस्सन्देह पितृघाती है. जो मधुमासकी अमावसको पीनेके पदार्थसहित करीरका दान करता है ॥ १०९ ॥ और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है, तो वह अपने कुलका उद्धार करता है. तब पितृ-लोकमें अमृतवर्षिणी नदी ॥ ११० ॥ कुंभदानसे बहने लगती है. श्राद्धदानसे अन्न, दाल, घी, पूआ, लपसी, खीर आदि भोजनपदार्थोंकी प्राप्ति होती है. भावार्थ यह कि

यो न दद्यान्मधौ दर्शे सपितृघ्नो न संशयः ॥ यो दद्यान्न मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ १०९ ॥ श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् ॥ पितृणां च तदा लोके नदी चामृतवर्षिणी ॥११०॥ कुंभदानात् प्रसरति श्राद्धदानाद्दिदायिनाम् ॥ अन्नसूपघृतापूपले-ह्यपायसकर्दमाम् ॥ १११ ॥ तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा चामा भविष्यति ॥ कुरु श्राद्धं पिंडदानं सोदकुंभं महामते ! ॥११२॥ रा-वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय ॥ धर्मार्थकामैः संतुष्टः प्राप्य संतानमुत्तमम् ॥११३॥ पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसंचर ॥ इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥ ११४ ॥ चैत्रे मासि मेषसंस्थे पुण्ये तस्मिन् दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वा च संतर्प्य पितृन् देवानृषींस्तथा ॥ ११५ ॥

इस पदार्थोंमें जो दिया जाता है, वही तत्काल मिलता है ॥ १११ ॥ इसकारण, तुम शीघ्र जाओ. अमावससे पहले जाओगे तो जब अमावस होगी तब हे महामते ! श्राद्ध, पिंडदान और घटदान करना ॥ ११२ ॥ सबके उपकारके निमित्त गृहस्थ-आश्रममें जाय, धर्म-अर्थ काममें सन्तुष्ट हो, उत्तम सन्तान पाय ॥ ११३ ॥ फिर मुनिकी वृत्तिको धारण कर तुम सुखसे द्वीपमें विचरो. " यह आज्ञा जब पितरोंने करी, तब धर्मवर्ण शीघ्र भूमिपर आकर प्राप्त हुआ ॥ ११४ ॥ चैत्रमासमें मेषकी संक्रांतिके दिन प्रातःकाल

स्नान कर पितर, देव तथा ऋषियोंका तर्पण किया ॥ ११५ ॥ जलपूर्ण घटपान तथा पापनाशक श्राद्धको करके उसने पितरोको आवागमनसे छुड़ानेवाली मुक्ति देके ॥११६॥ अपना विवाह किया, जिससे उत्तम संतान हुई और संसारमें उस पापनाशिनी तिथिको प्रसिद्ध किया ॥ ११७ ॥ फिर आप प्रसन्नतापूर्वक भक्तिसे गन्धमादनपर जाता हुआ. इसकारण, मधुमासकी अमावास्या यह परम पुण्या और शुभफल देनेवाली है ॥ ११८ ॥ संसारमें इसके समान कोई तिथि न देखी है, न

सोदकुंभं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् ॥ तेन दत्त्वा पितॄणां च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥११६ ॥ स्वयं विवाहमकरोत् संततिं प्राप्य वै सतीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं पापनाशिनीम् ॥११७ ॥ स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गंधमादनमाययौ ॥ तस्मात् पुण्यतमा चैषा मधोर्दर्शा शुभावहा ॥११८॥ नानया सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुताऽपि वा ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥ १ ॥ ये कुर्वंति च तस्यां वै प्रातःस्नानं भगोदये ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यांति विष्णोः परं पदम् ॥ २ ॥ देवान् पितॄन् मुनीन् यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तेनाधीतं च तेनेष्टं तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥३॥

सुनी है ॥ ११९ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रुतदेवजी बोले—अब आगे पापनाश करनेवाले अक्षय्यतृतीयामाहात्म्यको वर्णन करता हूं. वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी तृतीया ' अक्षय तृतीया ' कहाती है ॥ १ ॥ उस अक्षयतृतीयाके दिन जो सूर्योदयकालमें प्रातःस्नान करते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमपदको जाते हैं ॥ २ ॥ जो देव, पितर और ऋषियोंके

निमित्त तर्पण करै तो उसने वेदशास्त्र पढ लिये, यज्ञ कर लिये और उसने सौ श्राद्ध कर लिये ॥ ३ ॥ तथा जो मनुष्य मधुसूदन भगवान्की पूजा करके अक्षयतृतीयाके दिन कथा सुनते हैं, वे मनुष्य मुक्तिभाग् होते हैं ॥ ४ ॥ अक्षयतृतीयाके दिन जो मनुष्य मधुसूदनभगवान्की प्रीतिके अर्थ दान करते हैं, वे दान मधुसूदन भगवान्की आज्ञासे अक्षय फल देनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ देव, ऋषि और पितरोंकी यह अतिउत्तम फल देनेवाली तिथि है. इसमें सनातन धर्म करनेसे देव, ऋषि, पितर इन तीनोंकी

मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वंति ये नराः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां ते नरा मुक्तिभागिनः ॥ ४ ॥ ये दानं तत्र कुर्वंति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् ॥ तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासनशासनात् ॥५॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा ॥ त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे सनातने ॥ ६॥ प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चासीत्तदप्यहम् ॥ वक्ष्यामि नृपशार्दूल ! सावधानमनाः शृणु ॥ ७ ॥ पुरा पुरंदरस्यासीद्युद्धं च बलिना सह ॥ देवानां चैव दैत्यानां द्वंद्वयुद्धमभूत्ततः ॥ ८ ॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् ॥ पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥ ९ ॥ तत्रापश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणीं मंदगामिनीम् ॥ चलच्छ्रोणितटाबद्धकांचिदाम्ना सुमंडिताम् ॥ १० ॥

तृप्ति होती है ॥ ६ ॥ इस तिथिकी प्रसिद्धि किस प्रकारसे हुई सो मैं कहता हूं, हे राजन् ! सावधानमनसे सुनो ॥ ७ ॥ पूर्वसमय इंद्रका, राजा बलिके साथ युद्ध हुआ, देवता और दैत्योंका द्वन्द्वयुद्ध हुआ ॥ ८ ॥ अनंतर इंद्र पातालतलवासी बलिको जीतकर फिर पृथ्वीपर आया और उतथ्यके आश्रमको गया ॥ ९ ॥ वहाँ उतथ्यकी

मन्दगामिनी गर्भिणी स्त्रीको देखा जिसके कटिप्रदेशमें सुवर्णके सूत्रमें बंधी हुई किंकिणी सुशोभित हो रही ॥ १० ॥ कंकणोंकी झनकारने मदोन्मत्त भ्रमर और कोकिलाओंके शब्दको जीत लिया. अनेक प्रकारके वस्त्र धारण किये. मधुर वाणी और मन्द मुसक्यानसे शोभाको प्राप्त हो रही थी ॥ ११ ॥ कुंभस्थल और सुंदर कुचोंकरके सुशोभित हो रही, विकसित कमलसमान सुंदरमुखवाली और नीलकमलके तद्वत् सुन्दरनेत्रवाली ॥ १२ ॥ केतकीके उदरके समान मनोहर गंडस्थलवाली, श्रमसे साँस भरती हुई दीनाक्षी पर्णशालाकी ओर मुख किये हुये ॥ १३ ॥ शय्यापर शयन करती हुई. ऐसी ऋषिपत्नीको देखकर इंद्र मोहित हो गया और बलात्कारसे उस गर्भिणी स्त्रीसे संग

क्वणत्कंकणनिर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम् ॥ वल्गुचित्रांबरां राम मंजुवाचां सुविस्मिताम् ॥ ११ ॥ लसत्कुंभस्थलाभ्यां च कुचाभ्या-
मुपशोभिताम् ॥ हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥ १२ ॥ केतक्युदरपांडुभ्यां गंडाभ्यां च मनोरमाम् ॥ श्रमोच्छ्वसंतीं दीनाक्षीं
पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥ १३ ॥ स्वपंतीं शयने क्वापि तां दृष्ट्वा मोहमागमत् ॥ बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥ १४ ॥ ग-
र्भस्थस्तु तदा पिंडः स्वस्य पातविशंकया ॥ छादयामास वै योनिद्वारं पादेन दुःखितः ॥ १५ ॥ ततश्च स्कंदवीर्यं तद्भूमावेव बलद्विषः ॥
गर्भस्थाय चुकोपासौ भगवान् पाकशासनः ॥ १६ ॥ तं शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रांतलोचनः ॥ जात्यंधो भव दुर्बुद्धे मावमंस्था यतः
पदा ॥ १७ ॥ प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतमाह्वयः ॥ पदा प्रस्कंदिताद्वीर्याज्जयंतः समजायत ॥ १८ ॥

भोग करने लगा ॥ १४ ॥ तब गर्भस्थपिंडने अपने गिरनेकी शंकामे दुःखित होकर अपने पाँवसे योनिका द्वार रोंक लिया ॥ १५ ॥ तब इंद्रका वीर्य भूमीपर गिर पडा और गर्भस्थ शिशुपर इंद्रको बहुत क्रोध आ गया ॥ १६ ॥ मारे रोषके लाल लाल नेत्र करके उस गर्भस्थको यह शाप दिया कि–' हे दुर्बुद्धे ! तुमने वीर्य ठहरने नहीं दिया, इससे जन्मान्ध हो जाओ. ' पांवसे ॥ १७ ॥ योनिका द्वार रोकनेसे दीर्घतमाह्व पाँवोंद्वारा वीर्यके संचरणसे जयंत समान होता हुआ ॥ १८ ॥

तदनंतर इंद्र उतथ्य ऋषिके शापसे शंकित होकर वहाँसे शीघ्र चला गया. इन्द्रको भागते देखकर सब शिष्य हँसने लगे ॥१९॥ तब इन्द्र लज्जित होकर सुमेरुपर्वतकी कन्दरामें जाय घुसा और वहाँ बैठकर उग्र तप करने लगा ॥ २० ॥ लाजके मारे जब इंद्र मेरुमें जाय घुसा तब, राजा बलि आदि दैत्य गुप्त दूतोंके द्वारा भेद जानकर ॥२१॥ देवताओंपर चढ़ाई कर राजा बलि अमरावतीपुरीमें इन्द्र बन बैठा और शंबरादिक बलवान् दैत्यगण दिक्पालोंकी विभूति भोगने लगे ॥२२॥ स्वामीकरके हीन देवताओंके राज्यमें



पश्चादिंद्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशंकितः ॥ पलायंतं हरिं दृष्ट्वा जहसुर्बटवोऽखिलाः ॥१९॥ ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां
शुभाम् ॥ तत्र ली श्वचारासौ दुस्तरं वै तपो महत् ॥ २० ॥ मेरौ विलीय वसति देवेंद्रे लज्जयान्विते ॥ गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां
दैतेया बलिपूर्वकाः ॥ २१ ॥ सुरानाक्रम्य बुभुजुर्बलींद्रश्चामरावतीम् ॥ दिक्पालानां विभूतीश्च शंबराद्या बलीयसः ॥ २२ ॥
बलात्सुभुजिरे हीननाथं राष्ट्रं दिवौकसाम् ॥ रक्षितारमजानंतो देवा ह्यग्निपुरोगमाः ॥२३॥ गत्वा तु धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् ॥
पप्रच्छुरिंद्रवृत्तांतं क्व च तिष्ठति नः प्रभुः ॥ २४ ॥ दैत्याक्रांतमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम् ॥ कुतो नायाति देवोऽसौ भूयान्
कालो गतो विभो ॥ २५ ॥

दैत्यगण राज्य करने लगे. तब अग्नि आदि देवता अपनी रक्षा करनेवालेको न जानकर ॥ २३ ॥ बृहस्पतिके समीप जाय इन्द्रका वृत्तांत पूछने लगे कि–" हमारा प्रभु ( इन्द्र ) कहाँ रहता है ? ॥ २४ ॥ इन्द्रके बिना देवताओंकी इस राजधानीमें दैत्योंने आक्रमण किया है. हे विभो ! बहुत समय व्यतीत हो गया. इन्द्र क्यों नहीं

आता है ? ॥ २५ ॥ जहाँ इन्द्र होय वहाँ बताओ, हम वहीं जाकर अपने स्वामीसे प्रार्थना करें." इसप्रकार देवताओंके पूछनेपर बृहस्पतिजी कहने लगे ॥ २६ ॥ "रसातलमें बलिको जीतकर इन्द्र उतथ्यके आश्रममें गया. वहाँ उतथ्य ऋषिकी स्त्रीसे बलात्कार संभोग किया. तब ऋषिके शिष्योंने निन्दा करी ॥ २७ ॥ तो लज्जित होकर इन्द्र स्वर्गमें न आकर मेरुकी गुफामें प्रवेश कर गया. वहीं शची ( इंद्राणी ) सहित निवास करता है और अपने किये हुये कर्मपर चिंता करता रहता है" ॥ २८ ॥ यह वचन बृहस्पतिका सुनकर अग्नि आदि देवतालोग इन्द्रको देखने और प्रार्थना करनेके निमित्त मेरुकी कन्दरामें गये ॥ २९ ॥ वहाँ इन्द्रको देखकर इन्द्रके बलवीर्यको प्रकाश

तं यामो यत्र मघवा प्रार्थयामश्च तं विभुम् ॥ इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥ २६ ॥ रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥ भुक्त्वा पत्नीं च धाष्टर्येन तच्छिष्यैरेवनिंदितः ॥ २७ ॥ व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह ॥ तत्रैवास्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिंतयन् विभुः ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः ॥ गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्टा प्रार्थयितुं विभुम् ॥ २९ ॥ तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेंद्रं पाकशासनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥ ३० ॥ इंद्र तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाधिपाय ते ॥ वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दिताः ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽग नानादेशेषु दुःखिताः ॥ तस्मादागत्य देवेंद्र जहि शत्रून्नरिंदम ॥ ३२ ॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ लज्जयावनतो भूत्वा पश्यन् भूमिं च चक्षुषा ॥ ३३ ॥

करनेवाले लोकप्रसिद्ध स्तोत्रोंसे प्रसन्न करने लगे ॥ ३० ॥ "हे इंद्र ! हे सर्वदेवताओंके ईश ! तुमको नमस्कार है. तुमारे विना दैत्योंद्वारा हम लोग महापीडित हैं अर्थात् दैत्योंने बडा क्लेश दिया है ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्ट होनेसे दुःखित होकर हमलोग अनेक देशोंमें घूमते फिरते हैं. इसकारण हे देवेंद्र ! चलकर शीघ्र शत्रुओंका नाश करो" ॥ ३२ ॥ यह स्तुति देवताओंने करी तब इन्द्र कन्दरासे बाहर निकला; परन्तु लाजके मारे शिर झुकाये नेत्रोंसे पृथ्वीकी ओर देखता हुआ ॥ ३३ ॥ दुःखसे कंठभर

आया, जिससे कुछभी बोला नहीं गया. तब इन्द्रकी यह भयभीत दशा जानकर बृहस्पतिजी बोले ॥ ३४ ॥ " हे इन्द्र ! तुम शंका मत करो. यह जगत् कर्माधीन है; मान–अपमान, सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय ॥ ३५ ॥ ये सब पूर्वजन्मार्जित कर्मोंके अनुरोधसे होते हैं. इसमें संशय नहीं है और यह जीव कर्मका अनुगामी है और दैवकी प्रेरणासे काल पाकर दुःख अपने आप आकर उपस्थित हो जाता है ॥ ३६ ॥ बुद्धिवान् लोग दुःख प्राप्त होनेपर कुछ शोच नहीं करते हैं और सुख मिलनेसे

न किंचिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः ॥ तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेंद्रं भयानतम् ॥ ३४ ॥ मा शंका ते सुरपते ! कर्माधीनमिदं जगत् ॥ मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥ ३५ ॥ पूर्वकर्मानुरोधेन भवंत्येव न संशयः ॥ जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः ॥ ३६ ॥ प्रज्ञाः प्राप्य न शोचंति न प्रहृष्यंति वै सुखात् ॥ तस्मात् प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो ! ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्य मघवन् ! दुःखं नैव शोचितुमर्हसि ॥ इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपः ॥ ३८ ॥ ॥ इंद्र उवाच ॥ ॥ परस्त्रीसंगदोषेण बलं वीर्यं यशो मम ॥ मंत्रशक्तिः शास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मानद ॥ ३९ ॥ अभवं नष्टवीर्योऽहं तूष्णीं तेन वसाम्यहम् ॥ पाकशासनवाक्यं तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥ ४० ॥

प्रसिद्ध नहीं होते हैं. इसकारण, हे प्रभो ! तुमको यह दुःख प्रारब्धसे मिला है ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! यह दुःख पाय तुमको शोच नहीं करना चाहिये. देवाधीश इन्द्रसे जब इसप्रकार गुरुदेव ( बृहस्पति ) ने कहा तब ॥ ३८ ॥ इन्द्र बोला हे मानद ! पराई स्त्रीके संगके दोषसे हमारा बल, वीर्य, यश, मन्त्रशक्ति, शास्त्रशक्ति, विद्याशक्ति, यह सब नष्ट हुये ॥ ३९ ॥ मैं नष्टवीर्य हूं, इसकारण चुपचाप यहां वास करता हूं. " इन्द्रका वाक्य सुनकर बृहस्पतिसहित सब देवतागण ॥ ४० ॥

इन्द्रको फिर बल देनेके अर्थ एकन्तमें परस्पर विचार करने लगे. तब दयाभावसे बृहस्पतिजी बोले ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिने कहा–"यह वैशाखमास है. मधुसूदन भगवान्का प्यारा है. इस माधवप्रिय मासमें सब तिथियाँ पुण्यकी देनेवाली हैं ॥ ४२ ॥ उनमेभी शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीया विशेष है. उस दिन जो कोई श्रद्धापूर्वक स्नान–दान आदि करता है ॥ ४३ ॥ उसके हजारों पाप निस्सन्देह नाश हो जाते हैं. तथा ऐश्वर्य, बल, धैर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४४ ॥ इसकारण, अक्षयतृतीयाके दिन बलिके द्वेषी

मंत्रयामासुरेकांते पुनस्तस्य बलाप्तये ॥ तदा गुरुश्च तान् प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैखाखनामाऽयं प्रियो वै मधुघातिनः ॥ सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ ४२ ॥ तत्रापि च सिते पक्षे तृतीया चाक्षयाव्यया ॥ यस्तस्यां स्नानदानादि श्रद्धया च करोति वै ॥ ४३ ॥ तस्य पापसहस्राणि नश्यंत्येव न संशयः ॥ अनवद्यं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवंति च ॥ ४४ ॥ तस्मात् तस्यां तृतीयायां हरिणा बलिविद्विषा ॥ स्नानदानादिसद्धर्मान् कारयामो हिताप्तये ॥ ४५ ॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्यायां मंत्रशास्त्रयोः ॥ बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥ ४६ ॥ इत्येवं तु विचार्याथ गुरुर्देवैः समाहितः ॥ इंद्रेण कारयामास धर्मानेतान् हरिप्रियान् ॥ ४७ ॥

इन्द्रसे स्नानदानआदि सद्धर्म हितसाधनार्थ कराने चाहिये ॥ ४५ ॥ तो विद्या और मंत्रशास्त्रमें वही शक्ति जो पहले थी, इस स्नानदानादिके प्रभावसे आ जायगी और बल, धैर्य यशभी पहलेके समान बढ जायगा ॥ ४६ ॥ देवताओंसहित बृहस्पतिजीने इसप्रकार विचार कर इन्द्रसे हरिभगवान्के प्यारे वैशाखधर्म कराये ॥ ४७ ॥

अक्षयतृतीयाके दिन भुक्तिमुक्तिफल देनेवाले व्रत करनेसे पूर्ववत् बल-धैर्यआदिसे इन्द्र युक्त हुआ ॥ ४८ ॥ परस्त्रीसंगमका दोषभी शीघ्र दूर हो गया. तदनंतर इन्द्र अपने सब पापोंसे छूट गया, जैसे चन्द्रमा राहुसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तथा देवताओंके मध्यमें इन्द्र पूर्वकेसमान शोभाको प्राप्त हुआ. तिसपीछे इन्द्रने सब देवताओंको संग लेके असुरोंको जीत लिया ॥ ५० ॥ अक्षयतृतीयाके माहात्म्यसे भाग्यवान् इन्द्र विभवसमेत शंख-भेरी आदि बाजोंके शब्दसहित अमरावतीमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५१ ॥

अक्षय्यायां तृतीयायां भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥ तेन पूर्ववदेवासीद्बलं धैर्यादिकं विभोः ॥ ४८ ॥ परस्त्रीसंगदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत ॥ पश्चाद्धताशुभः शक्रो राहोर्मुक्त इवोडुपः ॥ ४९ ॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा ॥ पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनिर्जित्य तथाऽसुरान् ॥ ५० ॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् ॥ विवेश विभवैः सार्द्धं शंखतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ५१ ॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः ॥ ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथा पुरा ॥ ५२ ॥ पिंडभागांश्च पितरो यथापूर्वं प्रपेदिरे ॥ स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानां च पराजये ॥ ५३ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ प्रख्याता मर्त्यलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥ ५४ ॥

अनन्तर इन्द्रसे आज्ञा लेकर सब देवता भाने अपने स्थानको गये और पूर्ववत् अपना अपना यज्ञ आदिकोंका भाग लेने लगे ॥ ५२ ॥ पितरलोग पूर्ववत् पिंडभाग पाने लगे मुनिजन स्वाध्यायसे प्रसन्न होनेसे संतुष्ट हुवे. दैत्यलोग पराजित हुये ॥ ५३ ॥ उसी समयसे अक्षयतृतीया इसलोकमें प्रसिद्ध है और सबलोकोंमें देव, ऋषि, पितर इन

सबको सन्तुष्ट करनेवाली है ॥ ५४ ॥ इससे परे अधिक पुण्यफल देनेवाली, सब कर्मबन्धनोंको काटनेवाली तथा मनुष्योंको भुक्ति-मुक्ति देनेवाली दूसरी तिथि नहीं है. इसीसे इसका नाम अक्षयतृतीया है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथन नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ श्रुतदेवजी बोले " हे राजेन्द्र ! सब पुण्यतमा तिथियोंमें वैशाखशुक्लद्वादशी सब पापोंका विनाश करनेवाली है ॥ १ ॥ जिन्होंने इस द्वादशीका सेवन नहीं किया, उनके दान, तप उपवास और व्रत आदि करनेसे क्या फल है ? तथा इष्टापूर्वसे उनको क्या फल प्राप्त हो सकता है ? ॥ २ ॥ ग्रहण होनेपर

तस्मात् पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृतंनी ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाक्षयाह्वया ॥५५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ तिथिष्वेतासु पुण्यासु द्वादशी सितपक्षिणी ॥ वैशाखमासे राजेंद्र सर्वाघौघविनाशनी ॥ १ ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशी यैर्न सेविता ॥ २ ॥ गंगायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् ॥ द्वादश्यां माधवे मासि योग्याय ब्रह्मणेर्पणात् ॥ ३ ॥ गंगायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् ॥ तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् ॥ ४ ॥ यद्दत्तं चार्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे ॥ सिक्थेसिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥५ ॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम् ॥ निर्धूताखिलबंधस्तु विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥

गंगाजीमें हजार गोदान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन एक गौ योग्य ब्राह्मणाके अर्थ अर्पण करनेसे मिलता है ॥ ३ ॥ अकालमें गंगाजीपर करोडोंको भोजन करानेसे जो फल मिलता है, वह फल वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जो वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन एक एक चुटकी अन्न सुपात्रके अर्थ देता है, उसको कोटिब्राह्मणभोजनका फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जो द्वादशीके दिन मधुसहित तिलपात्र दान करता है, वह सब बंधनोंसे

उद्धार विष्णुलोकको जाता है ॥ ६ ॥ जो शुक्ल एकादशीमें रात्रिभर जागरण करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है और सब देवता उसपर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ७ ॥ करोड़ों सूर्यचन्द्र-ग्रहणसमय तीर्थमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल एकादशीके दिन प्रातःस्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो द्वादशीके दिन कोमल तुलसी दलोंसे विष्णुका पूजन करता है, वह अपने सात कुलोंका उद्धार कर वैकुंठको जाता है ॥ ९ ॥ तथा वैशाखशुक्ल द्वादशीके दिन जो बछरासमेत गोदान करता है, वह अपने करोड़ों कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकका अधिकारी होता है ॥ १० ॥ वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन जो मनुष्य यम, पितर, गुरु, देवता इनके लिये जलका घट



एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणं हरेः ॥ स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥७॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणं तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्र फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥ ८ ॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥ स सप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥ ९ ॥ द्वादश्यां माधवे मासि यो दद्याद्गां सवत्सकाम् ॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥१०॥ यमं पितॄन् गुरून् देवान् विष्णुमुद्दिश्य मानवः ॥ माधवे शुक्लद्वादश्यां सोदकुंभं सदक्षिणम् ॥ ११ ॥ दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ प्रयागे प्रत्यहं चैव कुर्याद्यः कोटिभोजनम् ॥१२॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं षड्रसान्नैर्मनोरमैः ॥ तत्फलं समवाप्नोति मधुसूदनशासनात् ॥ १३ ॥ शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

दक्षिणासहित ॥ ११ ॥ और दही अन्न दान करता है, उसका फल सुनो. हे ! प्रयागतीर्थमें करोड़ोंको प्रतिदिन भोजन करावे ॥ १२ ॥ एक वर्षपर्यन्त इसप्रकार ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य फल होता है, वह फल उसको मधुसूदन भगवानकी आज्ञासे प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जो वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन शालिग्राम-शिला दान करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १४ ॥

सातद्वीपवाली भूमिका दान गंगामें ग्रहणके समय जो कोटिवार देवै तो उसके तुल्य फल प्राप्त होता है ॥१५॥ द्वादशीके दिन मधुसूदनभगवान्‌को जो दूधसे स्नान कराता है, उसको राजसूय और अश्वमेध इन दोनों यज्ञोंके करनेका फल मिलता है ॥ १६ ॥ सोई फल गंगाके स्नानसे प्राप्त होता है; इसमें संशय नहीं है और त्रयोदशीके दिन जो दूधदही मिलाकर विष्णुका यजन करता है ॥ १७ ॥ तथा उसीमें शर्करा-मधु-घृत-सहित मधुसूदनकी प्रीतिके अर्थ भक्तिपूर्वक मधुसूदन भगवान् विष्णुको पंचामृतसे स्नान

सप्तद्वीपवतीं भूमिं गंगायां च रविग्रहे ॥ यो दद्यात् कोटिवारं तु तेन तुल्यं फलं विदुः ॥ १५ ॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यां यत् फलं परिजायते ॥ १६ ॥ तत्फलं समवाप्नोति गंगायां नात्र संशयः ॥ त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः ॥१७॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये॥ पंचामृतैश्च यो विष्णुभक्त्या संस्नापयेद्विभुम्॥१८॥स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके हीयेत यो दद्यात् पानकं ह्यस्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥ १९ ॥ जीर्णं पापं जहात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ सायाह्ने चैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम् ॥२०॥ भवेन्मुक्तः कर्मबंधादुर्वारुकरसायनात् ॥ इक्षुदंडं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥ २१ ॥

कराता है ॥ १८ ॥ वह अपने सब कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकको जाता है, तथा जो सायंकाल हरिभगवान्‌की प्रीतिके अर्थ शर्बत दान करता है ॥ १९ ॥ उसके पुराने पाप ऐसे दूर हो जाते है; जैसे सांप अपनी पुरानी कांचलीको त्याग देता है. जो सायंकालमें रसीली ककडीका दान करता है ॥२० ॥ वह उस रसीली ककडी दानके प्रतापसे कर्मबन्धनसे छूट जाता है तथा जो कोई ईख, द्राक्ष और आंबके फलोंका दान करता है ॥ २१ ॥

उसके कुलमें भी पीढ़ीपर्यन्त सन्तान होती रहती है. जो द्वादशीके दिन सायंकालमें चन्दनादिका दान करता है वह सम्पूर्ण आगन्तुक व्याधियोंसे छूट जाता है इसमें संशय नहीं है ॥२२॥ हे राजसत्तम ! द्वादशीके दिन जो कोई कुछभी पुण्य करता है ॥ २३ ॥ तो वैशाखशुक्लपक्षमें किया हुआ अक्षय फल देनेवाला होता है. अब हे राजन् ! इसकी प्रसिद्धि जिससे हुई, सो कहता हूं ॥ २४ ॥ सुननेसे सब पापोंका नाश करनेवाली, सर्व मंगलदायिनी है. पूर्वसमय काश्मीर देशमें एक देवव्रत नाम ब्राह्मण

न विच्छित्तिः संततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् ॥ यो दद्याद्गंधलेपं तु सायान्हे द्वादशीदिने ॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २२ ॥ यत्किंचित् कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ! ॥ २३॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि केन जातेति भूमिप ! ॥ २४ ॥ श्रवणात् सर्वपापघ्नीं सर्वमंगलदायिनीम् ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥ २५ ॥ तस्यासीन्मालिनी नाम तनया पापरूपिणी ॥ ददौ तां सत्यशीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥ २६ ॥ तामुद्राह्य ययौ धीमान् स्वदेशं सनातनम् ॥ रूपयौवनसंपन्ना तस्य नैव प्रियाऽभवत् ॥ २७ ॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः ॥ नान्यस्य कस्यचिद्वेषी नांचिनां नृपते पतिः ॥ २८ ॥

था ॥ २५ ॥ उसकी मालिनी नाम एक पापरूपिणी कन्या सत्यशील नाम विद्वान ब्राह्मणके साथ विवाही गई ॥ २६ ॥ उसको विवाह कर वह बुद्धिमान सत्यशील अपने सनातन देशको आता हुआ. रूपयौवनसे युक्त होनेपर भी वह भी उसकी प्यारी नहीं हुई ॥ २७ ॥ वह निठुर होकर सदा उससे द्वेष रखते. हे राजन ! उसके सिवा

अन्य किसीसे कुछ द्वेष नही रक्खै ॥ २८ ॥ वह उस पतिपर क्रोध कर अपने वशमें करनेकी इच्छासे अन्य स्त्रियोंसे वशीकरण पूछती हुई, जिनको उनके पतियोंनें पहलेही त्याग दिया था ॥ २९ ॥ तब वे स्त्रियां कहने लगीं कि–"तुमारा पति तुमारे वशमें हो जायगा; हमको भली भांति विश्वास है ॥ ३० ॥ पहले हमने अपने पतिको वशीकरण औषध देकर वशमें कर लिया था. तुम योगिनीके निकट जाओ. वह तुमको औषधी देवेगी ॥ ३१ ॥ तुम कुछ शोचविचार न करना, तुमारा पति दासके

तस्मिन् सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलंपटा ॥ अपृच्छत् प्रमदा राजन् यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥ २९ ॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्त्ता भविष्यति ॥ अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥३०॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा ॥ योगिनीं त्वं तु गच्छाद्य दास्यते भेषजं शुभम् ॥ ३१ ॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत् पतिः॥ योगिनीमंदिरे गत्वा तासां वाक्येन भूपते ॥ ३२ ॥ प्रासादमतुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी मती ॥ शतस्तंभसमायुक्तां कुटीं भेजे त्वरान्विता ॥ ३३ ॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवा-पातपालिकाम् ॥ प्रावृतां दीर्घवस्त्रेण संधिते नाजवंतिना ॥ ३४ ॥ दीर्घाभिः शुभ्रभित्तीभिः प्रावृता दीप्तिसंयुता ॥ परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैः शनैः ॥ ३५ ॥

१५ तुल्य हो जायगा. " हे राजन् ! यह सुनकर वह उन स्त्रियोंके कथनानुसार योगिनीके मंदिरमें चली ॥३२॥ और योगिनीको अत्यन्त प्रसन्न करनेकी इच्छासे वह दुराचारिणी बहुत शीघ्र उस कुटीमें पहुंची, जहां सौ खंभे लग रहे थे ॥ ३३ ॥ वह कुटी बहुत लंबी चौडी, कांतिवाली, जिसके चारौ ओर झालरदार वस्त्र लगे हुये, जिनमें गोटा कि-नारी शोभा दे रही ॥ ३४ ॥ चारौ ओर बडी बडी भित्तियोंमें सफेदी हो रही, दीपक जगमगा रहे. ऐसे सुन्दर स्थानमें जो सेवा करनेको आये उनको देख रही ॥ ३५ ॥

[illegible] रही. इसप्रकार योगिनीसे जब उन्होंने प्रार्थना करी, तब उस योगिनीने प्रसन्न हो, मनको क्षोभ करानेवाला वशीकरण मंत्र बताया ॥ ३६ ॥ तब उसने नमस्कार कर अपने पांवोंसे हीरा जडी हुई बहुत चमकीली अंगूठी उतार कर भेंट दी ॥ ३७ ॥ उसमें उत्तम सुवर्ण जडा हुआ, सूर्यकी किरणोंके [illegible] अंगूठीको देखकर प्रसन्न हुई ॥ ३८ ॥ उसके पतिके अपमानसे उसके हृदयका वृत्तान्त जानकर हे राजन् ! वह योगिनी उसके हि-

[illegible] सा तु जपंती प्रार्थिता तया ॥ ददौ वश्यकरं मंत्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३६ ॥ ततः सा प्रणता भूत्वा पद्भ्यां दत्त्वां-[illegible] ॥ वज्रमणिकयसंयुक्तमतिरिक्तप्रभान्वितम् ॥ ३७ ॥ मृदुकांचनसंयुक्तं भानुरश्मिसमद्युति ॥ ततो दृष्ट्वा तु संतुष्टा पादस्थं चांगुलीयकम् ॥ ३८ ॥ तद्दत्तं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् ॥ तदोक्ता हि तया भूप तापस्या हितयुक्तया ॥ ३९ ॥ चूर्णं रक्षान्वितां [illegible] ॥ चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥ ४० ॥ भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुंदरीम् ॥ नाप्रियं [illegible] ॥ ४१ ॥ चूर्णं रक्षां गृहीत्वा सा प्राप्ता भर्तृगृहं पुनः ॥ प्रदोषे पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥ ४२ ॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया ॥ तदा स पीतचूर्णस्तु भर्ता नृपवरोत्तम ! ॥ ४३ ॥

[illegible] ॥ ३९ ॥ यह [illegible] सब प्राणियोंको वशमें करनेवाला है; यह चूर्ण अपने पतिको देकर यह विभूति अपने गलेमें बांध ॥ ४० ॥ तुम्हारा पति तुम्हारे [illegible] और तुम्हारे दुःखियोंको देखकरभी कुछ नहीं करेगा ॥ ४१ ॥ तब रक्षा और चूर्णको लेकर वह अपने घर पतिके [illegible] चूर्ण पतिको दे दिया ॥ ४२ ॥ और अपने गलेमें विभूति बांध ली. पर इसमें रक्षेका उसने कुछ विचार न किया. तब हे नृप सत्तम !

उस चूर्णको पीनेसे उसके भर्ताको ॥४३॥ उस चूर्णसे क्षय रोग हो गया कि जिससे उसका पति दिनदिन क्षीण होने लगा ! गुदस्थानमे बडा घोर घाव हो जानेसे कीडे पड गये ! ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! कुछ दिनोंके बीत जानेपर जब उसके पतिकी यह दशा हो गई, तब वह पुंश्चली दुष्टाचारिणी भी अपनी इच्छाके अनुसार घूमने लगी ॥ ४५ ॥ तेजक्षीण हो जानेसे उसके पतिकी इन्द्रियां व्याकुल हो गई और दिनरात दुःखित होकर कहने लगा कि—" हे शोभने ! मै तुमारा दास हूं ॥ ४६ ॥ मै तुमारी

तच्चूर्णात् क्षयरोगोऽभूत् पतिः क्षीणो दिने दिने ॥ गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥ ४४ ॥ दिनैः कतिपयै राजन् ! पत्यावेवं व्यवस्थिते ॥ उवास स्वेच्छया सापि पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥४५॥ हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाकुलेंद्रियः ॥ क्रंदमानो दिवारात्रं दासोऽस्मि तव शोभने ! ॥ ४६ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं नेच्छेहमपरां स्त्रियम् ॥ तत्तस्य विदितं ज्ञात्वा भीता सा मेदिनीपते ! ॥ ४७ ॥ अलंकारकृते पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हि सा ॥ योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥ तया च भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशांतये ॥ दत्ते च भेषजे तस्मिन् स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणात् पतिः ॥ ४९ ॥ पूर्वचूर्णोद्भवो दाहः शांतस्तेनाभवत्तदा ॥ ततःप्रभृति भर्ता च वश्योऽभूद्वेश्मसंस्थितः ॥ ५० ॥

शरण हूं, मेरी रक्षा करो; मैं दूसरी स्त्रीकी इच्छा नही करता हूं" हे राजन् ! इस प्रकार अपने पतिका वृत्तान्त जानकर वह बहुत डर गई ॥ ४७ ॥ और घबडाकर शोचने लगी कि " पति जीता रहेगा तो मै वस्त्र आभूषण धारण किये रहूंगी." यह विचार कर योगिनीके पास दौड गई और उससे सब वृत्तांत कहा ॥ ४८ ॥ तब योगिनीनें दूसरी औषधी दाहशांतिके अर्थ दी उस औषधीके देनेसे उसका पति तुरन्त अच्छा हो गया ॥ ४९ ॥ पहले चूर्णसे उत्पन्न हुआ दाह इससे

हाल हो गया. उसी समयमें उसका पति वशमें हो गया और घरहीमें रहने लगा ॥ ५० ॥ घरके कामके मिस उपपति घरमें रहने लगे और सब जातिके व्यभिचारी मनुष्यभी घरमें रहने लगे ॥ ५१ ॥ परंतु उसके पतिके मुखमें कुछ कहनेकी सामर्थ्य नहीं रही थी. तब इसी दोषसे सब अंगोंमें उत्पन्न हुये ॥ ५२ ॥ कीडे हाडोंमें निरन्तर कालान्तक यमके समान हो गये. उन कीडोंने उसके नाक, जीभ और दोनों कानोंमें छेद कर दिये ॥ ५३ ॥ स्तन कट गये. अंगुलियोंके नख गिर



तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः ॥ सर्ववर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठंति वै गृहे ॥ ५१ ॥ न किंचिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथंचन ॥ ततस्तेनैव दोषेण सर्वांगेषु च जज्ञिरे ॥ ५२ ॥ कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालांतकयमोपमाः ॥ तैर्नासाजिह्वयोश्चासीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥ ५३ ॥ स्तनयोश्चांगुलीनां च पंगुत्वं चापि चागतम् ॥ तेन पंचत्वमापन्ना गता नरकयातनाम् ॥ ५४ ॥ ताम्रभांडे च साद्ग्धाऽयुतानि दश पंच च ॥ श्वानयोनिषु संजाता शतवारं पुनःपुनः ॥ ५५ ॥ छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिपूर्णा निरंतरम् ॥ छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहे गृहे ॥ ५६ ॥ पश्चात् सौवीरदेशेषु पद्मबंधोर्द्विजस्य च ॥ दास्या गृहे शुनी जाता बहुदुःखसमाकुला ॥ ५७ ॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छांत्रिसान्वुग ॥ कृमिपूर्णशिरास्यंतकृमियोनिश्च तिष्ठति ॥ ५८ ॥

गये. पांवोंसे पंगुली हो गई. इस प्रकार क्लेश पाती हुई देह छोडकर नरक भोगने लगी ॥ ५४ ॥ पंद्रह हजार वर्षोंतक ताम्रभांडनाम नरकमें पड जल्ती रही: फिर सौवार कुत्तोंकी योनिमें जन्मी ॥ ५५ ॥ नाक कट गई. कान फट गये: मस्तकमें निरन्तर कीडे पड रहे: पूंछ कट गई: पांव लंगडे हो गये. घरघरमें पिटती हुई घूमती रही ॥ ५६ ॥ पश्चात् सौवीरदेशमें पद्मबन्धु नाम ब्राह्मणकी दासीके घर कुतियाका जन्म पाया. तबभी बहुत दुःखसे व्याकुल हुई ॥ ५७ ॥ कान फट गये. नाक टूट

गई. पूंछ कट गई. पाँवोसे मी चला नहीं जाता ! मस्तकमें कीडे भर गये; योनिमें कीडे पड गये ॥ ५८ ॥ इसप्रकार हे राजन् ! उस जन्ममें भी क्लेशसहती हुई दैवयोगसे कर्मफल पूरे हो जानेपर वैशाखमास मेषके सूर्यमें ॥ ५९ ॥ शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन पद्मबन्धुका पुत्र नदीमे स्नान कर पवित्र हो गीले वस्त्र पहरे घरको आया ॥ ६० ॥ अपने घर तुलसीके थांभ लेके समीप आकर उसने अपने पांव धोये. उसी थाँभ लेके नीचे वह कुतिया सो रही थी ॥ ६१ ॥ सूर्यके उदयसे पहले उस पांव धोये हुये, जलमें लोट

एवं क्लेशं सह्यमाना तस्मिञ्जन्मनि भूमिप ! ॥ दैवात् कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥ ५९ ॥ शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबंधोस्तनूद्भवः ॥ नद्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥ ६० ॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिनेजह ॥ वेदिकायामधोदेशे सा शुनी स्वापमागता ॥ ६१ ॥ प्राक् सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता ॥ सद्योध्वस्ताशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत् क्षणात् ॥ ६२ ॥ स्मृत्वा कर्म कृतं पूर्वं सा शुनी तापसंयुता ॥ चुक्रोश करुणं दीना मुने ! त्राहीति वै पुनः ॥ ६३ ॥ स्वकर्म च मुनींद्राय स्मृत्वाऽऽचख्यौ भयाकुला ॥ भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥ ६४ ॥ याऽन्यापि युवती ब्रह्मन् ! भर्तुर्वश्यं समाचरेत् ॥ वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने ॥ ६५ ॥

जानेसे कुतियाके सब पाप दूर हो गये और उसको पूर्वजन्मोंका तुरंत स्मरण हुआ ॥ ६२ ॥ पूर्वजन्ममें कियेहुये कर्मोंका स्मरण कर वह कुतिया तापसे व्याकुल हुई, फिर दीन हो करुणस्वरसे "त्राहि त्राहि" करने लगी ॥ ६३ ॥ और भयसे विकल होकर उस मुनिवरसे अपने कर्मोंका स्मरण कर अपना वृत्तान्त कहने लगी कि—मैंने अपने पतिको विष दिया तथा अनेक कुकर्मोंद्वारा चरित्र दिखाये ॥ ६४ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कोईभी धर्महीना दुराचारिणी स्त्री अपने पतिको वशमें करती है, वह ताम्रभांड-

बढ़ाने वाली जाती है ॥ ६५ ॥ अपना पतिही स्वामी है; पतिही गुरु है; पतिही उत्तम देवता अर्थात् इष्टदेव है. तो साध्वी स्त्री उसके साथ अनुचित वर्ताव कर कैसे सुखको प्राप्त हो सकती है ? ॥ ६६ ॥ पतिको दुख देनेवाली स्त्री सौ जन्मतक तिर्यग्योनि ( पशुयोनि ) में जन्मती है अर्थात् सौ बार कुतिया होती है और उसके शरीरमें सैकड़ों कीड़े पड़ जाते हैं. इस कारण, हे ब्राह्मण ! स्त्रियोंको योग्य है कि सदैव अपने पतिकी आज्ञा मानती रहें ॥६७॥ मैं, फिर इस दुःख पानेवाली दुष्टयोनिमें नहीं आऊं ऐसा उपाय जो आप मेरा उद्धार करें. हे ब्रह्मन् ! इस समय मैं आपके सामने खड़ी हूं ॥ ६८ ॥ इसकारण हे ब्रह्मन् ! मुझ दुष्टा पापात्माको अपना पुण्य देकर मेरा उद्धार

भर्ता नार्या गुरुर्भर्ता भर्ता दैवतमुत्तमम् ॥ विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात् ? ॥ ६६ ॥ तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च ॥ तस्माद्भूसुर ! कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तुर्वचः सदा ॥ ६७ ॥ नाहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम् ॥ यदि चोद्धरसे ब्रह्मन्नद्य त्वं हि समुखाम् ॥ ६८ ॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन् ! दुष्कृतां पापचारिणीम् ॥ सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ ६९ ॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन् ! द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी ॥ तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥ ७० ॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मन् ! तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ यस्यां तु भूसुरः स्नातः स्वगृहे मनुजः किल ॥ ७१ ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते नात्र संशयः ॥ तत्र दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ७२ ॥

करो वैशाखके शुक्लपक्षमें ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! पुण्यशालिनी द्वादशीके दिन स्नानदानअन्नभोजन–आदि जो सुकृत आपने किया है, वह मुझको दीजिये ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन् ! दुराचारिणी होनेपरभी आपके सुकृतदानसे मेरी मुक्ति हो जायगी. जिस तिथिमें भूसुर ( ब्राह्मण ) ने स्नान किया अर्थात् वैशाखशुक्लद्वादशीको जो मनुष्य अपने घरमें स्नान कर लेता है ॥ ७१ ॥ सो उसको सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं. द्वादशीके दिन तप, दान, हवन, देवपूजन आदि जो कुछ सुकृत किया

जाय ॥ ७२ ॥ उसका फल अक्षय जानिये, जो द्वादशीके दिन किया जाय. इसप्रकारका जो फल हो, वह सब मुझको देओ ॥७३॥ द्वादशीके दिन व्रतस्थ रहकर त्रयोदशीके दिन पारण करनेसे जो फल होता है, उससे मोक्ष प्राप्त होगी ॥ ७४ ॥ हे महाभाग ! हे दीनवत्सल ! मुझ दीनके ऊपर दया करो. दीननाथ जगन्नाथ जनार्दन भगवान् तुम्हारेभी नाथ है ॥ ७५ ॥ भगवान्‌के भक्तभी एसेही होते हैं. जैसा राजा वैसी उसकी प्रजा होती है. हे वैवस्वतपदध्वंसिन् ! मैं बहुत दुःखी हूं; मेरी रक्षा करो ॥ ७६ ॥ हे दीनवत्सल. ! मै तुम्हारे द्वारपर रहनेवाली दीन कुतिया हूं. हजारों ब्रह्महत्या और हजारो गोहत्या ॥ ७७ ॥ और करोडों अगम्य दोषोंसे उत्पन्न हुये पापोंको यह

तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने ॥ एवंविधं फलं यत् स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥ ७३ ॥ द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् ॥ यत् फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ७४ ॥ दयां कुरु महाभाग ! दीनायां दीनवत्सल ! ॥ दीननाथो. जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ॥ ७५ ॥ तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः ॥ वैवस्वतपदध्वंसिन् ! परित्राहि सुदुःखिताम् ॥ ७६ ॥ त्वद्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल ! ॥ ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ॥ ७७ ॥ अगम्यानां च कोटिश्च दहत्येषा शुभा तिथिः ॥ तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ! ॥ ७८ ॥ मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ ! समुद्धर ॥ अंते तुभ्यं द्विजेंद्राय नम उक्तिं वदाम्यहम् ॥ ७९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शुनीमाह मुनेः सुतः ॥ स्वकृतं जंतवोऽश्नंति सुखदुःखात्मकं शुने ! ॥ ८० ॥ तस्मात् किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया ॥ यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्व्रतः ॥ ८१ ॥

तिथि नष्ट कर देती है. हे महामुने ! इस तिथिमें किया हुआ महापुण्य आप मुझको देओ ॥ ७८ ॥ और मुझ व्याकुलचित्तवालीका उद्धार करो. हे दीनजनोंके नाथ ! मुझ दीनका उद्धार करो. हे द्विजेन्द्र ! अंतमे मै तुमको नमस्कार करती हूं ॥७९॥ उसका यह वचन सुनकर उस मुनिपुत्रने कुतियासे कहा–हे कुत्ती ! अपने कियेहुये कर्मोंके सुखदुःखरूपी फल प्राणी भोगते हैं ॥८०॥ इसकारण तू क्षुद्रा और पापकर्म करनेवाली है. तू पुण्यको क्या करैगी ? जिसने रक्षा-चूर्णादिद्वारा अपने पतिको वशमें किया ॥८१॥

जो मनुष्योंके लिये पापकर्म करते हैं, उनको उससे दुःख भोगना पडता है और जो पुण्यकर्म करते है, उनके दुःखोंका परिहार होकर उनको सुख मिलता है ॥ ८२ ॥ भा०टी०
पापी मनुष्योंके लिये जो कर्म किया जाता है, वह दोनोंको भ्रष्ट करनेवाला होता है. जैसे शकर मिलाया दूध सांपको पान करानेसे ॥ ८३ ॥ केवल विष बढता है, इसीप्रकार
दुष्टजनके लिये पापकी वृद्धि होती है. ऐसे जब मुनिपुत्रने कहा, तब कुतिया बहुत दुःखी हुई ॥ ८४ ॥ फिर चीत्कार कर ऊपरको मुख उठाय उस मुनिपुत्रके पिताके

मातृभ्यां यत्र कृतं पापं स्वस्य दुःखकरं भवेत् ॥ साधुभ्यो यत् कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥ ८२ ॥ उभयभ्रंशतामेति पापेभ्यो अ०२१
यत्कृतं भवेत् ॥ शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥ ८३ ॥ विषवृद्धिकरं दुष्टमेवं पापकृतं भवेत् ॥ वदत्येवं मुनिसुते शुनी
दुःखितरूपिणी ॥८४॥ पुनश्चुक्रोशोर्ध्वमुखी तत्पित्रे बहुभाषिणी ॥ पद्मबंधो परित्राहि शुनीं त्वद्वारवासिनीम् ॥ ८५॥ त्वदुच्छिष्टाश-
नीं नित्यं त्वं पाहीति पुनःपुनः ॥ स्वपोष्या ये हि वर्त्तते गृहस्थस्य महात्मनः ॥ ८६ ॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति वेदविदां
मतम् ॥ चांडाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः॥८७॥ गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः॥अशक्तं नोद्धरेत् पोष्यं रोगाद्युप-
हतं यदि ॥ सोऽधः पतेन्न संदेह इति वेदविदां मतम् ॥ ८८ ॥

पद्मबंध ऋषि- हे पद्मबंध ! मेरी रक्षा करो. मैं तुम्हारे द्वारपर रहनेवाली कुतिया हूं ॥ ८५ ॥ तुमारा झूठा प्रतिदिन खाती हूं. बारबार कहती हूं, तुम मेरी रक्षा करो
महात्मा गृहस्थके घर जो पालन किये रहते हैं ॥ ८६ ॥ उनका उद्धार करना उचित है. यह वेदके जाननेवालोंका मत है. चांडाल, कौआ, कुत्ता ये और प्रतिदिन ॥ ८७ ॥
गृहस्थोंके दयापात्र हैं. प्रतिदिन बलिभोजन करनेवाले, अपने पाले हुए और रोगसे पीडित जीवोंका उद्धार जो प्राणी नहीं करते हैं, वे अवश्य नरकमें गिरते हैं.

यह वेदवेत्ताओंका मत है ॥ ८८ ॥ एक परमेश्वर सब जगत्का कर्ता है. वह सबको उत्पन्न कर सब जंतुओंकी रक्षा दाराआदिरूपव्यपदेशकरके करता है. इसकारण, " अपने पालेहुये जीवकी रक्षा करना " यह परमेश्वरकी आज्ञा है ॥ ८९ ॥ उस जगत्पोषक और जीवरक्षकरूप भगवान्की आज्ञाको उल्लंघन कर जो अज्ञानी बनता है, वह दैवके कोपसे अपना सर्वस्व नष्ट कर अन्तकालमें नरकगामी होता है ॥ ९० ॥ तुम कर्तव्यके पालन करनेवाले हो, दयालु हो, अतः मुझ दुष्टमतिवालीका उद्धार करो ॥ ९१ ॥ अपने घरके भीतर उस दुःखसे पीडित कुतियाका यह वचन सुनकर दयानिधि पद्मबंधु मुनि शीघ्रही घरसे बाहर निकले ॥ ९२ ॥ और कुतियासे कहा कि

कर्तारमेकं जगतां हि कर्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजंतून् ॥ दारादिरूपव्यपदशेतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥ ८९ ॥ तां पोष्यरक्षां परिहृत्य जंतुर्दैवेन क्लृप्तां यदि वर्ततेऽन्यधीः॥सदैव द्रोग्धा सकलस्य हंता कीनाशलोकं नितरां प्रयाति ॥ ९० ॥ कर्तव्यत्वाद्दयालुत्वाद्दीनामुद्धर दुर्मतिम् ॥९१॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखार्ताया गृहे स तु॥निश्चक्राम गृहात्तूर्णं पद्मबंधुर्दयानिधिः॥९२॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् ॥ स तु पुत्रवचः श्रुत्वा तमेवं प्राह विस्मितः ॥ ९३ ॥ पद्मबंधुरुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं मया ॥ न साधूनामिदं वाक्यं भवतोह वरानन ॥ ९४ ॥ आत्मसौख्यकराः पापा भवंति परिभाविताः ॥ पश्य पुत्र ! जनाः सर्वे परोपकरणाय वै ॥९५॥ शशिः सूर्योऽथ पवनो मेदिनी हुतभुग् जलम् ॥ चंदनं पादपाः संतः परोपकरणे स्थिताः॥९६॥

" क्या बात है ? " तब पुत्रने सब वृत्तान्त कहा. तब मुनि, पुत्रके वचन सुनकर विस्मित हो, उससे इसप्रकार कहने लगे ॥९३॥ " हमारे पुत्र होकर तुमने यह क्या कहा ? हे पुत्र ! साधुओंको ऐसा वाक्य नहीं कहना चाहिये ॥ ९४ ॥ जो अपने आत्माको सुख देनेवाले कर्म करते हैं और दूसरेका नहीं करते वे पापी दूसरे लोगोसे अपमानित होते हैं. हे पुत्र ! देखो, सब प्राणी परोपकारनिमित्त हैं ॥ ९५ ॥ चंद्र, सूर्य, पवन, पृथ्वी, अग्नि, जल, चंदन, वृक्ष और सन्तजन ये परोपकारमे स्थित हैं ॥ ९६ ॥

अस्थिदानं कृतं पुत्र! कृपया हि दधीचिना ॥ देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान् महाबलान् ॥९७॥ कपोतार्थे स्वमांसानि शिबिना भूभुजा पुरा ॥ सदत्तानि महाभाग ! श्येनाय क्षुधिताय वै ॥९८॥ जीमूतवाहनो राजा पुरासीत् क्षितिमंडले ॥ तेनापि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥ ९९ ॥ तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता ॥ शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति ॥ १०० ॥ किन्न दीपयते चंद्रश्चांडालानां गृहे सदा ॥ तस्मादहं शुनीमेतां याचंतीं च पुनःपुनः ॥ १०१ ॥ उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पंकमग्नां च गां यथा ॥ इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ १०२ ॥ दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसंभवम् ॥ शुनि ! गच्छ हरेर्धाम निर्धूताखिलकल्मषा ॥ १०३ ॥ तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याभरणभूषिता ॥ विमुच्य देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥ १०४ ॥

हे पुत्र ! दधीचि मुनिने देवताओंके उपकारनिमित्त दैत्योंको बलवान् जानकर यत्नपूर्वक अस्थिदान किया ॥९७॥ पूर्वसमय राजा शिबिने अपना मांस कपूतरके निमित्त दिया. तब भूखे श्येन (बाज) के कपूतरपर झपेट किया था ॥९८॥ तथा पहले एक जीमूतवाहन नाम राजा भूमण्डलमें हुआ, उसने महात्मा गरुडके अर्थ अपना जीवन दे दिया ॥९९॥ पस: आपको तो दयालु होना चाहिये. मेघ शुद्ध स्थानपर वर्षता है, क्या अशुद्धस्थानपर नहीं वर्षता है ? अर्थात् सर्वत्र वर्षता है ॥ १०० ॥ चन्द्रमा क्या चांडालके घर प्रकाशित नहीं करता है ? इसकारण बारंबार मुझसे प्रार्थना करनेवाली इस कुतियाका में ॥ १०१ ॥ अपने पुण्यप्रभावसे उद्धार करूंगा. जैसे कीचडमें फंसी हुई गऊका उद्धार किया जाता है." इसप्रकार अपने पुत्रको रोककर स्वयं प्रतिज्ञा करी ॥ १०२ ॥ और कहा कि-" हे कुती ! मैं द्वादशीके दिन किया हुआ पुण्य तुझको देता हूं, तू अपने सब पापोंसे छूटकर वैकुंठको चली जा " ॥ १०३ ॥ इतना कहतेही हे राजन ! वह कुती सहसा अपने जीर्णशरीरको छोडकर दिव्य आभूषण पहर और दिव्य रूप धारण कर ॥ १०४ ॥

सौ सूर्योके समान कांतिवाली सावित्रीकी मूर्तिके सदृश ब्राह्मणसे आज्ञा लेके दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई स्वर्गको चली गई ॥ १०५ ॥ वहां स्वर्गमें अनेक महाभोगोंको भोगकर पृथ्वीमें नरनारायणकी कृपासे उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥१०६॥ वह वरांगना वैशाखशुक्ल द्वादशीके प्रभावसे देवताओंकी प्यारी अप्सरा हुई॥१०७॥ योगीजन योगद्वारा जिसको पाते हैं, जो अग्निसमान प्रकाशमान्, जो अत्यंत श्रेष्ठ, जो परमार्थरूप, जिसको पाकर संतभी मोहित होते है, ऐसे अनुपम रूपको वह कुतिया प्राप्त हुई

शतादित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा ॥ जगामामंत्र्य तं विप्रं द्योतयंती दिशो दश ॥ १०५ ॥ भुक्त्वा दिवि महाभोगान् पश्चाज्जाता महीतले ॥ नरनारायणाद्देवादुर्वशीनामनामतः ॥१०६॥ वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वरांगना ॥ देवानां च प्रिया जाता अप्सरस्त्वं च सा ययौ ॥ १०७ ॥ यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् ॥ यत् प्राप्य संतोऽपि हि यांति मोहं तत्प्राप रूपं च शुनीह देवी ॥ १०८ ॥ पश्चात् स पद्मबंधुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम् ॥ १०९ ॥ कोटींदुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा ॥ यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥

॥१०८॥ तदनन्तर वह पद्मबंधु इस पुण्यवर्धिनी तिथिको लोकमें प्रसिद्ध करता हुआ; जो मधुसूदनभगवान्की प्राणप्यारी है॥१०९॥ करोडों चन्द्रसूर्य-ग्रहणसे अधिक पुण्यरूप और सब यज्ञोंसे अधिक तिथिको ब्राह्मणने तीनो लोकोंमें प्रसिद्ध कर दी ॥११०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

श्रुतदेवजी बोले-"हे राजेंद्र ! वैशाखशुक्लपक्षमें अंतकी जो तीन तिथि पूर्णिमापर्यन्त हैं. वे महाशुभ फल देनेवाली हैं ॥ १ ॥ ये तीनों तिथि पुष्करिणी कहाती हैं और सब पापोंका क्षय करनेवाली हैं. जो वैशाखमासभर स्नान नहीं करता है. उसको इन तीन तिथियोंमें स्नान करनेसे पूर्ण वैशाखमासभर स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ सब देवता वैशाखशुक्ल त्रयोदशीके दिन इकट्ठे होकर प्राणियोंको पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥ पूर्णिमाके दिन सब तीर्थ विष्णुभगवान्‌के साथ इकट्ठे होते हैं, तथा चतुर्दशीके दिन यज्ञसहित देवता इन प्राणियोंको पवित्र करती हैं. ब्रह्मघाती वा सुरापान करनेवाला कोई हो. ये सबको पवित्र कर देती हैं ॥४॥ पूर्वसमयमें वैशाखएकादशीके दिन नि-

श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अंतिमाः शुक्लपक्षके ॥ वैशाखे मासि राजेंद्र पूर्णिमांताः शुभावहाः ॥ १ ॥
अंत्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः ॥ माधवे मासि यः पूर्णं स्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥ तिथिष्वेतासु स स्नायात् पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ २ ॥ सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जंतून् पुनंति हि ॥ ३ ॥ पूर्णायां सर्वतीर्थेषु विष्णुना सह संस्थिताः ॥ चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा एतान् पुनंति हि ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान् पुनंति हि ॥ ४ ॥ एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां पालितं तत्र विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ त्रयोदश्यां सुधां देवान् पाययामास वै हरिः ॥ ६ ॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान् देवविरोधिनः ॥ पूर्णायां सर्वदेवानां साम्राज्यासिरभूव ह ॥ ७ ॥ ततो देवाः सुसंतुष्टा एतासां च वरं ददुः ॥ तिसृणां च तिथीनां च प्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः ॥ ८ ॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः ॥ पुत्रपौत्रादिफलदा नराणां पापहानिदाः ॥ ९ ॥

अमृतको उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ और द्वादशीके दिन विष्णुभगवान् प्रभुने अमृतकी रक्षा करके त्रयोदशीके दिन हरिभगवानने देवताओंको उसका पान कराया ॥ ६ ॥ और चतुर्दशीके दिन देवताओंके विरोधी दैत्योंका नाश कर दिया. पूर्णिमाके दिन सब देवताओंको राज्यसुखकी प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ तब देवताओंने प्रसन्न होकर इन तीनों तिथियोंको प्रीतिसे नेत्रोंको प्रफुल्लित करके वरदान दिया ॥ ८ ॥ ये वैशाखमासकी तीनों तिथि शुभ हैं: ये पुत्रपौत्रादि फलकी देनेवाली और मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाली

हैं ॥ ९ ॥ जो अधम नर वैशाखमासभर स्नान नहीं करें, तो इन तीन तिथियोंमें स्नान करनेसे उसको पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ इन तीन तिथियोंमें भी जो मनुष्य स्नानदान–आदि नहीं करते हैं, वे चांडालयोनिमें जन्म पाकर फिर रौरव नरकमें जाय पडते हैं ॥ ११ ॥ वैशाखमासकी इन तीन तिथियोंमें जो गरम जलसे स्नान करते हैं, वे चौदह इन्द्रपर्यन्त रौरव नरकमें जाय गिरते है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य अपने पितर और देवताओंके निमित्त दही–अन्नदान नहीं करता है, वह प्रलयकाल-

यो माधवे तु संपूर्णे न स्नातो मनुजाधम ॥ तिथित्रये तु सः स्नात्वा पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ १० ॥ तिथित्रयेऽप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः ॥ चांडालीं योनिमासाद्य पश्चाद्रौरवमश्नुते ॥ ११ ॥ उष्णोदकेन यः स्नाति माधवेऽत्यतिथित्रये ॥ रौरवं नरकं याति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ पितॄन् देवान् समुद्दिश्य दध्यन्नं न ददाति यः ॥ पैशाचीं योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ॥१३॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यते नात्र संशयः ॥१४॥ आ-मासं नियमाशक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमंदिरे ॥ १५ ॥ यो वै देवान् पितॄन् विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ न स्नानादि करोत्यद्धामुष्यशापप्रदा वयम् ॥ १६ ॥

पर्यन्त पिशाचकी योनिमें रहता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य नियमपूर्वक वैशाखमासके कर्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं, वे विष्णुभगवान्‌की सायुज्यताको प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण वैशाखमासमें नियमपूर्वक न रहकर यदि तीन दिन ( तीनों तिथियोंमें ) स्नानदानादि करें तो उसको पूर्णमासभरका फल प्राप्त होकर विष्णुलोकमें सुख मिलता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य देव, पितर, विष्णु, गुरु इनके निमित्त स्नानदान नहीं करता है, उसको हम शाप देते हैं ॥ १६ ॥

किन्तु वह संतानहीन, आयुर्हीन, धनहीन होवे." इसप्रकार देवता वर देकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ १७ ॥ इस कारण तीनों तिथि पुण्यरूप हैं: सब पापोंका नाश करनेवाली हैं: पुत्रकोंकी बढानेवाली हैं: पुत्रपौत्रबढानेवाली हैं ॥ १८ ॥ जो सुभगा स्त्री वैशाखी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणको मालपुआ और खीर भोजन करावे है, वह कीर्तिमान् पुत्र पाती है ॥ १९ ॥ जो इन अंतिम तीनों तिथियोंमें गीतापाठ करता है, वह दिनदिन अश्वमेध यज्ञ करनेका फल निस्सन्देह पाता है ॥ २० ॥

निःसंतानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेदिति ॥ इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥ १७ ॥ तस्मात्तिथित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ अंत्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥ १८ ॥ या नारी सुभगाऽपूपपायसं पौर्णिमादिने ॥ ब्राह्मणाय सकृद्दत्वा कीर्तिमंतं सुतं लभेत ॥ १९ ॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादंतिमे च दिनत्रये ॥ दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ २० ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्यात् दिनत्रये ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ २१ ॥ सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् ॥ पयसा स्नापयेद्याति विष्णुलोकमकल्मषम् ॥ २२ ॥ समस्तविभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ न तस्य लोकाः क्षीयंते युगकल्पादिसंक्षये ॥ २३ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्वा च वैशाखश्च गतो यदि ॥ स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥ २४ ॥

जो तीनों दिन गीताजीके सहस्रनामका पाठ करता है, उसके पुण्यफल कहनेको स्वर्ग अथवा पृथ्वीमें कोई समर्थ नहीं है ॥ २१ ॥ वैशाखी पूर्णिमाके दिन सहस्रनामका पाठ करके दूधसे भगवान्‌को स्नान करावे, स्नान करावै सो वह निष्पाप विष्णुलोकको जाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने वैभवके अनुसार उपचारोंसे मधुसूदन भगवान्‌का पूजन करता है, सो कल्पके अन्तमें भी उसके लोक क्षय नहीं होते हैं ॥ २३ ॥ जो वैशाखमासभर स्नान दान नहीं करें तो वह मनुष्य

ब्रह्मघाती, गुरुघाती तथा पितृघाती होता है ॥ २४ ॥ वैशाखमासमें जो मनुष्य श्रीमद्भागवतका एक श्लोक वा आधा श्लोक वा चौथाई श्लोक प्रतिदिन पढता है, वह ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो इन तीन दिन श्रीमद्भागवतकथा सुनता है, वह कभी पापसे लिप्त नहीं होता है; जैसे कमलपत्रपर जल नहीं ठहरता है ॥२६॥ इन तीन तिथियोमें स्नान-दानादि करनेसे, कितनेही मनुष्य देवता हो गये ! कितनेही सिद्ध हो गये और कितनेही ब्रह्मत्वको प्राप्त हो गये ! ! ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानसे अथवा प्रयागतीर्थमें

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ वैशाखे च पठन् मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते॥२५॥यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये ॥ न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवांभसा ॥२६॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतेः ॥ २८ ॥ नीलं वृषभमुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतेः ॥ समस्तबंधनिर्मुक्तः पुमर्थान् याति सर्वथा ॥ २९ ॥ गां दत्वा यो द्विजेंद्राय सीदते च कुटुंबिने ॥ इहापमृत्युनिर्मुक्तः परत्र च परं व्रजेत् ॥ ३० ॥ स्नानदानविहीनस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत् ॥ श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३१ ॥

मरनेसे अथवा वैशाखमासमे नियमपूर्वक स्नान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ वैशाखमें स्नान कर जो नीले बैलको छोडता है, वह सब बंधनोसे छूट जाता है और उसको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ये चारौ पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥२९॥ जो निर्धनी और कुटुंबी ब्राह्मणको गो दान करता है, वह यहां अकालमृत्युसे छूट जाता है और परलोकमे परम पद पाता है ॥ ३० ॥ जो वैशाखी पूर्णिमाको स्नानदान विना किये व्यतीत कर देता है, वह सौवार कुत्ताकी योनि पाकर विष्ठामेंका कीडा होता है ॥ ३१ ॥

साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ तीनों भुवनोंमें हैं. वे सब इकट्ठे हो सब पापोंसे शंकित होकर सम्मति करने लगे ॥ ३२ ॥ कि पापी लोग अपने किये हुये सब पाप हमारे बीचमें त्याग कर देते हैं. सो हमारे पाप किसप्रकार दूर होंगे. यह विचार कर चिन्ता करते हुये ॥ ३३ ॥ तीर्थपाद हरिभगवान् की शरणमें गये और अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति कर प्रार्थना करने लगे ॥ ३४ ॥ कि हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सब पापसमूहके नाश करनेवाले! पापी लोग हममें स्नान कर अपने सब पाप ॥ ३५ ॥ छोड़कर आपके लोक ( वैकुंठ ) को चले जाते हैं इस भारकी आज्ञाको धारण किये पृथ्वी पर हैं. हे जनार्दन ! हमारे ये पाप कैसे दूर होवेंगे ?॥ ३६ ॥ हम आपके चरणोंकी शरणामें आये हैं, इसका उपाय

तिस्रः कोट्यर्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये ॥ संभूय मंत्रयांचक्रुः पापसंघातशंकिताः ॥ ३२ ॥ जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजंति स्वकं मलम् ॥ तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिंतासमन्विताः ॥ ३३ ॥ तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम् ॥ स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरंजसा ॥ ३४ ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन ॥ जना अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥ ३५ ॥ विसृज्य त्वत्पदं यांति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि ॥ अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥ ३६ ॥ तदुपायं वदार्तानां त्वत्पादशरणैषिणाम् ॥ इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान् भूतभावनः ॥ ३७ ॥ प्रहसन् प्राह तीर्थानि मेघगंभीरया गिरा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखांते दिनत्रये ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे ॥ यूयं सूर्योदयात् पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः ॥ ३९ ॥

कहो हमारी रक्षा कीजिये. तीर्थोंने जब इसप्रकार प्रार्थना करी, तब भूतभावन भगवान् ॥ ३७ ॥ तीर्थोंके प्रति हँसते हुये मेघसमान गंभीर वाणीसे बोले. श्री भगवान् कहने लगे-हे तीर्थो! मेषराशिके सूर्य वैशाखशुक्लपक्षमें अंतके तीन दिन ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमय पुण्यरूप हैं, हमारे भी प्राणवल्लभ हैं. इनमें तुम लोग सूर्योदयसे पहले स्नान कर सबके बाहर जा बसो ॥ ३९ ॥

सब पापोंसे छूट पुण्यरूप होकर निर्मल हो जाओ और जो पुरुष तीन दिन स्नान करेंगे उनके सब पाप छूट जायंगे; जो तीन दिन स्नान नही करेंगे उनके पाप उन मनुष्योंमें स्थित रहेंगे ॥४०॥ तीन दिन नहीं स्नान करनेवालोंमें वे पाप रहेंगे जो तुममेंसे निकल जायँगे. तीर्थ हैं चरण जिनके ऐसे विष्णुभगवान्ने तीर्थोंको इसप्रकार वर दिया ॥ ४१ ॥ और उनको आज्ञा देकर आप योगबलसे वहीं अंतर्धान हो गये. तब सब तीर्थ फिर अपने स्थानपर आकर प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्ष वैशाखमासके अन्तमें तीन दिन विष्णु भगवान्की आज्ञाके अनुसार अपने अपने पापोंको छोडकर निर्मल हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ जो वैशाखके अंतके तीन दिनोंमें स्नान नहीं करते हैं, उनके आश्रय

विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवंत्वाशु सुनिर्मलाः ॥ भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्ये न स्नाता दिनत्रये ॥ ४० ॥ तेषु तिष्ठंतु तत्पापं जनैर्युष्मद्विरेचितम् ॥ इति तीर्थपदो विष्णुस्तीर्थानां च वरं ददौ ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्य च तान्योगात्तत्रैवांतरधीयत ॥ स्वधामानि पुनः प्राप्य तानि तीर्थानि नित्यशः ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्षं तु वैशाखे तथैवांत्यदिनत्रये ॥ तेनाघौघं विमुच्यैव यांति निर्मलतामहो ! ॥ ४३ ॥ ये तु स्नानं न कुर्वंति वैशाखांत्यदिनत्रये ॥ ते भवंतु समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥ ४४ ॥ इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां ददाति च ॥ न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥ ४५ ॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥ ४६ ॥ अन्यथा नरकं याति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते ! महामते ॥ ४७ ॥

सब मनुष्योंके पातक आकर ठहर जाते हैं ॥ ४४ ॥ स्नान करनेवालोंकी तीर्थ इसप्रकार शाप देते हैं. उसके समान कोई पापी नहीं है जो तीन दिन स्नान नहीं करता है ॥ ४५ ॥ शास्त्रोंमें विचार करनेसे उसके समान पापी न देखा है और न सुना है. इसकारण इन तीन दिनोंमें स्नानदान आदिक और पूजन करना उचित है ॥ ४६ ॥ नहीं करनेसे मनुष्य चौदह इन्द्र ( मन्वन्तर ) पर्यन्त नरकमें रहता है. इसप्रकार यह वैशाखमाहात्म्य, महात्मा श्रुतकीर्तिने भली भांति वर्णन किया ॥ ४७ ॥

वैशाखका माहात्म्य देखा, जो जैसा देखा और जैसा सुना, तदनुसार वैशाखका माहात्म्य वर्णन किया है ॥ ४८ ॥ इस माहात्म्यको पूर्ण रीतिसे वर्णन करनेका सौवर्षपर्यन्त ब्रह्माजीमें भी सामर्थ्य नहीं है. पूर्वसमय कैलासके शिखरपर पार्वतीजीने साक्षात् महादेवसे ॥ ४९ ॥ वैशाखमाहात्म्य पूछनेपर शिवजीने सौवर्षपर्यन्त वर्णन किया, तबभी अंत नहीं हुआ; तब समर्थ शंकर शिवजी मौन हो रहे ॥ ५० ॥ विष्णु, जगन्नाथ, अनामय नारायणके विना कोईभी संपूर्ण वैशाखमासका उत्तम माहात्म्य वर्णन करनेको समर्थ

दृष्टं वैशाखमाहात्म्यं यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ माहात्म्यस्य च लेशोऽयं माधवस्य च वर्णितः ॥ ४८ ॥ कार्त्स्न्याद्वक्तुं ब्रह्मणापि नालं वर्षशतैरपि ॥ पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शंकरः स्वयम् ॥ ४९ ॥ प्राह माधवमाहात्म्यं पृच्छत्यै शतवत्सरम् ॥ तत्रापि नांतमगमदशक्तो विरराम ह ॥ ५० ॥ को नुवर्णयितुं शक्तः कार्त्स्न्यान्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ५१ ॥ पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ लेशस्य लेशं व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥ ५२ ॥ नांतं केनापि व्याख्यातं ह्यशक्तत्वान्महीपते ॥ त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥५३॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्नोपि न संशयः ॥ इति तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकान्वयम् ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवस्तमामंत्र्य गंतुं चक्रे मनोगतिम् ॥ जाताल्हादः स राजर्षिर्गल्द्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ ५५ ॥

नहीं है ॥ ५१ ॥ पूर्वसमय सब ऋषियोंने इस पापनाशक माहात्म्य मनुष्योंके हितकी कामनासे थोडा थोडा वर्णन किया है ॥ ५२ ॥ परन्तु हे महीपते ! कोईभी कहनेमें समर्थ नहीं हुआ. तुम वैशाखमासमें स्नानदान आदि सत्कर्मोंको करो ॥ ५३ ॥ इससे निस्सन्देह भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होवेगी इसमें संशय नहीं है " इसप्रकार मिथिलापति राजा जनकको समझाय ॥५४॥ श्रुतदेवजी राजासे पूछकर जानेका विचार करते भये. तब राजा आल्हादसे युक्त हो गया. उसका कंठ रुक गया, नेत्रोंसे जल बहने लगा॥५५॥

फिर अपनी अभिवृद्धिके अर्थ सुन्दर उत्सव करने लगा. गाँवकी प्रदक्षिणा कर श्रुतदेवजीको पालकीमें बिठाकर॥५६॥ चतुरंगिणी सेनाके साथ भेजता हुआ; पीछे पीछे आपभी चला. गाँवकी प्रदक्षिणा करानेउपरांत अंतःपुरमें ले जाकर अपने सब विभवके अनुसार ॥ ५७ ॥ वस्त्र, अलंकार, गो, पृथ्वी, तिल, सुवर्ण आदि भेट रख प्रणामपूर्वक परिक्रमा कर हाथ जोड मुनिके आगे खडा हुआ ॥ ५८ ॥ तब महातेजवान् महायशस्वी श्रुतदेवजी प्रसन्न हो परमप्रीतिपूर्वक अपने धामको पधारे ॥ ५९ ॥ नारदजी बोले

उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनस्ततः ॥ ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिबिकामधिरोप्य तम् ॥ ५६ ॥ चतुरंगबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथान्वगात् ॥ पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥ ५७ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः ॥ प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥ ५८ ॥ ततः स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः ॥ संतुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ इत्येतत्परमाख्यानमंबरीष तवोदितम् ॥ श्रवणात् सर्वपापघ्नं सर्वसंपद्विधायकम् ॥ ६० ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दति ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा अंबरीषो महायशाः ॥ ६१ ॥ प्रहृष्टांतरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दंडवत्पतितो भुवि ॥ ६२ ॥

"हे राजा अंबरीष ! यह उत्तम आख्यान मैंने तुमारे आगे वर्णन किया; इसके सुननेसे सब पाप दूर हो जातेहैं और सब प्रकारकी संपदा प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ इससे भुक्ति, मुक्ति और ज्ञान तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है." नारद मुनिका यह वचन सुनकर महायशस्वी राजा अंबरीष ॥६१॥ मनमें ऐसा प्रसन्न हुआ कि बाहरके सब व्यापार

सदैव उपनिपद्शास्त्रमें विचार करनेवाले होते हुये. वे किसीसे कुछ इच्छा नहीं रखते थे ॥ ५ ॥ भिक्षामात्रसेही अपना भोजन चलाते थे, तथा वे दोनों पर्वतकी गुफामें रहते थे. तीनो लोकोंमें सत्यनिष्ठ तपोनिष्ठ नामसे दोनों विख्यात थे ॥ ६ ॥ इन दोनोंमें सत्यनिष्ठ सदा विष्णुकी कथामें लवलीन रहता था. हे राजन्! सुननेवाले तथा कहनेवालेके अभावमेंभी अर्थात् श्रोता और वक्ता न होता तब ॥ ७ ॥ वह मुनीश्वर कर्म करनेमें तत्पर रहता था. यदि कोई श्रोता होता था तो उसके आगे कथा

भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ ॥ सत्यनिष्ठतपोनिष्ठाविति ख्यातौ जगत्रये ॥ ६ ॥ तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथापरः ॥ श्रोतृणामप्यभावे च व्याख्यातृणां तथा नृप॥७॥ तदा कर्मकला नित्याः कुरोत्यद्धा मुनीश्वरः ॥ श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥ यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् ॥ तदा संकुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥ ९ ॥ अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च ॥ हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥१०॥ शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् ॥ विना कथां न जानाति सेव्यमन्यं नरेश्वर ॥ ११ ॥ व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः ॥ कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥ १२ ॥

कहने लगता था ॥ ८ ॥ यदि कोई उस पुण्यरूपा कथाको कहता तो, सब काम छोडकर कथा सुनने लगता था ॥ ९ ॥ जो तीर्थ बहुत दूर थे और जो देवमन्दिर बहुत दूर थे उन कथासे विरोध करनेवाले तीर्थों और कर्मोंको छोडकर ॥ १० ॥ स्वयं दिव्य कथाओंको सुनता और श्रोताओंको कथा सुनाता था. हे राजन्! विना कथा सुने अन्नको भी ग्रहण नहीं करता था ॥ ११ ॥ रोगआदिसे पीडित वक्ता जो अपने घरमें कथा कहता था, तो कूपजलमें स्नान कर वह मुनि कथा सुनता

था ॥ १२ ॥ कथा समाप्त होनेउपरान्त अपना नित्यकर्म करता था. जो पुरुष इसप्रकार कथा सुनता है, वह जन्मके बंधनमें नहीं बंधता है ॥ १३ ॥ अनन्तर विष्णुमें सत्वशुद्धि उत्पन्न होती है और अरति दूर हो जाती है. विष्णुभगवान्में प्रीति उत्पन्न हो जाती है तथा साधुओंमें सुहृद्भाव उत्पन्न हो जाता है॥ १४ ॥ और निरजन निर्गुण ब्रह्म शीघ्र हृदयमें आकर निवास करता है जो पुरुष ज्ञानहीन है उसका सब कर्म निष्फल होता है ॥ १५ ॥ विना ज्ञानके किये हुये कर्म प्रायः निष्फल हो जाते है. जैसे अन्धेको दर्पण दिखाना निष्फल होता है. महात्माजन बहुधा कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ उनको सत्वशुद्धि प्राप्त होती है. सत्वशु-

कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् ॥ कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबंधो न विद्यते ॥ १३ ॥ सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति ॥ रतिश्च जायते विष्णौ सौहृदं चैव साधुषु ॥ १४ ॥ निर्जरं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥ १५ ॥ बहुधाचरितं चापि यथैवांधकदर्पणम् ॥ कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥ १६ ॥ सत्वशुद्ध्यै भवंत्येव सत्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत् ॥ श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञानाद्ध्यानाय कल्पते ॥ १७ ॥ बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम् ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति तत्र साधुजना नहि ॥ १८ ॥ साक्षाद्गंगातटं वापि त्याज्यमेव न संशयः ॥ यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥ १९ ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो व्रजेत् ॥ यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥ २० ॥

द्धिसे वेदमें मति उत्पन्न होती है, वेदसे ज्ञान और ज्ञानसे ध्यानकी उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥ जो बहुधा श्रवण, ध्यान, मनन और वेदोक्त रीतिसे कर्म करता हो परतु जहां विष्णुकथा नहीं होती है, जहां साधुजन नहीं हैं ॥ १८ ॥ वहां जो साक्षात् गंगाजीका तटभी हो तो भी त्याग देवै. जिस देशमें तुलसीवृक्ष नहीं है अथवा जहां विष्णुजीका कोई उत्तम मन्दिर नहीं है ॥१९॥ तथा जहां हरिकथाका प्रचार नहीं है, वहांका मराहुवा प्राणी अंधतामिस्र नरकमें जाता है. जिस गांवमें किसी

वैष्णवका घर नहीं है, अथवा जहां काल हिरण नहीं है ॥ २० ॥ जहां विष्णुकी कथा नहीं होती है अथवा जहां साधुमहात्माके भोजन न मिलता हो, वहांका मरा हुआ पुरुष तत्काल कुत्तेकी योनि सौ जन्मतक पाता है ॥ २१ ॥ उपनिषद्विद्याको विचार उस मुनिने यह निश्चय किया कि–" सदा विष्णुभगवान्की कथा श्रवण किया करे और विष्णुका स्मरण करता रहे अर्थात् हरिभक्तिमें तत्पर रहे ॥२२॥ कथा श्रवण करनेसे अधिक और कुछभी अधिक नहीं माने. " इसप्रकारका वह सत्यनिष्ठ मुनीश्वर था



यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः ॥ मृतस्तत्र पुमान् क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥२१॥ विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चि-
त्य वै मुनिः ॥ सदा विष्णुकथासक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः ॥ २२ ॥ न किंचिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात् परम् ॥ इतरस्तु तपोनिष्ठः
कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ २३ ॥ न व्याख्याति स्वयं वाऽपि न शृणोति च सत्कथाम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति ॥
॥ २४ ॥ तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक ॥ कर्मलोपभयाद्दूरं याति चांचल्यशंकितः ॥ २५ ॥ व्रजंति गृहकृत्यार्थं संग-
मात् परतो जनाः ॥ न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तु कर्मिणः ॥२६॥ दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं गते ॥ जिव्हां श्रुतिं च
न क्वापि प्राप्ताहितकथा विभोः ॥ २७ ॥

और सत्यनिष्ठसे इतर जो दूसरा तपोनिष्ठ था वह दुराग्रही, कर्ममें निष्ठावान् था ॥ २३ ॥ न तो आपही कथा कहता था, न हरिकथाको सुनताभी था. जहां कथा होतीभी हो, तो उस स्थानको त्यागकर तीर्थस्नानको चला जाता था ॥२४॥ हे राजन् ! तीर्थपर होतीहुई कथाको भी चांचल्यशंकिसे इस कारण छोड देता था कि कहीं तपमें हानि न पहुँचे अर्थात् कर्मलोपके भयसे दूर चला जाता था ॥२५॥ उस कर्मनिष्ठ मुनिके समीप होकर कोईभी श्रोता और वक्ता गृहकृत्यके अर्थ नहीं निकलता था ॥२६॥ उस दुरात्मा और

दुर्बुद्धि कर्मनिष्ठका समय इसीप्रकार क्षय हुआ. विष्णुभगवान्‌की कथा न कभी अपनी जीभसे कही और कानोंसे सुनी ॥ २७ ॥ हरिकथाके न सुनने और न कहनेसे तथा अपनी मूढता और दुराग्रहसे जब अपना शरीर छोडा ॥ २८ ॥ तब वह शमीवृक्षपर छिन्नकर्ण नाम बलवान् पिशाच हुआ. आश्रयरहित, निराहार रहा करता. कंठ होठ और तालु प्यासके मारे सूख जाते थे ॥ २९ ॥ इसप्रकार दुःख भोगते उसको दशहजार वर्ष व्यतीत हो गये. कहांभी अपने रक्षा करनेवालेको नहीं देखता हुआ, भूखसं व्याकुल, महादुःखी ॥ ३० ॥ अपने कर्मोंके ओर ध्यान देकर चिन्ता करता हुआ उन्मत्तके समान इधर उधर घूमने लगा. भूखके मारे भटकता हुआ

अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् ॥ पश्चात् पंचत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥ २८ ॥ पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे छिन्नकर्णाव्हयो बलः ॥ निराश्रयो निराहारः शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ २९ ॥ एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्याऽयुता गताः ॥ नापश्यत् स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥३०॥ स्वकृतं चिंतयानस्य मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् ॥ क्षुधया पर्यटन् वाऽपि निर्वृत्तिं नापमूढधीः ॥३१॥ कृशानुसदृशो वायुरंगं स्पृष्ट्वा कृतात्मनः ॥ कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥ ३२ ॥ न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् ॥ एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥ ३३ ॥ कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधुवर्जिते ॥ दैवादायात् सत्यनिष्ठस्तदा पैठीनसीं पुरीम् ॥ ३४ ॥ गच्छन् मार्गे ददर्शासौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् ॥ दृष्ट्वात्मानं द्रावयंतं रुदंतं क्षुधयातुरम् ॥ ३५ ॥

मूढबुद्धि कहींभी शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ३१ ॥ उस अकृतात्माके शरीरपर अग्निके समान वायु स्पर्श करती थी. जल, कालाग्निसमान और फलपुष्पादिक, विषके तुल्य जान पडते थे ॥ ३२ ॥ इसप्रकार उस मंदबुद्धिवाले कर्मनिष्ठको कहींभी सुख नहीं मिला. वह उस निर्जन वनमें इसप्रकार भटकता फिरता था ॥ ३३ ॥ जहां कथा नहीं होती जहां, कोई साधु नहीं था ऐसे स्थानमें वह घूमता फिरता था उसीसमय दैवयोगसे सत्यनिष्ठमुनि पैठीनसीपुरीमें आया ॥३४॥ मार्गमें दुःखसे पीडित छिन्नकर्ण पिशाचको

देखा. वह अपनी आत्माको धिक्कारता रुदन करता हुवा क्षुधासे आतुर था ॥ ३५ ॥ उसको देखकर सत्यनिष्ठ मुनीश्वरने कहा-" डरो मत, तुम यह बताओ कि तुम कौन हो ? तुमारी यह दशा कैसे हुई ? अब आगे तुमको दुःख नहीं होवेगा " ॥ ३६ ॥ जब इसप्रकार सत्यनिष्ठने आश्वासन दिया अर्थात् ढाढस बंधाया तब छिन्नकर्ण बहुत घबडाकर बोला-" हे प्रभो ! मैं दुर्वासमुनिका शिष्य तपोनिष्ठनामवाला यति हूं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी मैं बडा दुराग्रही कर्मनिष्ठ था. कर्मके लोप जानेके भयसे अपनी

मा भीरिति समाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः॥ दृशेदृशी च कस्मात्ते न ते दुःखमतःपरम् ॥३६॥ इत्याश्वस्तोऽमुनाच्छिन्न-कर्णः प्राहातिविह्वलः ॥ तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः प्रभो! ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने! ॥ ३८ ॥ साधुभिर्वाच्यमानोऽपि नादृता विष्णुसत्कथा ॥ न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृंतनी ॥ ३९ ॥ तेन कर्मविपाकेन महताऽहं मृतिं गतः ॥ छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥ ४० ॥ न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथंचन ॥ तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याहं गतकल्मषः ॥ ४१ ॥ अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च मे ॥ हरिश्च मे प्रसन्नोभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥ ४२ ॥

मूर्खता और दुर्बुद्धिपनसे हे मुने ! ॥ ३८ ॥ साधुओंके द्वारा वांची हुई विष्णुकी श्रेष्ठ कथा मैने श्रोताओंकोभी नहीं सुनाई ॥ ३९ ॥ उसी कर्मके घोर परिणामसे मेरी मृत्यु हुई. तब मैं छिन्नकर्णनाम पिशाच होकर दुःखसे व्याकुल हो रहा हूं ॥ ४० ॥ इस दुःखसे छुडानेवाला और रक्षा करनेवाला मेरेको कोई दीख नहीं पडता. मार्गमें जाते हुये तुमको देखनेसे मेरे पाप नष्ट हो गये ॥ ४१ ॥ आज मेरे ऊपर देवता गुरु और साधुजन, तथा हरिभगवान् प्रसन्न हैं. जो मुझको तुमारे दर्शन प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥

इसप्रकार भूमिमें दोनो चरणोमें गिरकर त्राहि त्राहि ( रक्षा करो २ ) कहके रोने लगा. तब महायशस्वी सत्यनिष्ठको दया आगई ॥ ४३ ॥ और दोनौं हार्थोसे पकडकर उसको उठा लिया. तदनन्तर हाथमें जल लेकर अपना उत्तम पुण्य उसको दिया ॥ ४४ ॥ वैशाखमासका मुहूर्तभर माहात्म्य श्रवण करनेका फल दे दिया. उस पुण्यके प्रभावसे तत्काल उसके सब पाप विध्वंस हो गये ॥ ४५ ॥ पिशाचका शरीर त्याग, दिव्य देह धरकर उत्तम विमानपर चढकर इन महामुनिजीको प्रणाम करके ॥ ४६ ॥ आमंत्रण

पपात पादयोर्भूमौ त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ ततस्तु कृपयाविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥ ४३ ॥ दोर्भ्यामुत्थापयामास शंतमाभ्यां मुनीश्वर ॥ ततस्त्वाप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम् ॥ तेन पुण्यप्रभावेन सद्यो ध्वस्ताखिलाशुभः ॥ ४५ ॥ पिशाचदेहान्निर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥ ४६ ॥ आमंत्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोः परं पदम् ॥ सत्यनिष्ठस्ततो धीमान् ययौ पैठीनसीं पुरीम् ॥ ४७ ॥ माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिंतयानः पुनः पुनः ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा ॥ ४८ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथापगा ॥ ४९ ॥ तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥५०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

कर परिक्रमा दे विष्णुके लोकको जाता हुआ. तब सत्यनिष्ठ बुद्धिमान् पैठीनसीपुरीको गये ॥४७॥ और माहात्म्यश्रवणकी चिन्ता वारंवार करते हुये. श्रुतदेवजी बोले-" जहां पवित्र और शुभ फल देनेवाली पापनाशिनी विष्णुकथा होती है ॥ ४८ ॥ वहां सब तीर्थ और अनेक क्षेत्र आ जाते हैं. तथा जहां विष्णुभगवान्की कथारूपी निर्मल नदी वहती है ॥४९॥ उस देशमें रहनेवाले भक्तजनोके हाथमें मुक्ति रहती है, इसमे कुछ सन्देह नहीं है " ॥५०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कथाप्रशंसायां

पिशाचमुक्तिमाप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीश्रुतदेवजी बोले-" हे राजन् ! पापनाश करनेवाला वैशाखमासमाहात्म्य सुनो, जो मधुसूदनभगवान्‌को प्रिय है ॥ १ ॥ पूर्वसमय पांचाल ( पंजाव ) देशमें पुण्यशील और बुद्धिवान् भूरियशका पुत्र राजा पुरुयश होता हुआ ॥ २ ॥ वह पिताके मरने उपरान्त आप राजा हुआ. वह बडा शूर-॥ वीर और परम उदार तथा गुणवान्, धनुर्विद्यामें निपुण था ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण पृथिवीपर धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ, परंतु पूर्वजन्ममें इस राजाने जलदान नहीं किया था ॥४

॥ श्रुतदेव उवाच ॥ भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ वैशाखस्य च मासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः ॥ १ ॥ पुरा पांचाल-
देशे तु राजा पुरुयशाऽभवत् ॥ तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २ ॥ पितर्युपरते भूप राज्यस्थो धर्मलालसः ॥ शौर्यौदार्य-
गुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ३ ॥ शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः ॥ पूर्वजन्मजलादानादोषेण महतावृतः ॥४॥ संपद्धा-
निमवापासौ कालेन कियताऽनघ ॥ हया गजा मृतिं याता महद्रोगेन पीडिताः ॥ ५ ॥ दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् ॥
राज्यं कोशं तदाहासीद्गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥ बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् ॥ तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥७॥

इस पापसे उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति कुछही कालमें नष्ट हो गई. वडेवडे रोगोंसे पीडित होकर सब हाथी-घोडे मर गये ॥ ५ ॥ अनन्तर उसके राज्यमें ऐसा दुर्भिक्ष पडा कि सब मनुष्य मर गये ! उससमय राज्यमें ऐसा सूनसान हो गया, जैसे हाथीसे भक्षण किया हुआ कैथका वृक्ष उजड जाता है ॥ ६ ॥ तब उस राजाको निर्बल जानकर

उसको कोश और राज्यसे रहित समझकर उसके जीतनेको मनमें निश्चय करके ॥७॥ सैकडों वैरी राजा उस राजापर चढ आये और उस पंजाबी राजाको युद्धमें जीत लिया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर वह राजा परास्त होकर शिखिनी रानी और धात्रीआदि गणोंसहित पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश कर रहने लगा ॥ ९ ॥ वहांका मार्ग दूसरे लोग नहीं जानते थे. वह राजा उस गुफामें महादुःखपूर्वक व्याकुलतासे तिरपन वर्ष व्यतीत करता हुआ ॥ १० ॥ एकदिन राजाने मनमें विचार किया कि–" किस कर्मसे हमारी ऐसी

आजग्मुः शतशो भूप स्पिवस्तस्य भूपतेः ॥ जिग्युर्युद्धेन तं भूपं पांचालविषयाधिपम् ॥ ८ ॥ पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे ॥ शिखिन्या भार्यया साकं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ९ ॥ अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः ॥ त्रिपंचाशत् समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता ॥ १० ॥ चिंतयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥ ११ ॥ गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः ॥ दयावान् सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेंद्रियः ॥ १२ ॥ न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः ॥ दयापौरुषविख्याताः कुलीनस्यापि मे कुतः ॥ १३ ॥ केन वा कर्मणा चासं दारिद्र्यं भूरिदुःखदम् ॥ केन वापजयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥ १४ ॥

दशा हो गई ? हम कर्म और जन्मसेभी शुद्ध हैं. मातापिताकाभी हित साधन करते रहते हैं ॥ ११ ॥ गुरुमें सदैव भक्ति रखते हैं; ब्राह्मणोंकी सेवा करते है; अपने धर्ममें तत्पर रहते है; सब प्राणियोंपर दया करते हैं; देवताओंमें भक्ति है; इन्द्रियोंको अपने वशमें रक्खा है ॥ १२ ॥ न मेरा कोई भाई है; न पुत्र है; न कोई सुहृद और हितकारी है; उत्तम कुलमें मेरा-जन्म है; दया और पौरुष मेरे कहां गये ? ॥ १३ ॥ घोर दुःख देनेवाला दारिद्र्य कौन कर्मसे मुझको

प्राप्त हुआ है ? अथवा कौन कर्मसे मेरी पराजय हुई ? यद्वा कौन कर्मसे मैं वनमें वास करता हूं ? " ॥ १४ ॥ इस चिंतासे व्याकुल राजाने खिन्नबुद्धि होकर अपने गुरु-का स्मरण किया. तब याज और उपयाजक नामके दो सर्वज्ञ महामुनि ॥ १५ ॥ राजाके स्मरण करतेही वहां आ पहुँचे. उन दोनों महात्माओंको देखकर राजा सहसा उठ खडा हुआ ॥ १६ ॥ भक्तिपूर्वक शिरसे प्रणाम करता हुआ वनवास करनेसे दुःखित, राजचिह्नसे रहित वनमार्गसे अनजान ॥ १७ ॥ मुहूर्तभर ( दो घडी पर्यन्त ) चुप खडा रहा; अनन्तर मुनियोंके चरणोपर गिर पडा. तब उन दोनों मुनियोंने अपने हाथसे राजाको उठाया और आंसू पोंछे ॥ १८ ॥ अनन्तर राजाने सुंदर वनके फूल आदिसे

इति चिंताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः ॥ याजोपयाजकौ नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥ १५ ॥ आजग्मतुर्मुनींद्रौ तौ राज्ञाहूतौ महामती ॥ तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पांचालवल्लभः ॥ १६ ॥ ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनातिपीडितः ॥ राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥ १७ ॥ तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः ॥ दोर्भ्यामुत्थापितस्ताभ्यां परिमृष्टाश्रुलोचनः ॥ १८ ॥ विधिवत् पूजयामास वन्यैरेवार्हणैः शुभैः ॥ सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छानतकंधरः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणौ ! वदतं दुःख-कारणं च क्षितीशितुः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥ २० ॥ पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः ॥ दारिद्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम ॥ न पुत्रो न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥ २२ ॥

मुनियोंकी विधिपूर्वक पूजा करी. जब वे दोनों मुनि सुखसे बैठ चुके, तब राजाने शिर नवाकर प्रश्न किया ॥ १९ ॥ " हे मुनिवरों ! मेरे दुःखका कारण कहो, मैं कर्म व जन्मसे शुद्ध हूं; पितर और देव सबका हित करता रहा हूं ॥ २० ॥ पापसे डरता हूं; प्राणियोंपर दया, गुरुमें भक्ति है; तोभी मुझको दुःख क्यों मिला ? दरिद्र और धनहानिका क्या कारण है ? शत्रुओंने मुझे क्यों जीत लिया ? ॥ २१ ॥ किसकारण मैं वनमें वास करता हूं और कौन कर्मसे मैं अकेला रह गया हूं ? मेरे पुत्र, भाई, बन्धु और हितकर्ते स्नेही

ये कोई नहीं रहे ॥ २२ ॥ हे अनघ! मेरे देशमें अकाल किसकारण पडा ? हे मुनिपुंगव ! इन सब बातोंका कारण विस्तारपूर्वक आप मुझसे कहिये " ॥२३॥ राजाके ये महा-दुःखभरे वचन सुनकर वे दोनौ महात्मा मुनीश्वर कुछ ध्यान करके बोले ॥२४॥ याज उपयाज कहने लगे–" हे राजन् ! तुमारे दुःखका कारण हम कहते हैं, सुनो. हे राजा! तुम पहले दश जन्मपर्यन्त महाघोर पापी व्याध हुये ॥ २५ ॥ तुम अतिनिष्ठुर, सब जीवोंकी हिंसामे तत्पर रहा करते थे, धर्म तुममें लेशमात्रभी न था. इन्द्रियोंका दमन तुमने

दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघौ ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूत कारणं मुनिपुंगवौ ॥ २३ ॥ इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूपेनात्यंतदुःखिना ॥ प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किंचिद्ध्यानपरायणौ ॥ २४ ॥ याजोपयाजावूचतुः ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम् ॥ पुरा भूप महापापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु ॥ २५ ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः ॥ धर्मलेशाकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥ २६ ॥ न जिव्हा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथंचन ॥ चेतः स्मरति गोविंदचरणांबुरुहद्वयम् ॥ २७ ॥ न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने ॥ नव जन्मानि ते भूप गतान्येवं दुरात्मनः ॥ २८ ॥ दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरांतकः ॥ २९ ॥

नहीं किया और शांतिभी तुममें नहीं थी ॥ २६ ॥ अपनी जीभसे तुमने कभी विष्णुभगवान्का नाम नहीं लिया. न कभी तुमने मनमें गोविन्दके चरणकमलोंका ध्यान किया ॥ २७ ॥ न कभी शिरसे परमात्माको प्रणाम किया. इसप्रकार पाप करते हे राजन् ! तुमारे नौ जन्म बीत गये ॥ २८ ॥ दशवें जन्ममें सह्याद्रि पर्वतपर तुम व्याघ्र हुये.

निष्ठुर होकर तुम सब प्राणियोंके नाश करनेको यमराजके समान हुये ॥ २९ ॥ दयाहीन, शस्त्रकी जीविकासे युक्त, सदा हिंसा करनेमें तत्पर, गुणरहित, स्त्रीसमेत तुम, मार्गमें चलनेवालोंको पीडा करनेवाले शठ हुये ॥ ३० ॥ गौडदेशके रहनेवाले मनुष्योंको भक्षण करनेवाला राक्षस होकर अपने हितको न जानकर तुमने अपना समय व्यतीत किया ॥ ३१ ॥ मृग और पक्षियोंके छोटे छोटे बच्चोंको तुमने निर्दयपनसे मारा; इस कुबुद्धिसे तुमारे इस जन्ममें संतान नहीं हुई है ॥ ३२ ॥ तुमने विश्वासघात किये, इस-

दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः ॥ निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥ ३० ॥ प्रजानां गौडदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः ॥ एवं चाब्दान्यतीतानि नैजं हितमजानतः ॥ ३१ ॥ बालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव ॥ दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥ ३२ ॥ विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः ॥ मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः ॥ ३३ ॥ साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः ॥ कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥ ३४ ॥ सदैवोद्वेगकारित्वात् प्रवासस्ते दुरासदः ॥ सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यंतदुःसहम् ॥ ३५ ॥ निराहारोऽप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा ॥ तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन् महामते ॥ ३६ ॥

कारण तुमारे कोई सहोदर (भाई) नहीं है. तुमने मार्गमें पथिकोंको कष्ट दिया, इससे तुम सुहृद्जनोंसे रहित हो ॥ ३३ ॥ साधुजनोंका तुमने तिरस्कार किया, इसकारण तुमको शत्रुओंने जीत लिया है और तुमने कभी दान नहीं दिया, इसकारण तुमारे घरमें दरिद्र आ गया ॥ ३४ ॥ सदैव उद्वेग करानेसे तुमको देश निकाला हुआ है. सबका अहित करनेसे तुमको यह असह्य पीडा है ॥ ३५ ॥ पूर्वजन्ममें सदैव क्रूर कर्म करनेसे तुमको आहार नहीं मिलता है. इन्हीं सब कर्मोंसे इस जन्ममें तुमारा राज्य

छिन गया है ॥ ३६ ॥ अब हम तुमारे सत्कुलमें जन्म होनेका कारण कहते हैं कि जब तुम दशवें जन्ममें गौडदेशमें व्याध थे ॥ ३७ ॥ और अपना घोर दुष्कर्म करते थे और काटोंके वनमें निर्दयपनसे सब मार्ग चलनेवालोंको कष्ट देनेमें प्रवृत्त थे ॥ ३८ ॥ तब वहां दो धनवान् वैश्य धूपसे व्याकुल आये. उसीसमय वेदवेदांगके ज्ञाता कर्पणनामक मुनिभी वहां आये ॥ ३९ ॥ शिरपर जटा और देहपर वल्कल वस्त्र, हाथमें कमंडलु धारण किये ऐसे मुनिको आये देखकर तुमने धनुष्बाण हाथमें लेके मार्गको रोक लिया

अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतूंश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥ यदा भूगौडदेशीये ह्यंतिमे व्याधजन्मनि ॥ ३७ ॥ स्वकर्मनिरते क्रूरविपिने कंटकाविले ॥ तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतांतके पथि ॥ ३८ ॥ वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ घर्मपीडितौ ॥ मुनिश्च कर्षणो नाम वेदवेदांगपारगः ॥ ३९ ॥ जटाचीरधरः पुण्यः कमंडलुपरिग्रहः ॥ तान् दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥ ४० ॥ अनुद्रुत्य शरी वैश्यौ कृत्वा च्छिन्नशरीरकौ ॥ तयोरेकं च त्वं हत्वा गृहीत्वाखिलतत्पणम् ॥ ४१ ॥ अपरं हंतुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद् द्रुतम् ॥ पणं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥ ४२ ॥ कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशंकया ॥ आतपे धावमानः सन् तृषाघर्मप्रपीडितः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेषितः ॥ विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः ॥ ४४ ॥

॥ ४० ॥ बाण मारकर दोनों वैश्योंका शरीर तुमने छिन्नभिन्न कर दिया और उनमेंसे एकको मारकर सब धन छीन लिया ॥ ४१ ॥ जब दूसरेको मारना चाहा, तब वह वैश्य प्राणभयसे भाग गया और अपने प्राणोंकी रक्षा करनेके अर्थ अपना सब धन झाडियोंमें फेंक दिया ॥ ४२ ॥ कर्पण मुनिभी व्याधके हाथसे मरनेकी शंकासे शीघ्र भागने लगे. प्यास और धूपसे व्याकुल होकर गिर पडे ॥ ४३ ॥ मूर्च्छा आ गई; पसीना निकल आया; संज्ञामात्र शेष रह गई. वह जीता हुआ वैश्य जीनेकी आशासे

ऋपिको वहीं छोडकर भाग गया ॥ ४४ ॥ दोनोंको भाग गये जानकर उनमेंसे ब्राह्मणको, मूर्च्छित पडा देखकर " उस वैश्यने धनको कितना दूर फेंक दिया है " ? ॥ ४५ ॥ पूंछते हुये उस थकेहुये ब्राह्मणको उठानेका उद्योग किया. उसको चैतन्य करनेके निमित्त तुमने ब्राह्मणके कानोंमें सूंठ फूंकी ॥४६॥ कीडे और कींच मिलेहुये थलहेके जलसे तुमने उसके नेत्र धोय उस थकेहुयेके वृक्षोंके पत्तोंसे पवन करने लगे ॥४७॥ इस प्रकार मुनिको चैतन्य कर सावधान होनेपर मुनिसे कहा किं—" हे मुने ! इस अरण्यमें मैनैं शस्त्र धारण किये है

त्वं तावनुद्रुतो दृष्ट्वा मूर्च्छितं पथि भूसुरम् ॥ पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥ ४५ ॥ इति पृष्टं द्विजं श्रांतमुज्जीवयितुमुद्यतः ॥ फूत्कृत्वा कर्णयोस्तस्य नागरं स्मृतिकारिणम् ॥ ४६ ॥ पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा ॥ नेत्रे संरुज्य श्रांतस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥ ४७ ॥ ससंज्ञं च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः ॥ मा शंका ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥ ४८ ॥ निष्किंचनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम् ॥ भिन्नपात्रेण चीरेण न मे किंचिद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ एतावद्वद मे विद्वन् ! वणिक् कुत्र पलायितः ॥ कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रं पलायता ॥ ५० ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि ॥ ॥ कर्षण उवाच ॥ धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात् पलायितः ॥ ५१ ॥

तौभी मेरे विपे तुम कुछ शंका न करौ ॥ ४८ ॥ संसारमें निर्धनी पुरुप सदा सुखी रहते हैं; फिर क्यों डरते हो ? तुमारे फूटे वस्त्रसे मुझको क्या लाभ होगा ॥ ४९ ॥ हे विद्वन् ! तुम यह बताओ कि वह वैश्य कहां भाग गया और भागते समय शीघ्रतासे उसने अपना धन किस वृक्षके पत्तोंमें फेंक दिया ? ॥ ५० ॥ जो तुम ठीक

नहीं बताओगे तो तुमको मार डालूंगा." यह सुन कर्षण मुनिने कहा कि–" वह वैश्य वृक्षोंमें अपना धन फेंक गया और इस मार्गसे होकर भाग गया है " ॥ ५१ ॥ जब इस प्रकार अपने प्राणकी रक्षाके अर्थ डरकर मुनिने कहा, तब व्याधने कहा–' हे विप्र ! मुझसे निंडर होकर शीघ्र तुम सुखपूर्वक चले जाओ ॥ ५२ ॥ यहांसे कुछही दूरपर एक तालाव है. उसमें निर्मल जल भरा है. उस जलको पीकर अपना परिश्रम दूर होनेपर गांवको चले जाना ' ॥ ५३ ॥ राजकीय कर्मचारीगण वैश्यका

इति प्राह भयात्सोऽपि पृष्टः प्राणपरीप्सया ॥ गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥ ५२ ॥ इतोऽविदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् ॥ तत् पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छ ग्रामं गतश्रमः ॥ ५३ ॥ अधुनैवागमिष्यंति राजकीयाः पथा जनाः ॥ मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥ ५४ ॥ तृषार्तमनुगंतुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज ॥ वीजयानेन पर्णेन घर्मः किंचिद्गमिष्यति ॥ ५५ ॥ तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमागाद्विपिनं पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन वैशाखे घर्मघर्घरे ॥ ५६ ॥ स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणेन पद्धतौ ॥ जन्मासीत्ते महापुण्ये राजवंशेऽतिविस्तृते ॥ ५७ ॥ यदीच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसंपदः ॥ स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥ ५८ ॥

रोना सुनकर हमारे पांवोंके चिह्नसे खोज लगाते हुये यहां अबही आवेंगे ॥ ५४ ॥ हे ब्राह्मण ! इसकारण, प्याससे पीडित तुमारे पीछे हम चल नहीं सकते. इस पत्तेसे पवन करनेपर कुछ गरमी शांत हो जायगी' ॥५५॥ इसप्रकार उस ब्राह्मणको पता देकर तुम गहन वनमें चले गये. इस इस पुण्यके प्रभावसे वैशाखमासके प्रचंड घाममें ॥ ५६ ॥ यद्यपि तुमने अपना कार्य साधन करनेके अर्थ, उस मुनिकी रक्षा करी, तथापि उसी पुण्यके प्रभावसे महापवित्र और विशाल राजवंशमें तुमारा जन्म हुआ ॥ ५७ ॥ अब जो

राज्य, सुख, धन-धान्यादि सम्पदा और स्वर्ग, अपवर्ग, सायुज्यमुक्ति अथवा हरिके परमपदकी इच्छा होवै ॥ ५८ ॥ तो तुम वैशाखके धर्मोंको करौ, जिससे सर्व सुख पाओगे इस मासका नाम माधव है. इसमें शुक्लपक्षकी तीज अक्षय है. इसीसे इसको अक्षयतृतीया कहा ॥ ५९ ॥ इस दिन तुरंतको व्याई गौ ब्राह्मणको देनेसे तुमारे कोशआदिकी पूर्णता होगी. शय्याका दान करनेसे सुख प्राप्त होगा ॥ ६० ॥ छतरीदान करना तो साम्राज्यकी प्राप्ति होगी. विधिसे स्नान करौ और माधवकी पूजा करौ ॥ ६१ ॥

कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि ॥ मासोऽयं माधवो नाम तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ ५९ ॥ गां च सकृत् प्रसूताख्यां देहि विप्राय सीदते ॥ तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छय्यां देहि सुखं भवेत् ॥ ६० ॥ कुरु छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति ॥ स्नानं कुरु यथान्यायं तथैवार्चय माधवम् ॥ ६१ ॥ देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् ॥ आत्मतुल्यगुणान् पुत्रान् यदि कामयसे नृप ॥ ६२ ॥ सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु ॥ वैशाखोक्तानिमाम् धर्मान् सम्यगाचर भूमिप ॥ ६३ ॥ तेन ते सकला लोका वशं यांति न संशयः ॥ निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान् करिष्यसि ॥ ६४ ॥ वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन् प्रीतये मधुघातिनः ॥ प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव निर्मलचेतसः ॥ ६५ ॥

सुन्दर प्रतिमा बनवाकर दान करौ. इससे तुमारी जीत होगी. हे राजन् ! जो तुम अपने समान पुत्रोंकी इच्छा करते हो ॥ ६२ ॥ तो सब प्राणियोंके हितार्थ प्रपादान ( पौशालाद्वारा जलदान ) करौ और हे राजन् ! वैशाखोक्त इन सब धर्मोंको भलीभांति करौ ॥ ६३ ॥ इससे सब लोक तुमारे वशमें हो जायँगे. इस वैशाखमासमें मधुसूदनभगवान्‌की प्रसन्नताके अर्थ, जो तुम निष्कामनासे इन सब धर्मोंको करौगे तो विष्णुभगवान् तुमको प्रत्यक्ष दर्शन देवैंगे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

जिन मनुष्योंने इन कल्याणकरी धर्मोंको किया है और करते हैं. उनको अक्षय लोककी प्राप्ति होती है. यह पुराणोंमें कवियोंने कहा है ॥ ६६ ॥ यह जिसप्रकार हमने सुनी और जैसे देखी सो सब तुमारे आगे कही. " इसप्रकार राजाको समझाकर दोनों कुलपुरोहित ॥ ६७ ॥ याज और उपयाज नामवाले अपने स्थानको चले गये. तब वह महापराक्रमी राजा अपने पुरोहितोंके समझानेके अनुसार ॥ ६८ ॥ श्रद्धापूर्वक वैशाखोक्त सब धर्मोंको करने लगा. तहां उपदेशके अनुसारही मधुसूदन भगवान्का पूजन

येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः ॥ तेषां च ह्यक्षया लोकाः पुराणे कवयो विदुः ॥ ६६ ॥ एतत् सर्वं तव प्रोक्तं यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ इति राजानमामंत्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ ॥ ६७ ॥ याजोपयाजकौ नाम जग्मतुस्तौ यथाऽऽगतौ ॥ ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥६८॥ वैशाखधर्मान् सकलांश्चकार श्रद्धयान्वितः ॥ यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमचर्यत् ॥६९॥ ततो लब्धप्रभावः सन् बंधुभिः सकलैर्वृतः ॥ पांचालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥ ७० ॥ ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः ॥ प्रवेशं च पुरस्याथ पुनराजग्मुरुद्धताः ॥ ७१ ॥ तदा पांचालभूपेन नृपाणामभवद्रणः ॥ जिग्ये सर्वान् महाबाहूनेक एव महारथः ॥ ७२ ॥

किया ॥ ६९ ॥ इन धर्मोंके प्रभावसे अपने सम्पूर्ण कुटुंबसमेत बचीहुई सब सेना साथ लेके अपनी पांचाल नगरीमें प्रवेश किया ॥ ७० ॥ अनन्तर जब राजाके शत्रुओंने सुना कि–' राज फिर आ गया है, ' तब मदोन्मत्त होकर राजाके नगरपर चढाई करने लगे ॥ ७१ ॥ इसप्रकार पांचालदेशका राजा और शत्रुओंका संग्राम सदा होता रहा,

परंतु इस एकही महारथी राजाने सबको जीत लिया ॥ ७२ ॥ अनेक देशके आये हुये राजा हारकर भाग गये. उनके हाथी घोडोंको राजा स्वयं ले आया ॥ ७३ ॥ दश अरब घोडे, तीन करोड हाथी, एक अरब रथ और दशहजार ऊँट तथा ॥ ७४ ॥ तीन लाख गधा, उस पुरीमें लाया. वैशाखोक्त धर्मके प्रभावसे तत्क्षणही सब उस राजाको ॥७५॥ कर देने लगे. मनोरथभंग हो गये. चरणोंमें आय गिरे तथा पांचाल देशमें बडा सुभिक्ष होता हुआ ॥७६॥ और मधुसूदनकी कृपासे एकछत्र राज्य हुआ. तथा

पलायितेषु भूपेषु नानादेशपथिष्वपि ॥ राज्ञां कोशगजानश्वान् स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥ ७३ ॥ अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम् ॥ रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥ ७४ ॥ रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यात् क्षणात् सर्वे च भूभृतः ॥ ७५ ॥ करदा भग्नसंकल्पाः पादाक्रांता बभूविरे ॥ सुभिक्षमतुलं चासीत् पांचालविषयेषु च ॥ ७६ ॥ एकछत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः ॥ पुत्राः पंचापि तस्यासन् शौर्यौदार्यगुणान्विताः ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथाऽपरे ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥ ७८ ॥ अनुरक्ताः प्रजाश्चासन् धर्मेण प्रतिपालिताः ॥ वैशाखस्य प्रतापेन प्रत्ययस्तत्क्षणादभूत् ॥ ७९ ॥ पुनश्चकार तान् धर्मान् पांचालनगरीश्वरः ॥ अकामुकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ॥ ८० ॥

पांच पुत्र शूरवीर और उदार उत्पन्न हुये ॥ ७७ ॥ धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, विजय, चित्रकेतु ये सब मयूरध्वजके सदृश हुये ॥ ७८ ॥ धर्मपूर्वक प्रतिपालित सब प्रजा अपने राजामें अनुराग करती हुई और वैशाखके प्रतापसे तत्क्षण सब विश्वास करने लगे ॥ ७९ ॥ अनन्तर पांचालदेशका राजा, निष्कामनापूर्वक प्रसन्नमनसे मधुसूदन

भगवान्‌के निमित्त सब धर्म करता हुआ ॥ ८० ॥ और इस धर्मसे प्रसन्न होकर मधुसूदनभगवान् अक्षयतीजके दिन राजाको प्रत्यक्ष दर्शन देते हुये ॥ ८१ ॥ तब अच्युत भगवान्‌को देखकर राजा परम विस्मयको प्राप्त हुआ. कैसे भगवान् नारायण हैं कि चार जिनके भुजायें हैं, जिनमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये है ॥ ८२ ॥ पीताम्बर पहरे, वनमाला गलेमें सुशोभित हो रही, लक्ष्मी और पार्षदोंकरके युक्त हैं तथा गरुडपर विराजमान हैं ॥ ८३ ॥ इसप्रकार देखकर राजा तेज नहीं सह सका. तब नेत्र

धर्मेणानेन संतुष्टो भगवान् मधुसूदनः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् ॥ नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ८२ ॥ पीतांबरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥ ८३ ॥ निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः ॥ उत्पतन् संपतन् हर्षान्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥ ८४ ॥ पुलकांकितसर्वांगो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्रांजलिः प्रणतो भुवि ॥ ८५ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालदेशाधिपतेर्जयावाप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोध्यायः ॥ ॥ १५ ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना ॥ चिरं निरीक्ष्याकुललोचनैरमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम् ॥ १ ॥

बंद कर लिये; अनंतर भगवान्‌के दर्शन कर हर्षके कारण उन्मत्तकीसी चेष्टा करने लगा ॥ ८४ ॥ सब शरीरके रोम खडे हो गये. नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे. तब परम भक्तिसे हाथ जोड शिर नवाय प्रसन्नमनसे स्तुति करने लगा ॥ ८५ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्दरिद्रनाशनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रुतदेवजी बोले-" भगवान्‌के दर्शनसे आनन्दमें मग्नहृदयवाला राजा तुरन्त शिर झुकाय प्रणाम करता हुआ और बहुत समयपर्यन्त आकुल

नेत्रोंसे विश्वात्मदेव जगदीश भगवान्‌के दर्शन करता हुआ ॥ १ ॥ और भगवान्‌के चरण धोय उस चरणोदकको शिरपर धारण किया, जिन चरणोंसे उत्पन्न हुईं गंगाजी सब जगत्‌को पवित्र करती हैं. तदनन्तर वह राजा बहुत मूल्यवान् वस्त्र, आभूषण और चन्दनआदिसे विष्णुका पूजन करता हुआ ॥ २ ॥ धूप, दीप, फूलमाला, नैवेद्य और आत्मसमर्पण आदिसे पुराणपुरुष नारायण निर्गुण अद्वितीय भगवान् विष्णुको प्रसन्न करता हुआ ॥ ३ ॥ निरंजन, ब्रह्मआदिके स्वामी, परात्पर, ब्रह्माआदिसे वन्दित, जिनकी मायाकरके तत्वज्ञानी बडे बडे उत्तमजनभी मोहित हो रहे हैं; विश्व रचनेवालोंके अधीश्वर ॥ ४ ॥ जिनकी मायामें मूढबुद्धिवाले मोहित हैं, अनेक गुणोंसे भगवान्

दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजा ब्रह्म जगत् पुनाति ॥ समर्चयामास महाविभूति--महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ २ ॥ स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिस्स्वगात्रवित्तात्मसमर्पणेन ॥ तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ३ ॥ निरंजनं विश्वसृजामधीशं परात्परं ब्रह्मभवादिवंदितम् ॥ यन्मायया तत्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम् ॥ ४ ॥ मुह्यंति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ ॥ ५ ॥ समस्तदेवासुरसौख्यदुःख-प्राप्त्यै भवान् पूर्णमनोरथोऽपि ॥ तत्रापि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय ॥ ६ ॥ तमोगुणं राक्षसबंधनाय रजोगुणं निर्गुण विश्वमूर्ते ॥ दिष्ट्या त्वदंघ्रिं प्रणताघनाशनं तीर्थास्पदं हृदि धृतं सुविपक्वयोगैः ॥ ७ ॥

हैं और चेष्टासे रहित हैं, अनेक रूपोंकरके जगत्‌का स्वयं उत्पत्ति स्थिति (पोषण) और संहार करते हैं ॥ ५ ॥ समस्त देवता और असुरोंके सुख और दुःखकी प्राप्तिके निमित्त पूर्णमनोरथ होनेपरभी आप लीन नहीं होते हैं. तथापि काल पाय अपने भक्तोंकी रक्षाके निमित्त आप सतोगुण धारण करते हैं, तथा दुष्टोंका दमन करनेके अर्थ ॥ ६ ॥ तमोगुण और राक्षसोंका बन्धन करनेको रजोगुण धारण करते हैं. हे निर्गुण विश्वमूर्ते ! आपके चरणकमल धन्य हैं. जिन चरणोंके शरणागत होनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं. जब

कि कर्मोंके योगसे तीर्थरूप आपके चरण हृदयमें धारण किये जाते हैं ॥ ७ ॥ जो प्राणी, तुमारे चरण स्मरणरूप तोयमें जिनका परिपूर्ण भक्तिसे देहभान विस्मृत हो गया है ऐसे अपने अंतःकरण आर्द्र करेंगे तो उनको उत्तम गति प्राप्त होगी और वे भवरूप कालसर्पके पाशसे व जन्मजरादि दुःखोंसे मुक्त होंगे ॥ ८ ॥ तुमारे चरणोंकी विस्मृतिसे बिलावके समान प्याससे पीडित अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हूं. न मैने दान किया, न तुमारी कथा सुनी, न साधुजनोंकी सेवा मैने करी ॥ ९ ॥ उसी अपराधसे शत्रुओंने मुझको परास्त कर दिया. मेरा विभव नष्ट होगया. तब वनमें जाकर वसा. वहां मैने अपने गुरुजनोंका स्मरण किया. स्मरण करतेही वे मेरे समीप आय उन्होंने मेरी दीन दशापर दया कर मुझको दुःखसे छुडानेका उपदेश किया ॥ १० ॥ वेदोक्त शुभस्वर्गअपवर्ग पुरुषार्थ चतुष्टय ( अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष ) के देनेवाले वैशाखके धर्म

उत्सिक्तभक्त्युपहृताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतोये ॥ भवाख्यकालोरगपाशबंधः पुनः पुनर्जन्मजरादिदुःखैः ॥८॥ भ्रमामि योनिष्वदमाखुभक्षवत् प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः ॥ नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयापि सेविताः ॥ ९ ॥ तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरूनहं स्मरन् ॥ स्मृतौ च तौ मांसमुपेत्य दुःखात् संबोधयांचक्रतुरार्तबंधू ॥ १० ॥ वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादिपुमर्थहेतुभिः ॥ तद्बोधतोऽहं कृतवान् समस्तान् शुभावहान् माधवमासधर्मान् ॥ ११ ॥ तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाखिलाः संपद ऊर्जिता इमाः ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥१२॥ उपासितास्तेपि हरंत्यघं चिराद्विपश्चितो घ्नंति मुहूर्तसेवया ॥ यन्मन्यसे त्वं भविताऽपि भूरिशस्त्यक्तेषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् ॥ १३ ॥

जिसप्रकार हमारे पुरोहितोने बताये उसीप्रकार मैंने उन धर्मोंको किया. माधवमासके ये धर्म परम शुभ फलके देनेवाले हैं ॥ ११ ॥ उन्हीं धर्मोंके प्रभावसे मैं परम प्रसन्न हूं. मुझको उन्हींके प्रभावसे सब विभव प्राप्त हुआ है. अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी, मन ॥ १२ ॥ इनकी उपासना नहीं की. इनकी उपासना करनेपर बहुत दिनोंमें दुःख दूर होता है. परन्तु महात्माजन क्षणभरमेंही सब पापोंको दूर कर देते हैं. ये महात्मा कैसे हैं कि जिनने सब इच्छा त्याग दी हैं और तुमारेमेंही

अपना मन लगा दिया है ॥ १३ ॥ हे स्वतंत्र ! हे विचित्र कर्म करनेवाले ! हे परमात्मन् ! हे साधुजनोंपर अनुग्रह करनेवाले ! आपको नमस्कार है. मैं आपकी मायामें मोहित होकर अनर्थरूप स्त्री–धनआदि गुणोंमें भ्रम रहा हूं ॥ १४ ॥ तुमारे चरणकमल संसाररूप दुःखोंको मूलसे उखाडनेवाले हैं. सब पापोंके नाश करनेवाले और निर्मल हैं. सुखकी इच्छासे अनर्थके मूलकारण जो अपने स्त्री–पुत्रादि हैं तिनकी ममतामें पडकर ॥ १५ ॥ न मुझको नींद आती है, न कहींभी सुख मिलता है. क्योंकि, वारंवार इन्हींमें मेरी तृष्णा बढ रही है. राजाका दुर्लभ शरीर पाकरभी जो अर्थ–धर्म–काम–मोक्षका एक मात्र हेतु ॥ १६ ॥ ऐसे भगवच्चरणारविन्दोंका ध्यान मैं नहीं करता हूं.

नमः स्वतंत्राय विचित्रकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय ॥ त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥ १४ ॥ त्वत्पादपद्मं स्मृतिमूलनाशनं समस्तपापापहरं सुनिर्मलम् ॥ सुखेच्छयानर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः ॥ १५ ॥ न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् ॥ लब्ध्वा दुर्लभं नरदेवजन्म त्वं यत्नतः सर्वपुमर्थहेतुः ॥ १६ ॥ पादारविंदं न भजामि देव ! संमूढचेता विषयेषु लालसः ॥ करोमि कर्माणि सुनिश्चितः सन् प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददन् ॥ १७ ॥ पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिंताशतलोलमानसः ॥ तदैव जीवस्य भवेत् कृपा विभो दुरंतशक्तेस्तव विश्वमूर्तेः ॥ १८ ॥ समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवांबुधिर्येन हि गोष्पदायते ॥ सत्संगमादेव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः ॥ १९ ॥

देव ! मेरी बुद्धि बडी मूढ है. विषयोंमें आसक्त है. अनेक कर्म करता हूं, तोभी इन विषयोंमें मेरी तृष्णा बढ रही है ॥ १७ ॥ " आज मैं ऐसा होऊं, कल ऐसा हो जाऊ " इसप्रकार रातदिन सैकडों प्रकार चिन्तामें मन डामाडोल रहा करता है. हे दुरन्तशक्ते ! विश्वमूर्ते ! जब तुमारी कृपा इस जीवपर होती है ॥ १८ ॥ तब महात्माओंका सत्संग प्राप्त होता है. जिससे यह संसारसागर गौके खुरके समान पुरुषोंको जान पडता है. हे देव ! जब साधुजनोंका समागम होता है

तवही आपमे मतिकी प्रवृत्ति होती है ॥ १९ ॥ आपने जो मेरे ऊपर अनुग्रह किया है, इससे अपने सब राज्यको निष्फलही मानता हूं. ब्रह्मादिक देवता और असुर आदि सब कि जिनकी तृष्णा निवृत्त हो गइ है, ऐसे संन्यासीगण यही प्रार्थना करते है ॥ २० ॥ अच्युत भगवान्को मै आदरसहित नमस्कार करता हूं; जिनक चरणकमल सांसारिकतापोको दूर करते हैं. दरिद्रियोंसे प्रार्थनाके योग्य अमन्द सौभाग्यके देनेवाले हैं. मै तुमारे चरणकमलसे भिन्न किसी वातकी कामना नहीं करता हूं ॥ २१ ॥ अतः मुझको न राज्यकी इच्छा है, न पुत्रआदिकी इच्छा, न धनकी इच्छा हे. इस निरंतर पतन होनेवाली मिट्टीसे उत्पन्न देह करके उपासनाके

समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमंजसा ॥ यद्धार्यते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपि हंसयूथैः ॥ २० ॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभोः ॥ अकिंचनप्रार्थ्यममंदभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात् ॥२१॥ अतो न राज्यं न सुतादिकोशं देहेन शश्वत् पतता रजोभुवा ॥ भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविंदं मुनिभिर्विचिंत्यम् ॥ २२ ॥ प्रसीद देवेश जगन्निवास स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे ॥ सक्तिः सदा गच्छतु दारकोश--पुत्रात्मचिन्हेषु गुणेषु मे प्रभो ॥२३॥ भूयान्मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने ॥ नेत्रे मम स्यात्तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिता ॥ २४ ॥ घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे त्वद्भक्तगंधादिविलेपने सकृत् ॥ स्यातां च हस्तौ तव मंदिरे विभो संमार्जनादौ मम नित्यदैव ॥ २५ ॥

योग्य आपके चरणकमलोंका ध्यान करता हूं. मुनिजनभी निरन्तर आपके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ हे जगन्निवास ! हे देवेश ! आप प्रसन्न हो जाओ, जिससे आपके चरणकमलमे हमारी स्मृति होय. हे प्रभो ! स्त्री–पुत्र–कोशआदिमे मेरी आसक्ति न होय ॥ २३ ॥ मेरा मन आपके चरणकमलमें लगै, मेरी वाणी आपकी दिव्य कथा कहनेमें प्रवृत्त होय, मेरे नेत्र आपकी मूर्तिके दर्शनमें लगें; मेरे कान आपकी कथा सुनते रहे और जिह्वा आपके गुणानुवादमें समर्पित होवै ॥२४॥ नासिका आपके चरणार-

विन्दका मकरंद सूंघनेमें प्रवृत्त हो, हाथ आपके मन्दिरको बुहारनेमें सतत लगे रहैं ॥ २५ ॥ मेरे पांव आपकी कथाके स्थानमें ले जायं. मेरा शिर आपकी वन्दनामें लगा रहै. आपकी कथामें मेरी कामना और आपके विचारमें मेरी बुद्धि रातदिन रहै ॥ २६ ॥ घरपर आये हुये मुनिके संग आपकी सत्कथाके गानमें मेरे दिन व्यतीत होवै. हे प्रभो ! एक क्षण वा आधा निमेषभी आपके प्रसंगविना व्यतीत नहीं होवै ॥ २७ ॥ हे विष्णो ! मैं पारमेष्ठ्य और समस्त भूमंडलका राज्य और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी इच्छा नहीं

पादौ विभो क्षेत्रकथानुसर्पणे मूर्ध्ना च मे स्यात्तव वंदनेऽनिशम् ॥ कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यातव चिंतनेऽनिशम् ॥ २६ ॥ दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः ॥ हीनप्रसंगस्तव मे न भूयात् क्षणं निमेषार्द्धमथापि विष्णोः ॥२७॥ न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्ग्यं स्पृहयामि विष्णो ॥ त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः ॥२८॥ इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः ॥ मेघगंभीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥२९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ जाने त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम् ॥ अथापि ते प्रदास्यामि वरं देवतदुर्लभम् ॥ ३० ॥ आयुष्यं चायुतं दिव्यं संपदश्च नरेश्वर ॥ भक्तिर्मयि दृढा भूयादंते सायुज्यमेव च ॥ ३१ ॥

करता हूं. मैं तो सदैव तुमारे चरणोंकी सेवाकी कामना करता हूं जिन चरणोंकी सेवाकी इच्छा लक्ष्मी और ब्रह्मा तथा महादेव आदि सब देवता करते हैं ॥ २८ ॥ इसप्रकार राजाकी स्तुति सुनकर कमलनयन भगवान् अतिप्रसन्नतापूर्वक मेघसमान गंभीर वाणीकरके राजाके प्रति बोले ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् कहने लगे— " हे राजन् ! मैं तुमको जानता हूं. तुम निष्काम और पापरहित हमारे दासोंमेंसे श्रेष्ठ भक्त हो. तथापि देवदुर्लभ वर हम तुमको देते हैं ॥३०॥ तुमारी आयु दश हजार वर्षकी होगी. दिव्य धनसम्पत्तिसे

युक्त होंगे. हमारी दृढ भक्ति रहेगी. अन्तमें सायुज्यमुक्ति प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ पृथ्वीपर जे कोई तुमारी की हुई स्तुतिसे हमारी स्तुति करेंगे उनपर प्रसन्न होकर हम उनको भक्तिमुक्ति प्रदान करेंगे ॥३२॥ आजका दिन पृथ्वीपर अक्षय्य तृतीयाके नामसे प्रसिद्ध होगा. जिसमें भुक्तिमुक्तिके देनेवाले हम तुमपर प्रसन्न हुये हैं ॥ ३३ ॥ अक्षय्यतृतीयाके दिन जो मूढ मनुष्य जाने अथवा विना जाने स्नानदान आदि क्रिया करेंगे, वे हमारे अक्षय पदको प्राप्त होवेंगे ॥ ३४ ॥ तथा जे अक्षय्यतृतीयाके दिन पितरोंका श्राद्ध करते हैं, सो अक्षय हो जाता है अर्थात् उस श्राद्ध-

त्वया कृतेन स्तोत्रेण मां स्तुवंति च ये भुवि ॥ तेषां तुष्टः प्रदास्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥ ३२ ॥ तृतीयैषाक्षया नाम भुवि ख्याता भविष्यति ॥ तस्यां तव प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ३३ ॥ ये कुर्वंति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ व्याजेनापि स्वभावाद्वा यांति मत्पदमव्ययम् ॥ ३४ ॥ ये चाक्षयतृतीयायां पितॄनुद्दिश्य मानवाः ॥ श्राद्धं कुर्वंति तेषां वै तदानंत्याय कल्पते ॥ ३५ ॥ न चानया तिथिर्लोके समा वा नाधिका भुवि ॥ अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ३६ ॥ यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुंबिने ॥ सर्वसंपत्प्रवर्षाख्या भुक्तिर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ३७ ॥ यो हि दद्यादनड्वाहं सर्वपापविनाशनम् ॥ कालमृत्युविमुक्तः सन् दीर्घायुष्यमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ वैशाखमासे यो धर्मान् कुरुते मत्प्रियावहान् ॥ तस्य मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम् ॥ ३९ ॥

का क्षय नहीं होता है ॥ ३५ ॥ भूमंडलमें इस तिथिके समान और कोई तिथि नही है. अक्षय्यतृतीयाके दिन थोडाभी किया हुआ कर्म अक्षय फल देता है ॥ ३६ ॥ हे राजसत्तम ! जो कुटुंबी ब्राह्मणके अर्थ गोदान करता है, उसको सर्व संपत्ति होती है; भक्ति और मुक्ति दोनों उसको हस्तगत हो जाती हैं ॥३७॥ जो बैल दान करता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और कालमृत्युसे छूटकर दीर्घायुकी उसको प्राप्ति होती है ॥३८॥ जो वैशाखमें मेरे प्रिय करनेवाले धर्मोंको करते हैं, उनके मृत्यु, जरा, जन्म, भय, पाप इनको नाश कर देता हूं ॥३९॥

जिसप्रकार मैं वैशाखोक्त धर्मोंसे प्रसन्न होता हूं, वैसे दूसरे किसी महीनेके धर्मोंसे प्रसन्न नहीं होता हूं. सब महीनोंमें वैशाखमास मुझको बहुत प्यारा है ॥ ४० ॥ जिनने सर्व धर्म त्याग दिये हैं और जो ब्रह्मचर्यसे रहित हैं, वेभी वैशाखोक्त धर्मोंके करनेसे अव्यय पदको प्राप्त होते है ॥ ४१ ॥ तप, सांख्य, योग और यज्ञआदिसेभी जो प्राप्त नहीं हो सकता, वैशाखोक्त धर्ममें तत्पर होनेसे मनुष्य उस परम धामको जाते हैं ॥ ४२ ॥ हे अनघ ( पापरहित ) ! यह वैशाखमास हजारों पापोंको दूर कर देता

यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि ॥ मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥ ४० ॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्य-
विवर्जिताः ॥ वैशाखमासनिरता यांति मत्पदमव्ययम् ॥ ४१ ॥ यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि ॥ तद्धाम परमं यांति वैशाख-
निरता नराः ॥ ४२ ॥ अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ ॥ प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥ ४३ ॥ गुरूपदिष्टः कांतारे
वैशाखनिरतो भवान् ॥ समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥ ४४ ॥ धर्मेणानेन संप्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते ॥ भुक्त्वा भोगान्
यथाकामान् देवैरपि सुदुर्लभान् ॥ ४५ ॥

है अथवा सब प्रायश्चित्तोंसे हीन हो जाता है. जैसे, हमारे चरणोंके स्मरणसे पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥ गुरुके उपदेशसे तुम वनमें वैशाखधर्म करने लगे और जगत्के नाथ भगवान्‌की आराधनासे तुमको सब वस्तु प्राप्त हो गई है ॥ ४४ ॥ इस धर्मसे प्रसन्न होकर मैं तुमारे सामने प्रत्यक्ष हुआ हूं. अब तुम देवताओंको भी दुर्लभ ऐसे

भोगोंको भोग करो" ॥ ४५ ॥ देवदेव जनार्दन भगवान् इसप्रकार राजाको वरदान देके सबके देखते वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ४६ ॥ तब वह राजसत्तम परम विस्मयको प्राप्त हुआ और ऐसा हृष्टपुष्ट शरीर हुआ, जैसे कोई खोये हुये धनको पाकर सन्तुष्ट होता है ॥ ४७ ॥ तदनन्तर विष्णुभगवान्में अपना मन लगाकर पृथ्वीका शासन करने लगा. और बडेबडे महात्मा और गुरुसे प्रतिदिन ज्ञान प्राप्त करता हुआ ॥४८॥ और भगवान् वासुदेवके विना अन्य किसीको नहीं जानता हुआ जिनके संपर्कसे स्त्री, अमात्य और

इति तस्मै वरं दात्वा देवदेवो जनार्दनः ॥ पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवांतरधीयत ॥ ४६ ॥ ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यंतविस्मितः ॥ हृष्टपुष्टतनुर्भूप लब्धनष्टधनो यथा ॥ ४७ ॥ ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः ॥ महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्च निरंतरम् ॥ ४८ ॥ नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः ॥ यत्संपर्कात् प्रिया आसन् दारामात्यसुतादयः ॥ ४९ ॥ सर्वान् धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान् पुनः पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेन पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥ भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् देवानामपि दुर्लभान् ॥ अंते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥५१॥ य इदं परमाख्यानं शृण्वंति श्रावयंति च ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यांति विष्णोः परं पदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे पांचालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पुत्रआदि सब प्रिय होते हुये; ऐसे ॥ ४९ ॥ वैशाखके सब धर्मोंको राजा वारंवार करता हुआ, जिन धर्मोंके प्रभावसे पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि हुई ॥५०॥ तथा देवताओंको भी दुर्लभ ऐसे मनोरथोंको भोगकर वह राजा अन्तमे विष्णुभगवान् चक्रपाणिकी सायुज्यताको प्राप्त हुआ ॥५१॥ जो इस परम मनोहर आख्यानको सुनते और सुनाते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमदको जाते हैं ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीष संवादे पांचालाधिपतेः सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

श्रुतकीर्तिजी बोले–" हे मुनिवर ! मैने सब वैशाखधर्म सुने, जो लोक परलोक दोनोंमें फलदायक हैं; जिनको वारंवार सुननेसेभी मेरी तृप्ति अबभी नहीं होती है ॥ १ ॥ जहां निष्कपट धर्म है, जहां शुभदायक विष्णुकथा होती है, उस कानोंको सुख देनेवाली कथको सुनते सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ मेरे पूर्वजन्मके पुण्योंका उदय हुआ है, जो अतिथिरूपसे आप मेरे घर आकर प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ आपके मुखारविंदसे निकले हुये परम अद्भुत और अमृतरूपी वचनोंसे मैं ऐसा तृप्त हुआ हूं कि–"अब मैं पारमेष्ठ्य पद और मोक्ष-

श्रुतकीर्तिरुवाच ॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्र फलप्रदान् ॥ भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाद्यापि मानद ॥ १ ॥ यत्र चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णुकथाः शुभाः ॥ तच्छास्त्रं शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥ २ ॥ पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् ॥ आतिथ्य व्यपदेशेन यद्भवान् गृहमागतः ॥ ३ ॥ वचनामृतं मुखांभोजनिःसृतं परमाद्भुतम् ॥ पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा च न कामये ॥ ४ ॥ तस्मात्तानेव धर्मान् मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् भूयो विस्तरतो वद ॥ ५ ॥ इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः ॥ संहृष्टात्मा शुभान् धर्मान् पुनर्व्याहर्तुमारभे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः ॥ ७

कीभी इच्छा नहीं करता हूं" ॥४॥ इसकारण, भुक्तिमुक्तिको देनेवाले और विष्णुभगवानको प्रसन्न करनेवाले दिव्य धर्मोंको विस्तारसहित आप वर्णन कीजिये " ॥५॥ राजाके यह वचन सुनकर महायशस्वी श्रुतदेवजी बहुत प्रसन्न हुये और शुभ धर्मोंका फिर वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ श्रुतदेव कहने लगे–" हे राजन् ! सुनो, पापोंको नाश करनेवाली

कथा फिर मैं कहता हूं. यह कथा वैशाखधर्म सम्बन्धी मुनियोंकरके भावित है ॥ ७ ॥ पंपाके समीप शंखनाम एक महायशस्वी ब्राह्मण सिंहके बृहस्पतिमें उत्तमा गोदावरी नदीपर आता हुआ ॥ ८ ॥ पवित्र भीमरथीके पार जाकर कंटकयुक्त पहाडी वनमें जाता हुआ. इस वनमें न जल था. न कोई मनुष्य था ! इसप्रकार वैशाखके तापसे सन्तप्त ॥ ९ ॥ दो पहरके समय यह ब्राह्मण एक वृक्षकी छायामें बैठ गया. उसी समय वहां एक दुराचारी व्याध, हाथमें धनुष् लिये आ पहुंचा ॥ १० ॥ यह व्याध सब प्राणियोंसे

पंपातीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशाः ॥ गुरौ सिंहगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभा ॥ ८ ॥ तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाचले ॥ निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तपकर्शितः ॥ ९ ॥ वृक्षे चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः ॥ तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधश्चापधरः शठः ॥ १० ॥ निर्घृणः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः ॥ तं कुंडलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा बद्धा स जग्राह कुंडलादिकमुग्रधीः ॥ उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमंडलुम् ॥ १२ ॥ पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥ १३ ॥ ततः स गच्छन् पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे ॥ संतप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्चचारोपवसन्नूर्ध्वरेताः ॥ १४ ॥

घृणा करता था और साक्षात् दूसरे यमराजके समान था. उसने सूर्यके समान प्रकाशमान् कुंडलधारी इस ब्राह्मणको ॥ ११ ॥ देखकर बांध लिया और उसके कुंडल, जूता, छत्र, रुद्राक्षकी माला, कमंडलु ये सब छीन लिये ॥ १२ ॥ पश्चात् उसको छोडकर वह मूढबुद्धिवाला व्याध कहने लगा कि– " अब जाओ " ॥ १३ ॥ तब वह ब्राह्मण उस दुष्टसे छूटकर मार्गसे चलने लगा. जहां मार्गमें सूर्यकी किरणसे गरम रेती बिछ रही; जिनपर पांव जलते जाते हैं. पीनेको जल मिला नहीं. इसप्रकार उस कांटेवाले वनमे तृणसे

आच्छादित किसी स्थानपर वह ब्रह्मचारी बैठ गया ॥ १४ ॥ अनन्तर वह कहीं गिर पडे, कहीं ठहर जाय. इसप्रकार उस पीडित ब्राह्मणके हाय ! हाय ! ! शब्दको सुन-कर वह व्याध शीघ्रही उसके समीप पहुँचा और मुनिको व्याकुल देख दोपहरके समय इसके दया उत्पन्न हो आई ॥ १५ ॥ यह व्याध धर्मसे विमुख और पापबुद्धिवाला था, तथापि उस ब्राह्मणकी रक्षा करनेमें तत्पर हुआ कि पांवोंकी रक्षा कर सुख दूंगा यह विचार किया ॥ १६ ॥ और जो चोरीसे वा अपने धर्मसे ( छीनकर ) वनमें ग्रहण

स वै द्रुतं संपतन् क्वाति तिष्ठन् हाहेति वादी च जगाम तूर्णम् ॥ दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यंगते पूष्णि दया बभूव ॥ १५ ॥ व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥ १६ ॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनांतरे ॥ तदीयमेव तत् सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥ १७ ॥ तस्मादुपानहौ दास्ये सुहुर्दुःखापनुत्तये ॥ तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥ १८ ॥ जीर्णौ चोपानहौ दिव्यौ वर्तेते पादयोर्मम ॥ नावाभ्यामस्मि मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते ॥ शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥ २० ॥ उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृतिं च परां ययौ ॥ सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिरभिनंद्य च ॥ २१ ॥

कर लिया सो स्वधर्मसे मिलानेसे सब अपनाही हैं यह व्याधोंका न्याय है ॥१७॥ इसकारण, उस ब्राह्मणके क्लेशोंके नाशके लिये मैं अपना जोडा उसको दान देता हूं उस योगसे मेरे पाप क्षालनेक लिये मेरेको कुछ पुण्य होगा ॥१८॥ ये जो मेरे पांवमें पुराना जोडा जूतेका है, जिससे हमारा काम चल रहा है, सो इस ब्राह्मणको मैं देता हूं ॥१९॥ यह मनमें निश्चय कर शीघ्र जाय उसको जूतेका जोडा दे दिया वालूकी तापसे पांव उसके जले जाते थे. जूते पानेसे श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥२०॥ दोनों जूते लेकर परम सुख पाय वह ब्राह्मण

आशीर्वाद देने लगा कि सुखी रहो ॥२१॥ यह वैशाखमासमें दियेहुये दानोंके पुण्यका उदय है कि इस दानके प्रभावसे विष्णुभगवान् दुर्बुद्धि व्याधपरभी प्रसन्न हो जाते हैं॥२२॥ जो सुख सब प्रकारकी वस्तुओंके मिलनेसे होता है, वही सुख मुझको भी प्राप्त हुआ है." तब यह वचन सुन अत्यन्त विस्मित होकर ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवादी ब्राह्मणसे व्याध कहने लगा कि-" यह आपकीही वस्तु आपको दी है. इसमें मेरा क्या पुण्य है है ? ॥२४॥ आप वैशाखकी प्रशंसा करते हो और हरिभगवान् संतुष्ट होगा ऐसे बोलते हो, तो

नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानयम् ॥ व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति॥२२॥ सर्वस्याप्त्या च भूयोपि यत् सुखं तद्-
भून्मम ॥ ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥२३॥ व्याजहार पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम् ॥ त्वदीयं तु मया दत्तं कथं
पुण्यं भवेन्मम ? ॥ २४ ॥ प्रशशंसि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् को वैशाखस्तु को हरिः ॥ २५ ॥
को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा शंखस्तुष्टमना अभूत् ॥ २६ ॥ प्रशंसन् स च वैशाखं पुनर्विस्मि-
तमानसः ॥ इदानीं दत्तवान् पाद-त्राणे मे लुब्धकः शठः ॥ २७ ॥ यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत ॥ २८ ॥

हे ब्रह्मन्! यह बताओ कि वैशाख कौन है और हरि कौन है ? ॥२५॥ क्या उसका धर्म है और क्या उसका फल है ? हे दयानिधे ! यह मेरेको सुननेकी इच्छा है." व्याधका यह वचन सुनकर शंख प्रसन्नमन हुआ ॥ २६ ॥ फिर मनमें विस्मित होकर वैशाखकी प्रशंसा करने लगा. इस लुब्ध शठने अभी मुझको पादत्राण दिये ॥ २७ ॥ इस दुर्मति व्याधकी बडी

विचित्र विषमता हुई है ॥ २८ ॥ कि सब धर्मोंका फल जन्मान्तरमें मिलता है, परन्तु वैशाखमासके धर्मका फल तत्काल प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इस पापआचारवाले दुष्टात्मा और दुरात्मा व्याधकीभी दैवयोगसे उपानह दान करनेसे सत्वबुद्धि हो गई ॥ ३० ॥ जो कर्म विष्णुको प्रिय है, जिससे निर्मल संतोषकी प्राप्ति होती है, वही धर्म है. मनुआदि धर्मवेत्ताओंने यही धर्म वर्णन किये हैं. वैशाखमासके धर्म, विष्णुभगवान्‌को बहुत प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ केशव भगवान् जिसप्रकार वैशाखधर्मोंसे प्रसन्न होते हैं, वैसे सर्व दान, तप और बडे बडे यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥ सब धर्मोंमें इसके तुल्य कोई धर्म नहीं है. गयाजी न जाओ; गंगास्नान करने चाहे न जाओ;

सर्वेषामेवधर्माणां फलं जन्मांतरेषु वै ॥ वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणं नृणाम् ॥२९॥ पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥
दैवादुपानहोर्दानात् सत्वशुद्धिरभूदहो ॥ ३० ॥ यच्च विष्णोः प्रियं कर्म यत् तत् संतोषनिर्मलम् ॥ तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः ॥
धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥३१॥ धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः ॥ न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः
॥ ३२ ॥ नानेन सदृशो धर्मः सर्वधर्मेषु विद्यते ॥ मा गयां यातु मा गंगां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥३३॥ मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं
स्यमंतकम् ॥ मा गोदां मा च कृष्णां च मा सेतुं मरुद्वृधाम् ॥ ३४ ॥ वैशाखधर्मं माहात्म्यं शंसंती च कथापगा ॥ तत्र स्नातस्य
वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुद्ध्यते ॥३५॥ मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन् यत् स्वल्पेनैव साध्यते ॥ न तद्बहुव्ययैर्दानैर्धर्मैर्नापि च वै मखैः ॥ ३६ ॥

प्रयाग और पुष्करमें मत जाओ ॥ ३३ ॥ केदारनाथ, कुरुक्षेत्र और प्रभास आदितीर्थोंको न जाओ; गोदावरी, कृष्णा, सेतुबन्ध, रामेश्वर, कावेरीआदि तीर्थोंपर चाहे न जाओ ॥ ३४ ॥ परन्तु वैशाखधर्म कहनेवाली कथारूपी नदीमें स्नान करनेवालेके हृदयमें विष्णुभगवान् विराजमान रहते हैं ॥ ३५ ॥ इस माधव नामक वैशाखमासमें अनायाससे और स्वल्प व्ययसे धर्माचरण करके जैसा महान् फल मिलता है, वैसा बडा खर्च करके महान महान् दानें कीं, धर्म किये और यज्ञ किये, तोभी नहीं मिलता है ॥ ३६ ॥

" हे व्याध ! यह माधवनाम मास पुण्योंको बढानेवाला है. इस मासमें तापको हरनेवाली पादुका तुमने मुझको दी हैं ॥३७॥ इसकारण, तुमारे पूर्वजन्मके पुण्य उदय हो आये हैं. हे व्याध ! तुमारे ऊपर भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ३८ ॥ नहीं तो तुमारी बुद्धि इसप्रकार उत्तम कैसे हो सकती थी ? " जब मुनि ऐसे कहही रहे थे कि इतनेमे मृत्युकरके प्रेरित महाबली ॥ ३९ ॥ एक सिंह एक व्याघ्रको मारनेके निमित्त क्रोधसे विकल हो दौडता हुआ. परंतु बीचमें दैवकल्पित हाथीको देखके ॥ ४० ॥

मासोऽयं माधवो नाम व्याध पुण्यविवर्धनः ॥ तस्मिन् मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥ ३७ ॥ तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् ॥ तुष्टस्तु भगवान् प्रायः श्रेयो व्याध भविष्यति ॥३८॥ अन्यथा ते कथं भूयाद्बुद्धिरेतादृशी शुभा ? ॥ मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥ ३९ ॥ सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत् क्रोधविह्वलः ॥ मध्ये दृष्ट्वा च मातंगं दैवाद्देवेन कल्पितम् ॥ ४० ॥ तं हंतुमुद्यतो गच्छन् पादाक्रांतं व्यवस्थितम् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन् ! सिंहमातंगयोर्वने ॥ ४१ ॥ श्रांतौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षंतौ च तस्थतुः ॥ व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना ॥ ४२ ॥ समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ ॥ तेनैव माससमाहात्म्यश्रवणेनामलाशयौ ॥ ४३ ॥

१० उसके मारनेको उद्यत हुआ. हे राजन् ! तब सिंह और हाथी इन दोनोंका उस वनमें महाघोर संग्राम हुआ ॥ ४१ ॥ युद्ध करते करते दोनों थककर गिर पडे और युद्ध छोडकर दोनों एक दूसरेको देखने लगे और वहीं पडे रहे. व्याधके प्रति जो कथा महात्मा मुनिने कही ॥ ४२ ॥ वह सब पापोंको दूर करनेवाली है. दैवयोगसे उन दोनों

( सिंह हाथी ) ने यह कथा सुनी ! वैशाखमासमाहात्म्यकें सुननेहीसे उनके पाप दूर होकर देह निर्मल हो गये ॥ ४३ ॥ शाप छूट जानेसे तुरन्त पशुयोनिको त्यागकर स्वर्गलोकको गमन करते हुये· दोनौं दिव्यरूप धारण करते हुये और सुन्दर सुगन्धित चन्दनादि करके लेपित ॥ ४४ ॥ दिव्य विमानपर बैठ दिव्य स्त्रियोंसे सेवित, शिर नवाय हाथ जोड दोनौं खडे हुये ॥ ४५ ॥ मार्गमें व्याधके प्रति धर्मोपदेश करनेवाले मुनि उन दोनोंको देख विस्मित हो पूछने लगे–' कि तुम कौन हो ? ॥ ४६ ॥ दुर्योनिमें तुम्हारा

शापान्मुक्तौ च तौ देहाद् सद्यो मुक्तौ दिवं गतौ ॥ दिव्यरूपधरौ दिव्यौ दिव्यगंधानुलेपनौ ॥ ४४ ॥ दिव्यं विमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ ॥ सद्योवनतमूर्द्धानौ प्रांजली चोपतस्थतुः ॥ ४५ ॥ मुनींद्रो धर्मवक्ता च व्याधमुद्दिश्य वै पथि ॥ तौ दृष्ट्वा विस्मितः प्राह कौ युवामिति निश्चलः ॥ ४६ ॥ दुर्योनौ तु कुतो जन्म युवयोर्वा कथं मृतिः ? ॥ अहेतुर्विपिने चास्मिन् परस्परवधोद्यतौ ॥ ४७ ॥ एतद् सर्वं सुविस्तार्य सम्यग् वदत मेऽनघौ ॥ इत्युक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः ॥ ४८ ॥ मतंगस्य मुनेः पुत्रौ दंतिलः कोहलोऽपरः ॥ शापदोषेण तौ जातौ नाम्ना दंतिलकोहलौ ॥ ४९ ॥ रूपयौवनसंपन्नौ सर्वविद्याविशारदौ ॥ आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिता धर्मार्थकोविदः ॥ ५० ॥

जन्म कैसे हुआ है ? विनाकारण एक दूसरेको मारनेको उद्यत होकर मृत्यु कैसे हुई ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! यह सब विस्तारपूर्वक तुम हमसे कहौ. ' इसप्रकार मुनिने पूछा तब वे दोनौं बोले ॥ ४८ ॥ " मतंगमुनिके दंतिल और कोहल नाम दो पुत्र हुये. शापके दोषसे दंतिलकोहलनामवाले होते भये ॥ ४९ ॥ रूप और यौवनसम्पन्न सब विद्याओंमें पंडित ऐसे हम दोनौं थे. सो हमसे धर्मार्थमें निपुण पिताने कहा ॥ ५० ॥

मतंगनाम ब्रह्मर्षि सब धर्मोंके जाननेमें श्रेष्ठ कहने लगे—" हे पुत्रो ! मधुसूदन भगवान्के प्यारे वैशाखमासमें ॥ ५१ ॥ मार्गमें प्याऊ लगाओ; पंखासे मनुष्योंके सुख-निमित्त पवन करो; मार्गमें छायाके स्थान बनाओ; अन्न और शीतल जल दान करो ॥ ५२ ॥ प्रातःकालमें स्नान करो; विष्णुभगवान्की पूजा करो. प्रतिदिन हरि-कथा सुनो, जिससे संसारका बन्धन छूट जावे " ॥ ५३ ॥ इसप्रकार बहुतसे वाक्योंद्वारा हम दोनोंको समझाया; परन्तु खोटी बुद्धिके कारण, हमारी समझमे कुछभी नहीं

मतंगो नाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः ॥ वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे ॥ ५१ ॥ प्रपां कुरुत मार्गे च जनान् वीजयतं क्षणम् ॥ मार्गे छायां विधत्तं च भूर्यन्नं शीतलांबु च ॥५२॥ कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम् ॥ कथां च शृणुतं नित्यं यया बंधो निवर्तते ॥ ५३ ॥ एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती ॥ क्रुद्धोऽभवं दंतिलोऽहं मत्तोऽयं कोहलाह्वयः ॥५४॥ क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥५५॥ अब्रह्मण्यं च राजानं त्यजेत् सद्यो न चेत् पतेत् ॥ दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं यः प्रकुर्वते ॥५६॥ ते सर्वे नरकं यांति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥५७॥

आया ! पिताके वचन सुनकर मुझ दंतिलको क्रोध हुआ. यह कोहल मदोन्मत्त हो गया ॥ ५४ ॥ तब धर्मकी लालसावाले हमारे पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि—'धर्मसे विमुख पुत्र और कटु वचन कहनेवाली स्त्री ॥ ५५ ॥ और जो राजा अब्रह्मण्य हो अर्थात् ब्राह्मणभक्त न हो, इनको तत्काल त्याग देवै, जो न त्यागे तो पापी होवे. जो दाक्षिण्यसे अथवा धनलोभसे इनका संसर्ग करते हैं ॥ ५६ ॥ वे सब चौदह मन्वन्तरपर्यन्त नरकको जाते हैं. इसप्रकार जानकर मद और क्रोधसे युक्त हम दोनोंको

शाप दिया ॥ ५७ ॥ कि–हे " दंतिल ! तू क्रोधके कारण, सिंह हो जा और मदोन्मत्त कोहल हाथीकी योनिमें जावे. " इसमकार शाप पाकर मैं क्रोध करनेवाला दंतिल सिंह हुआ और मदोन्मत्त कोहल हाथी हो गया ॥ ५८ ॥ शाप पानेसे हमने पितासे शापसे निवृत्तिके लिये प्रार्थना करी. तब पिताने शापसे मोक्ष होनेका उपाय बताया ॥ ५९ ॥ कि–" तुम दोनों पशुयोनि पाकर कुछ समय उपरान्त एक दूसरेको मारनेके लिये उद्यत होओगे ॥ ६० ॥ उसी समयमें व्याध और शंखमुनिके

क्रुद्धोऽहं दंतिलो भूयाः सिंहः क्रोधपरिप्लुतः ॥ मत्तस्तु कोहलो भूयान्मत्तो मातंगयूथपः ॥ ५८ ॥ कृतानुतापौ पश्चात्तु प्रार्थयावो विमोचनम् ॥ आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥५९॥ युवां प्राप्य च दुर्योनिं कियत्कालांतरेऽपि च ॥ संगमो भविता तत्र परस्परवधैषिणोः ॥ ६० ॥ तस्मिन्नेव हि समये संवादं व्याधशंखयोः ॥ वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वां श्रवणस्य च ॥ ६१ ॥ गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति ॥ शापान्मुक्तौ पूर्वमेव रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥ ६२ ॥ मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् ॥ इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥ ६३ ॥ प्राप्य दैवात् संगतिं च परस्परवधैषिणौ ॥ संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥ ६४ ॥

संवादद्वारा. वैशाखधर्मकी वार्ता तुम्हारे कानमें दैवयोगसे पहुँचेगी ॥ ६१ ॥ सुनतेही क्षणमात्रमें उसके प्रभावसे तुमारी मुक्ति हो जायगी और शापसे छूट पूर्वरूप धरकर ॥६२॥ हमारे समीप आकर वास करोगे. हमारा वचन मिथ्या नहीं. " इसमकार पिताके शापसे हम दोनोंको पशुयोनि प्राप्त हुई॥ ६३ ॥ परस्पर एक दूसरेको वध करनेकी इच्छासे

दैववश हम दोनों यहां चले आये और आप दोनोंका दिव्य संवाद सुना ॥ ६४ ॥ उसीके प्रभावसे हमारी तत्काल मृत्यु हो गई." इसप्रकार अपना समाचार कह मुनीश्वरको प्रणाम करके ॥ ६५ ॥ और मुझसे आज्ञा ले अपने पिताके समीप चले गये. वही सब कथा दयानिधि मुनिने व्याधके प्रति कही॥ ६६ ॥ देखो, वैशाखमाहात्म्यके सुननेका फल कैसा महत्वका है. जो कोई क्षणमात्रभी सुन लेता है, उसको तत्काल मुक्ति प्राप्त होती है" ॥६७॥ जब मुनिने इसप्रकार कहा, तब व्याधने अपने शस्त्रोंको फेंक दिया

तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवावयोरभूत् ॥ इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥ ६५ ॥ समामंत्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरंतिकम् ॥ तदेतत् संप्रहृश्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥ ६६ ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत् ॥ मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ६७ ॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुंगवं तं दयानिधिं निस्पृहमग्र्यबुद्धिम् ॥ विशुद्धसत्वं सुकृतैकपात्रं संन्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥ ६८ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दंतिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने पापोऽतिदुष्टधीः ॥ दयालवो महांतो हि स्वभावादेव साधवः ॥१॥ क्व व्याधश्चाकुलीनोऽहं क्व च वा मतिरीदृशी ॥ केवलं भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥

और कृपालु, निस्पृह, कुशाग्रबुद्धि, विशुद्धसत्व तथा पुण्यपात्र मुनिसे कहने लगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे दंतिलकोहलमुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥ व्याध बोला-" हे मुने! मैं महापापी और दुष्टबुद्धिवाला हूं. आपने मुझपर बडी कृपा की. अच्छे साधु महात्मा स्वभावसेही दयावान् होते हैं ॥१॥ कहां मैं व्याध

कुलहीन ! कहां मेरी ऐसी मति ? परंतु यह सब केवल आपके परम अनुग्रहका कारण है ॥२॥ हे साधो ! मैं आपका शिष्य हूं, आपका कृपापात्र हूं; आपकरके अनुग्रह करनेके योग्य हूं; पुत्र हूं. हे दयानिधे ! मुझपर कृपा करो ॥ ३ ॥ कि जिससे फिर मेरेको ऐसी अनर्थ करनेवाली दुष्ट बुद्धि कभी न होवे. सत्संग होनेके उपरान्त अब फिर दुःख भोगना न पडे ॥ ४ ॥ इसकारण हे विप्र ! मुझको ऐसे उत्तम और पापनाशक मंत्रोंका उपदेश करो, कि जिससे मोक्षकी इच्छावाले जन सहजहीमें संसारसागरसे पार हो जायं ॥ ५ ॥

अथ साधोश्च शिष्योऽस्मि कृपापात्रोऽस्मि मानद ॥ अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥३॥ यथा मे न पुनर्भूयादसन्मतिरनर्थदा ॥ सद्भिस्तु संगतः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥ ४॥ तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः ॥ येन चाद्धा तरिष्यंति संसाराब्धिं मुमुक्षवः ॥ ५ ॥ साधूनां समचित्तानां तथाभूतदयावताम् ॥ न हीनश्चोत्तमः क्वापि नात्मीयो हि परस्तथा ॥ ६ ॥ एकाग्रेण विचिन्वंति चित्तशुद्धिं च पृच्छति ॥ सर्वदोषयुतो वाऽपि सर्वधर्मोज्झितोऽपि वा ॥ ७ ॥ कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरुम् ॥ तदैवोपतिशंत्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥ ८ ॥ यथा गंगा मनुष्याणां पापनाशस्वभाविनी ॥ तथा मंदसमुद्धारस्वभावाः साधवः स्मृताः ॥ ९ ॥

साधुमहात्मा समानचित्तवाले और सब प्राणियोंपर दया करनेवाले होते हैं. उनको न कोई अधम है, न उत्तम है; न अपना है, न पराया है ॥६॥ जो एकाग्र होकर चित्तको शुद्ध कर पूछता है, वह सम्पूर्ण दोषोंसे युक्त हो अथवा सब धर्मोंसे रहित हो ॥७॥ परन्तु जब अपने किये दुष्कर्मका पछतावा करके गुरुसे पूछता है, तबही गुरुदेव संसारबन्धसे छुडानेवाले ज्ञानका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ जिसप्रकार गंगा स्वाभवसेही मनुष्योंके पापोंको दूर करती है, इसीप्रकार दुष्टबुद्धिवालोंके उद्धार करनेका स्वभाव महात्माओंका

होता है ॥ ९ ॥ हे भक्तवत्सल ! हे दयालो ! आपकी संगतिसे सेवा, नम्रता और चित्तकी शुद्धिद्वारा मैं शुद्ध हूं. मुझको आप उपदेश करिये " ॥ १० ॥ यह व्याधका वचन सुनकर विस्मितचित्तसे फिर मुनि बोले— " हे व्याध ! तुम धन्य हो, धन्य हो." यह कह धर्मोपदेश करने लगे ॥ ११ ॥ शंखने कहा—"हे व्याध ! विष्णुको प्रसन्न करनेवाले, संसारसागरसे पार करनेवाले दिव्य वैशाखधर्मोंको करो; जो अपने कल्याणकी इच्छा हो ॥ १२ ॥ हे व्याध ! यहां धूप बहुत सताती है. न यहां छाया है, न जल है. इसकारण

मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल ॥ शुश्रूषत्वान्नतत्त्वाच्च शुद्धत्वात्तव संगतेः ॥ १० ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः ॥ साधुसाध्विति संभाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥ ११ ॥ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् संसाराब्धिविमोचनान् ॥ कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध शमिच्छसि ॥ १२ ॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नांबु चात्र च ॥ तस्मात् स्थलांतरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते ॥ १३ ॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सच्छायां च समाश्रितः ॥ तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ १४ ॥ विष्णोर्माधवमासस्य यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृतांजलिः ॥ १५ ॥ इतोऽविदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥ कपित्थास्तत्र वै संति फलभारेण पीडिताः ॥ १६ ॥

दूसरे स्थानपर चलो. जहां छाया होवे ॥ १३ ॥ वहां चलकर जल पीकर सुन्दर छायामें बैठ सावधानमन होकर पापनाश करनेवाले माहात्म्यको तुमारे आगे कहूंगा ॥ १४ ॥ विष्णुके माधवमासका माहात्म्य जैसा देखा और जैसा सुना है, वैसेही कहूंगा." मुनिने यह कहा तब व्याध हात-जोड़कर बोला ॥ १५ ॥ "यहांसे कुछही दूरपर एक सरोवरमें

जलभरा है. वहां कैथके वृक्ष हैं, जो फलके बोझसे झुक रहे हैं ॥ १६ ॥ वहां हम तुम चलें, अवश्य चित्त प्रसन्न हो जायगा. " व्याधने जब यह कहा, तब उसके संग उसके मुनि गये ॥ १७ ॥ कुछ दूर जानेपर आगे एक सरोवर देखा. बगुला, राजहंस, चकवाचकवीसे वह सरोवर सुशोभित हो रहा है ॥ १८ ॥ हंस, सारस और क्रौंच पक्षी चारों और विचर रहे हैं. वास, वंग और वेतकरके शोभित है, भौंरे भी गुंजार कर रहे हैं ॥ १९ ॥ मगर कछुआ मछलीआदिसे मनोहर है, कमोदनी–उत्पल–कल्हार–पुंडरीक आदि-

गच्छावस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः ॥ व्याधेनैवं समादिष्टस्तेन सार्कं ययौ मुनिः ॥ १७ ॥ कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्रे सरोवरम् ॥ बककारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ १८ ॥ हंससारसक्रौंचाद्यैः समंतात् परिशोभितम् ॥ कीचवंगकषाद्यैश्च कूजितं भ्रमरैरपि ॥ १९ ॥ नक्रकच्छपमीनाद्यैरगाह्यं सुमनोहरम् ॥ कुमुदोत्पलकल्हारपुंडरीकादिभिर्महत् ॥ २० ॥ शतपत्रैः कोकनदैः समंतात् परिशोभितम् ॥ पक्षिणां च कलारावैर्मुखरं नयनोत्सवम् ॥ २१ ॥ तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्च शोभितम् ॥ वटैः कदंबैर्नीपैश्च चिंचिणीभिस्तथैव च ॥ २२ ॥ निंबप्लक्षप्रियालैश्च चंपकैर्बकुलैः शुभैः ॥ पुन्नागैस्तुंबरैश्चैव कपित्थामलकैरपि ॥ २३ ॥

करके महान् शोभायुक्त ॥ २० ॥ तथा शतपत्र–कोकनदआदि कमलोंकरके सुशोभित और पक्षियोंका कलरव जहां हो रहा, जिससे नेत्रोंको आनन्द हो रहा ॥ २१ ॥ सरोवरके तटपर वांसके वृक्ष तथा अन्य वृक्ष चारों ओर शोभा दे रहे; तथा वड, कंथा, कदंब, इमली ॥ २२ ॥ नींब, पाकर, चिरोंजी, चंपा, बकुल, पुन्नाग, तुंबर, कैथ, आंवला ॥ २३ ॥

और जामुनआदि चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं, वनके हाथी-हिरण-शूकर और भैंसा आदि क्रीडा कर रहे ॥ २४ ॥ शश ( खरगोश ), सेही, रोझ, गैंडा, कस्तूरियामृग, व्याघ्र, सिंह, भेडिया ॥ २५ ॥ गधा, सांबर, शरभ, सुरागाय, आदि अनेक पशुओंकरके सुशोभित हो रहा; तथा वानर लंगूर आदि छलांग मारनेवाले जीव वृक्षोंकी शाखाओंपर छलांग मार रहे हैं ॥ २६ ॥ बिल्ली, रीछ और रुरु घूम रहे, तथा झिल्ली झंकार रहे, तथा वाँस चटक रहे ॥ २७ ॥ प्रचंड पवनके वेगसे वृक्ष झुक रहे, ऐसा

निष्पषणैश्च जंबूभिः समंतात् परिशोभितम् ॥ वन्यमातंगसारंगवराहमहिषादिभिः ॥ २४ ॥ शशैश्च शल्यकैश्चैव गवयैः परिशोभितम् ॥ खड्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैरपि ॥ २५ ॥ खरांतकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमंडितम् ॥ शाखाशाखांतरं शीघ्रं प्लवमानैः प्लवंगमैः ॥ २६ ॥ मार्जारैश्चैव भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा ॥ झिल्लीशब्दैश्च केंकारैः कीचकानां रवैस्तथा ॥ २७ ॥ घोरवायुविनिर्घातदारुमारैः समन्वितम् ॥ एतादृशं सरो दिव्यं व्याधेनैव प्रदर्शितम् ॥ २८ ॥ ददर्श मुनिशार्दूलस्तृषया बाधितो भृशम् ॥ स्नात्वा मध्याह्नवेलायां सरस्यस्मिन् मनोरमे ॥ २९ ॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥ देवपूजां ततः कृत्वा भुक्त्वा फलमतंद्रितः ॥३०॥ व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च ॥ सुखोपविष्टः पप्रच्छ व्याधं धर्मरतं पुनः ॥ ३१ ॥

सुन्दर सरोवर व्याधने दिखाया ॥२८॥ तृषाकरके व्याकुल मुनिशार्दूल उस सरोवरको देखते हुये, तब इस रमणीय सरोवरमें मध्याह्नके समय मुनि स्नान कर ॥ २९ ॥ वस्त्र धारण कर दोपहरके समयकी क्रिया करने लगे, अनन्तर देवपूजा करके फलोंको खाते हुये ॥ ३० ॥ व्याधके लायेहुये मीठे श्रमनाशक कैथके फल खाकर शंखमुनि सुखसे

बैठे और धर्ममें रत व्याधसे फिर पूछने लगे ॥३१॥ "हे धर्म सुननेमें तत्पर व्याध! अब तुम इस समय क्या सुना चाहते हो सो हम कहैं. धर्म तो बहुतसे हैं और उनकी रीतियां पृथग् पृथग् हैं और उनके मार्ग भी अनेक प्रकारके हैं ॥३२॥ तहां वैशाख मासके धर्म सूक्ष्म और बहुत फलदायक हैं. ये सब मनुष्योंको लोक और परलोक दोनों स्थानमें फल देनेवाले हैं ॥३३॥ जो तुमारे मनमें पूछनेकी इच्छा हो सो पहले पूछ लो." तब मुनिका वचन सुनकर हाथ जोडकर व्याध बोला ॥३४॥ व्याध कहने लगा– "हे विप्र! कौन कर्मसे मुझको

किं वक्तव्यं मया ह्यद्य तवादौ धर्मतत्पर ॥ धर्माश्च बहवः संति . नानामार्गाः पृथग्विधाः ॥ ३२ ॥ तत्र वैशाखमासोक्ताः सूक्ष्मा अपि महार्थदाः ॥ सर्वेषामेव जंतूनामिहामुत्र फलप्रदाः ॥ ३३ ॥ यत् प्रष्टव्यं मनसि ते यच्चादौ तच्च पृच्छताम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्रांजलिरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ केन वा कर्मणा चासीद्व्याधजन्म तमोमयम् ॥ केन वा चेदृशी बुद्धिः संगतिर्वा महात्मनः ॥३५॥ एतच्चान्यत् समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो! ॥ इत्युक्तः पुनरप्याह शंखो नाम महामुनिः ॥ ३६ ॥ मेघगंभीरया वाचा स्मयमानमुखांबुजः ॥ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥ ३७ ॥

यह तमोगुणवाली व्याधयोनि प्राप्त हुई और किस कर्मसे मेरी ऐसी बुद्धि हुई और महात्माका सत्संग प्राप्त हुआ? ॥ ३५ ॥ हे प्रभो! यदि आप मुझको मानते हो अर्थात् मुझपर कृपा हो तो यह सब वृत्तान्त आप मेरे आगे कहिये." यह सुन शंखनाम महामुनि बोले ॥ ३६ ॥ "मेघसमान गम्भीरवाणीवाले मुखारविन्दसे हंसते हुये शंखने कहा-

"शाकलनाम नगरमें पूर्व तुम वेदपाठी ब्राह्मण थे ॥ ३७ ॥ महातेजस्वी स्तंबनाम तथा श्रीवत्स गोत्रमें तुमारा जन्म हुआ. एक वेश्यासे तुमारा प्रेम था. उसीकी संगतिके दोषसे ॥ ३८ ॥ तुम नित्यकर्मोंको त्यागकर शूद्रसमान अपने घर आया करते थे. शूद्रआचार, दुष्टस्वभाव, नित्यकर्मत्यागी होनेसेभी ॥ ३९ ॥ तुमारी स्त्री ब्राह्मणी रूपवती सो तुमारी सेवा किया करती थी और तुमारी वेश्याकीभी सेवा किया करती थी ॥ ४० ॥ तुम दोनोंके चरण धोती थी. तुमारा

स्तंबो नाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्संगदोषतः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा नित्यक्रियां नित्यं शूद्रव-द्गृहमागतः ॥ शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणी च तदा चासीद्भार्या कांतिमती तव ॥ सा त्वां पर्यचरत् सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥ ४० ॥ उभयोः क्षालयंती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी ॥ उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥ ४१ ॥ वेश्यया वार्यमाणापि पातिव्रत्यव्रते स्थिता ॥ एवं शुश्रूषयंत्या हि भर्तारं वेश्यया सह॥४२॥जगाम सुमहान् कालो दुःखिताया महीतले ॥ अपरस्मिन् दिने भर्त्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् ॥ ४३ ॥ अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥ तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥ ४४ ॥

प्यार भलीभांति करती थी. तुम दोनों पलंगपर सोते थे और वह नीचे सोती थी ! तुम दोनोंकी आज्ञा मानती थी ॥ ४१ ॥ वेश्याने निवारणभी किया, तोभी वह स्त्री पतिव्रताधर्ममें स्थित रही ! इसप्रकार अपने पति और वेश्याकी सेवा करते करते ॥ ४२ ॥ और दुःख भोगते भोगते बहुत समय बीत गया. एकदिन उसके पतिने भैंसका दूध और मूली एक साथही भोजन किया ॥ ४३ ॥ और शूद्रोंका अन्न अभक्ष्य निष्पाव ( मटर मांस ) और तिलभक्षण करनेसे अपथ्य भोजन होनेके

कारण, वमन और विरेचन ( दस्त ) होनें लगें ॥ ४४ ॥ इस अपथ्यसें दारुण भगन्दररोग प्रगट हो गया. इस रोगसे रातदिन बहुत पीडा होनें लगी ॥ ४५ ॥ जवतक घरमें धन रहा, तवतक वेश्या ठहरी रही–फिर उसका सवँ धन लेकर वह वेश्या घर छोंड चली गई ॥ ४६ ॥ जब वह दूसरेकें पास चली गई, तव इस ब्राह्मणको घोर घृणा उत्पन्न हुई. अनन्तर रोगसे महादुःखित हो, दीनवाणीकरके ॥ ४७ ॥ रोता हुआ रोगसें व्याकुल मन अपनीं स्त्रीसें कहने लगा–" हे देवि ! मेरी रक्षा करो. मैं वेश्यासक्त हूं और

अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः ॥ स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥४५॥ यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥ गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मंदिरे ॥४६॥ अन्यस्य पार्श्वमासाद्य गता घोरा सुनिर्घृणा ॥ ततः स दीनवचनो व्याधिबाधासु पीडितः ॥ ४७ ॥ उक्तवान् स रुदन् भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥ परिपालय मां देवि ! वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् ॥ ४८ ॥ न मयोपकृतं किंचित् त्वयि सुंदरि पापिना ॥ यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्हितः ॥ ४९ ॥ स षंढो भविता भद्रे दशजन्मसु पंचसु ॥ दिवारात्रं महाभागे निंदितः साधुभिर्जनैः ॥ ५० ॥ पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥ अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवाश्रुनयनेन वै ॥ ५१ ॥

वडा निष्ठुर हूं ॥ ४८ ॥ हे सुन्दरि ! मुझ पापीने तुमारा कुछभी उपकार नहीं किया है. जो पापासक्त मनुष्य अपनीं नम्र हुई स्त्रीका मान नहीं करता है ॥४९॥ वह पन्द्रह जन्मोंतक नपुंसक होता है, हे महाभागें ! रातदिन साधुजनों करके निंदित ॥ ५० ॥ तुझ साध्वीकी अवज्ञा करनेसे मैं पापयोनिमें जाऊंगा. अर्थात् तुमारा अपमान करनेसे मैं दुष्ट-

योनिमें जन्म पाऊंगा. मैं तुमारे क्रोधसे और तुमारे नेत्रोंके आंसुवोंसे दग्ध हूं अर्थात् नम्रभावसे तुमारे रोनेपरभी मैं क्रोधके मारे जलता रहा हूं " ॥५१॥ जब उसके स्वामीने इसप्रकार कहा, तब ब्राह्मणी हाथ जोडकर बोली–" हे कान्त ! तुम मेरे सामने दीनता न करो और न लज्जा करो ॥ ५२ ॥ मैने तुमपर कभी क्रोध नहीं किया है, जिससे दग्ध हुये कहते हो. पूर्वेकिये हुये पापोंसे दुःख होते हैं अर्थात् इस संसारमें पूर्वजन्मकृत पाप उदय होते हैं, तब दुःख प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ उन पापोंको सहन करनेवाली स्त्री साध्वी होती है और वही पुरुष उत्तम साधु होता है; जो मुझ पापिनीने पूर्वजन्ममें पाप किये है ॥ ५४ ॥ उन पापोंके भोगनेमें मुझको कुछ दुःख वा विषाद नहीं है. इस

एवं ब्रुवाणं भर्त्तारं कृतांजलिपुटाऽब्रवीत् ॥ न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कांत मां प्रति ॥ ५२ ॥ न चापि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धो वदस्यथ ॥ पुरा कृतानि पापानि दुःखानीह भवंति हि ॥ ५३ ॥ तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स सत्तमः ॥ यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥५४॥ तद्भुंजंत्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥ इत्येवमुक्त्वा भर्त्तारं सा सुश्रूषंतं च पालयत् ॥५५॥ आनीय जनकाद्वित्तं बंधुभ्यो वरवर्णिनी ॥ क्षीरोदवासिनं देवं भर्तारं चैव चिंतयत् ॥ ५६ ॥ शोधयंती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥ नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन् कष्टाच्छनैः शनैः ॥५७॥

प्रकार अपने पतिसे कहकर वह सुन्दरी अपने पतिकी सेवा करने लगी ॥ ५५ ॥ अपने पिता और बन्धुजनोंसे धन लाकर वह पतिव्रता ब्राह्मणी क्षीरशायी विष्णु भगवान् और अपनी पतिकी सेवामें तत्पर होती हुई ॥५६॥ दिनरात अपने पतिके मलमूत्र निकालती और उस भगंदरमें पडे हुये कीडे अपने नखसे कष्टपूर्वक धीरेधीरे निकालती थी ॥५७॥

वह पतिव्रता न रातको सोती थी, न दिनमें सोती थी और पतिके दुःखके संतापसे दुःखित होकर बोली ॥५८॥ ' हे देवताओ ! हे पितरो ! तुम मेरे पतिको रोगसे रहित करो और निष्पाप करो अर्थात् हमारे स्वामीके पापोंका नाश करो॥५९॥मेरे पतिके आरोग्यप्राप्तिके लिये मैं भगवती चंडीको माहिषका बली दूंगी रक्त-मांसयुक्त उत्तम प्रकारका अन्नभी समर्पण करूंगी॥६०॥ महात्मा गणेश विघ्ननायकके अर्थ मोदक( लड्डु )बनाऊंगी और भोग लगाऊंगी और दश शनैश्चरके उपवास ( व्रत ) करूंगी॥६१॥ मीठा नहीं खाऊंगी; घी नहीं

न सा स्वपति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी ॥ भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमवोचत ॥ ५८॥ देवाश्च पांतु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥
कुर्वंतु रोगहीनं मे भर्त्तारं गतकल्मषम् ॥५९॥ चंडिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् ॥ सुष्ठन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥ ६० ॥
मोदकान् कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥ मंदवारे करिष्यामि चोपवासान् दशैव तु ॥ ६१ ॥ नोपभुंजामि मधुरं नोपभुंजामि वै
घृतम् ॥ तैलाभ्यंगविहीनाहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥ ६२ ॥ जीवतां रोगहीनोऽयं भर्ता मे शरदां शतम् ॥ एवं सा व्याहरद्देवी वासरे
वासरे गते ॥ ६३ ॥ तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥ वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम् ॥ ६४ ॥
तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग् वै गृहमागतः ॥ तेन वै रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् ॥६५॥

खाऊंगी; शरीरपर तैल मर्दन और उवटन लगाना छोड दूंगी. इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ यह मेरा पति रोगहीन अर्थात् आरोग्य होकर सौ वर्षपर्यन्त जीवे.' इसप्रकार यह देवी प्रतिदिन बोलती रही ॥ ६३ ॥ उसीसमयमें एक मुनि देवलनाम महात्मा वैशाखमासमें घामकी गरमीसे व्याकुल उसके घर आये ॥ ६४ ॥ तब वह स्त्री कहने लगी कि

यह वैद्य हमारे घर आये हैं. ये अपने रोगका निवारण करेंगे. इसवास्ते मैं उनका अतिथिसत्कार करती हूं ॥ ६५ ॥ तुमको धर्मसे विमुख जानकर वैद्यके मिस अर्थात् ये वैद्य हैं ऐसा कहके ठगाया ! ऋषिका चरणप्रक्षालन कर उस जलको शिरपर छिडका ॥ ६६ ॥ और घामसे व्याकुल उस महात्माको मीठा जलदान किया, कि जिससे उसकी गरमी शान्त हुई ॥ ६७ ॥ प्रातःकाल सूर्यउदय होनेपर वह मुनि जैसे आये वैसे चले गये. कुछ समय बीते तुमको सन्निपात हो गया ॥ ६८ ॥ जब तुमारी स्त्री तुमको

ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वंचितः ॥ पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साऽक्षिपत् ॥६६॥ पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥ त्वयानुमोदिता सायं घर्मतापनिवारकम् ॥ ६७ ॥ स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथागतः ॥ अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥ ६८ ॥ त्रिकटुं नीयमानायां भर्तांगुलिमखंडयत् ॥ उभयोर्दंतयोः श्लेषः सहसा समपद्यत ॥ ६९ ॥ तत् खंडमंगुलेर्वक्त्रे स्थितं भर्तुः सुकोमलम् ॥ खंडयित्वांगुलिं भर्ता पंचत्वमगमत्तदा ॥ ७० ॥ शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं शुभाम् ॥ मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमती तव ॥ ७१ ॥ विक्रीत्वा चापि वलयं गृहीत्वा चेंधनं बहु ॥ चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥७२॥

त्रिकुटा प्यायवेको लाई, तब तुमने उसकी अंगुली काट ली और तुमारी दोनौं दांती विंधगई ॥ ६९ ॥ अंगुलीका वह एक खंड तुमारे मुखमें रहगया, उसी समय तुमारी मृत्य होगई ॥ ७० ॥ अपनी सुन्दर शय्यापर उसी वेश्याका ध्यान करते हुये तुम मर गये. तब तुमको मरा जानकर तुमारी रूपवती स्त्री ॥ ७१ ॥ अपना कंकण वेचकर बहुतसा इंधन लाई और बहुत बडी चिता बनाय उस साध्वीने चिताके बीचमें पतिको रखकर ॥ ७२ ॥

भुजाओंसे भुजा मिलाय दोनों चरणोंसे चरण मिलाय मुखमें मुख और हृदयमें हृदय लगाकर ॥ ७३ ॥ जांघोंमें जांघें मिलाय आत्माको सन्निवेशित कर अपने स्वामीके रोग-पीडित देहको अग्निसंस्कार करती हुई, इसप्रकार वह कल्याणी अपने शरीरको अग्निमें भस्म कर सती होगई ॥ ७४ ॥ अपने शरीरको छोड पतिका आलिंगन कर तुरन्त विष्णुलोकको चलीगई. वैशाखमासमें-जलदान करनेसे और चरण धोकर जलको शिरपर छिडकनेसें योगियोंको भी दुर्लभ गति उसको प्राप्त हुई ॥ ७५ ॥ स्त्रीके पुण्यसे तुम सब

अवगुह्य भुजाभ्यां च पदौ चाश्लिष्य पादयोः ॥ मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥ ७३ ॥ जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च ॥ दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम्॥आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि ॥७४॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिंग्य मुरारिलोकम् ॥ पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन् पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥ ७५ ॥ त्वमंतकाले गणिकां विचिंतयन् देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्बिषः ॥ जन्म व्याधं प्राप्तवान् घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारि ॥ ७६ ॥ दत्ता त्वया पानकस्यापि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे साध्विजाने ॥ व्याधो जातस्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान् प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥ ७७ ॥ धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ॥ तेनेयं ते संगतिर्मे वनेऽस्मिन् यया भूयात् संपदः संततिश्च ॥ ७८ ॥ इत्येतत् सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत् कृतम् ॥ कर्म पुण्यं पापकं च दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ७९

पापोंसे छूटनेपरभी अन्तसमयमें वेश्याका ध्यान करनेसे देहको छोड लोगोंका सदा भय उत्पन्न करनेवाला घोर व्याधका जन्म पाया, जिस जन्ममें तुमको सदैव हिंसा प्रिय है ॥ ७६ ॥ तुमने वैशाखमें मीठे जलदानकी आज्ञा दी, इसीसे व्याधयोनि प्राप्त होनेपरभी तुमारी ऐसी सुबुद्धि हुई है, जिससे तुमने सब सुखोंके हेतु धर्म पूछे ॥ ७७ ॥ और तुमने उस पापनाशक मुनिचरणोदकको मस्तकपर छिडका, इसीसे तुमको सत्संगति हुई, जिससे धनसंतानकी वृद्धि होती है ॥ ७८ ॥ इसप्रकार पूर्वजन्ममें तुमने जो जो कर्म किये,

सो सब कहे. ये तुमारे पाप और पुण्य कर्म हमने दिव्यदृष्टिसे देखे हैं ॥७९॥ अब जो कोई गुप्त बात पूछनेकी तुमारी इच्छा हो सो, तुम पूछ लो; तुमारा चित्त शुद्ध हो गया है. हे महामते ! तुमारा कल्याण होवै " ॥ ८० ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्याध बोला—" हे ब्रह्मन् ! पूर्वे आपने विष्णुकी प्रीतिके अर्थ शुभफल देनेवाले भागवतधर्म कहे. उनमें भी वैशाखके धर्म सबसे उत्तम है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! वह विष्णु कैसे

गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवान् श्रोतुमिच्छति ॥ जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः ॥ तत्रापि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥ १ ॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन् ! किं वा तस्य हि लक्षणम् ॥ किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान् विभुः ॥ २ ॥ कीदृशा वैष्णवा धर्माः केनासौ प्रीयते हरिः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् किंकराय महामते ॥ ३ ॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः ॥ प्रणम्य जगतामीशं नारायणमनामयम् ॥ ४ ॥ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम् ॥ यदचिंत्यं विरिंच्याद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥५॥

हैं ? विष्णुके लक्षण क्या हैं ? उनका मान क्या है ? उत्तम भावोंसे किन लोगोंद्वारा विष्णुभगवान् जाने जाते हैं ? ॥ २ ॥ वैष्णव धर्म कौनसे हैं ? किस कर्मसे हरिभगवान्की प्रसन्नता होती है ? हे ब्रह्मन् ! हे महामते ! यह मुझ सेवकके आगे आप कहिये " ॥ ३ ॥ इसप्रकार व्याधने पूछा, तब वह शंखमुनि जगत्के स्वामी अनामय नारायणको प्रणाम कर बोलने लगे ॥ ४ ॥ शंखमुनि बोले—" हे व्याध ! सुनौ, हम विष्णुके पापरहित रूपका वर्णन करते हैं. जो रूप ब्रह्माआदि किसी मुनिके ध्यानमें नहीं

आता है ॥ ५ ॥ तथा जो पूर्णशक्तिवाला, पूर्णगुणविशिष्ट,सबके ईश्वर,निर्गुण,निश्चेष्ट, अनन्त और सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसा श्रीहरिका रूप है ॥६॥ यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जगत्के ब्रह्मरुद्रादि अधिपति जिसके आश्रयसे यह जगत् रहता है ऐसे महाभूतादि उनके सह इस नारायणके वशमें स्थित है ॥७॥ अब तुमारे आगे में ब्रह्मपरमात्माके लक्षण कहता हूं. जिस ब्रह्मसे उत्पत्ति, स्थिति, संहार, आवृत्ति नियम ॥ ८ ॥ प्रकाश, बन्ध, मोक्ष और वृत्ति ये होते हैं, पंडित जन उसीको ब्रह्म कहते हैं ॥ ९ ॥ इसीको साक्षात्

पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः सकलेश्वरः ॥ निगुणो निष्कलोऽनंतः सच्चिदानंदविग्रहः ॥ ६ ॥ यदेतदखिलं विश्वं सचराचरमीदृशम् ॥ साधीशं साश्रयं यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥ ७ ॥ अथ ते लक्षणं वच्मि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥ ८ ॥ प्रकाशो बंधमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवंत्यमी ॥ स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां संमतो विभुः ॥ ९ ॥ साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि ॥ ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः ॥ १०॥ नान्येषां ब्रह्मता क्वापि तच्छक्त्यैकांशभागिनाम् ॥ तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥ ११ ॥ शास्त्रं च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् ॥ इतिहासः पंचरात्रं भारतं च महामते ॥ १२ ॥ एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथंचन ॥ ना वेदविदमुं विष्णुं मनुत च नरः क्वचित् ॥ १३ ॥

ब्रह्म कहते हैं. ब्रह्मके पश्चात् ब्रह्माआदिकोकोंभी ब्रह्मशब्दकरके कहते हैं. यह पंडितोंका मत है ॥ १० ॥ जो ब्रह्मके एकएक अंशकरके युक्त हैं, उनमें ब्रह्मभाव कहा ? उस परमात्माके जन्म आदि तो केवल शास्त्रद्वारा जाने जाते हैं ॥ ११ ॥ शास्त्र, वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, पंचरात्र, भारत हे महामते ॥ १२ ॥ इन्हींके द्वारा विष्णु भग-

वान् जाने जाते है. अन्य किसी प्रकारसे भी नही जाने जाते हैं वेदवेत्ताके सिवाय अन्य किसीको विष्णुकी योग्यता नही समझती है ॥ १३ ॥ वेदोंसे जानने योग्य सनातन नारायणभगवान् इन्द्रिय, अनुमान और तर्कद्वारा जाननेमें नही आते हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्मकेही जन्म, कर्म और गुणोंको यथाबुद्धि जानकर प्राणी बन्धनसे छूट जाते हैं और सदैव उसके वशमें रहते हैं ॥ १५ ॥ क्रमसे विष्णुका माहात्म्य अतिशय होगया है. देव, ऋषि, पिता और माता इनमें भगवान्‌की एक एक शक्ति स्थित रहती है ॥ १६ ॥

नेंद्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् ॥ ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥ १४ ॥ अस्यैव जन्मकर्माणि गुणान् ज्ञात्वा यथामति ॥ मुच्यंते जीवसंघाश्च सदा तद्वशवर्तिनः ॥ १५ ॥ क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् ॥ एकैकस्मिन् स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमातृके ॥ १६ ॥ प्रत्यक्षेणागमेनापि तथैवानुमयापि च ॥ आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखे तथा ॥ १७ ॥ तस्माद्भूपं शतगुणं विद्यात् ज्ञानादिभिर्वृतम् ॥ भूतान्मनुष्यगंधर्वान् विद्याच्छतगुणाधिकान् ॥ १८ ॥ तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् ॥ तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥ १९ ॥ सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्योदयस्तथा ॥ सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणो प्राणादिंद्रो महाबलः ॥ २० ॥

प्रत्यक्ष, आगम तथा अनुमानसे बल, ज्ञान एवं सुखमें प्रथम मनुष्यको उत्तम जानै ॥ १७ ॥ मनुष्योंसे ज्ञानआदिकरके युक्त राजाको सौगुणा जानै; राजासे गन्धर्वमनुष्योको सौगुण अधिक जानै ॥१८॥ इनसे तत्त्वाभिमानी देवताओंको सौगुणा अधिक जानै; तत्त्वाभिमानी देवताओंसे सप्तऋषि बडे हैं ॥१९॥ सप्तऋषिसे अग्नि, अग्निसे सूर्यआदि, तथा

सूर्यसे बृहस्पति, बृहस्पतिसे वायु, वायुसे इन्द्र ॥२०॥ इन्द्रसे पार्वती, पार्वतीसे जगद्गुरु महादेवजी और शंभुमहादेवजीसे बुद्धिदेवि, बुद्धिसे प्राण बलवान् है ॥२१॥ प्राणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है. प्राणमें सब प्रतिष्ठित है. प्राणसे विश्वका प्रादुर्भाव हुवा है. प्राणमय यह सब जगत् है ॥ २२ ॥ प्राणमें यह सब प्रोत है. प्राणसेही सब जगत् चेष्टित है. नीलमेघके समान कान्तिमान् सबका आधारभूत इसको सूत्र कहा है ॥ २३ ॥ लक्ष्मीके कटाक्षमात्रसे इस प्राणकी स्थिति होती है." यह सुन व्याधने कहा-" वह लक्ष्मी

इंद्राच्च गिरिजा देवी देव्याः शंभुर्जगद्गुरुः ॥ शंभोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलात्मकः ॥२१॥ न प्राणात् परमं किंचित् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ प्राणाज्जातमिदं विश्वं प्राणात्मकमिदं जगत् ॥ २२ ॥ प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते ॥ सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलांबुदप्रभम् ॥२३॥ लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपालेशैकभाजिनी ॥ २४ ॥ न विष्णोः परमं किंचिन्न समो वा कथंचन ॥ कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामाधिकोऽभवत् ॥ २५ ॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्ये कथं विभो ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् ! कथं प्राणाद्विभुः परः ॥ २६ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि यत् पृष्टं निर्णयं त्वया ॥ प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥ २७ ॥

देवदेव हरिभगवान्‌की एकही कृपापात्र है ॥ २४ ॥ विष्णुभगवान्‌से श्रेष्ठ अथवा समान कोई नहीं है. जीवमें यह प्राण सूत्रनामवाला श्रेष्ठ कैसे हुआ ? ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसका निर्णय आप मेरे आगे कहो, कि परमात्मासे प्राण कैसे परे हैं और प्राणसे परे परमात्मा कैसे है ? " ॥ २६ ॥ शंखमुनि बोले-" हे व्याध ! सुनो, जो निर्णय तुमने

पूछा वह मैं तुमसे कहता हूं. प्राणके आधिक्यके उद्देशसे सब जीवोंद्वारा वर्णन करता हूं ॥ २७ ॥ सनातन नारायणदेवने पहले अपने नाभिकमलसे ब्रह्मादिक देवताओंको रचा और यह कहा ॥ २८ ॥ कि–' राज्यस्थापन करके तुम सब देवताओंका राजा मै ब्रह्माजीको नियत करता हूं और तुममें जो देवता अधिक श्रेष्ठ हो, वह युवराजके योग्य होगी ॥२९॥ उसको युवराज बनाओ, परंतु शील, शौर्य और उदारताआदि गुणोंकरके जो युक्त हो ' इसप्रकार जब हरिभगवान्‌ने कहा, तब सब देवता इन्द्रके आगे

पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः स्रष्ट्वा ब्रह्मादिकान् देवानिदं प्राह जनार्दनः॥२८॥साम्राज्येहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम् ॥
यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वराः ॥ २९ ॥ तं स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् ॥ इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्र-
पुरोगमाः ॥ ३० ॥ एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति ॥ सर्वे विवदमानाश्च सूर्यं केचित् परं विदुः ॥ ३१ ॥ शक्रं केचित् परं
कामं केचित्तूष्णीं तु तस्थिरे ॥ ते निर्णयमपश्यंतः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥ ३२ ॥ नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्रांजलयोऽमराः ॥
विचारितं महाविष्णो ! सर्वैरस्माभिरंजसा ॥ ३३ ॥

जाकर प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ और इसप्रकार परस्पर विवाद करने लगे कि– 'हम होंगे.' सब विवाद करते करते कोई बोले कि–'सूर्य सबोंमें श्रेष्ठ है' ॥ ३१ ॥ कोई बोले कि–'इन्द्र सबोंमें श्रेष्ठ हैं.' कोई चुपचाप स्थित रहे. जब वे किसी प्रकार निर्णय नहीं कर सके, तब पूछनेके निमित्त नारायणके समीप गये ॥ ३२ ॥ सब देवता नमस्कार कर हाथ जोड कहने लगे— "हे महाविष्णु ! हम सबने परस्पर बहुत विचार किया है ॥ ३३ ॥

हम सबमें कोईभी अधिक नहीं जान पडता. हे भगवन् ! आपही निर्णय करके हम सब देवताओंके संशयको दूर कर दीजिये " ॥ ३४ ॥ सब देवताओंनें जब यह पूछा, तब भगवान् हंसकर यह वचन बोले कि- " वही राजा है, जिसके निकल जानेसे यह देह ॥ ३५ ॥ गिरजावै; जिसके प्रवेश होनेसे देह उठै वही सब देवताओंमें अधिक है. दूसरा कोईभी नहीं है " ॥३६॥ भगवान्‌ने यह कहा, तब सब देवता कहने लगे कि-'ऐसाही हो.' अनन्तर जयंतनाम देव पांवोंसे निकल गया

अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथंचन ॥ त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनस्त्विमे ॥३४॥ इति पृष्टोऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ देहादस्मान्न वै राजा ह्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥ ३५ ॥ पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन् वै ह्युत्थितो भवेत् ॥ स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथंचन ॥ ३६ ॥ इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथास्त्विति वचोऽब्रुवन् ॥ निश्चक्राम जयंताह्वः पादात् पूर्वं सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ तदा पंगुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्तेचलन्नपि ॥ ३८ ॥ पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रांतो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ तदा षंढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ३९ ॥ शृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रांत इंद्रः सर्वामरेश्वरः ॥ ४० ॥

॥ ३७ ॥ तब पंगु कहा गया, परंतु शरीर नहीं गिरा. सुनता, पीता, बोलता, सूँघता, देखता और चलता रहा ॥३८॥ अनन्तर गुह्यनाम इन्द्रियसे दक्षप्रजापति निकल गया, तब यह षंढ कहाया, परन्तु शरीर नहीं गिरा ॥ ३९ ॥ परन्तु पूर्वसमान सुनता, पीता, बोलता, सूँघता, देखता और चलता रहा. पश्चात् हाथोंसे सब देवताओंका ईश्वर इन्द्र

निकला ॥ ४० ॥ तब इसको हाथोंसे रहित कहा, परंतु शरीर नहीं गिरा; पूर्वकी नाईं सुनता पीता, बोलता, सूंघता, देखता और चलता रहा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर नेत्रोंसे सब तेजस्वियोमें उत्तम सूर्य निकल गया. तब यह शरीरकारण कहाया, परंतु शरीर तबभी नहीं गिरा ॥ ४२ ॥ और पहलेके समान सुनता, पीता, बोलता, सूंघता, देखता और चलता रहा. तत्पश्चात् घ्राण इन्द्रियसे अश्विनीकुमार निकल गये ॥ ४३ ॥ तो इसको नासिकाहीन कहा, परन्तु शरीर न गिरा और पूर्ववत् सुनता, पीता, बोलता,

हस्तहीनमसुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ ४१ ॥ लोचनाभ्यां विनिष्क्रांतः सूर्यस्तेजस्विनां वरः ॥ तदा काणमसुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४२ ॥ शृण्वन् पिबन् वदन् जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ घ्राणात् पश्चाद्विनिष्क्रांतौ नासत्यौ विश्वभेषजौ ॥ ४३ ॥ अजिघ्राणमसुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन् पिबन् वदन्नास्ते पश्यंश्चैव चलन्नपि ॥ ४४ ॥ श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रांता न देहः पतितस्तदा ॥ तदाऽमुं बधिरं प्राहुर्न मृतेति कथंचन ॥ ४५ ॥ शृण्वन् जीवंश्चलन्वदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रांतस्ततः परम् ॥ ४६ ॥ तदाऽरसज्ञमेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्वदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ ४७ ॥

सूंघता, देखता और चलता रहा ॥ ४४ ॥ फिर कानोंसे दिशायें निकल गईं. तबभी शरीर नहीं गिरा और इसको बधिर कहने लगे, मृत किसीने नहीं कहा ॥ ४५ ॥ और पूर्ववत् सुनता, पीता, बोलता, सूंघता, देखता, चलता रहा. तदनन्तर जिह्वासे वरुण निकल गया ॥ ४६ ॥ तब यह अरसज्ञ कहाया, तबभी शरीर नहीं गिरा और जीता

चलता, खाता, जानता और श्वास लेता रहा ॥४७॥ अनंतर वाणीसे वागीश्वर अग्नि निकल गया, तब इसको मूक कहा; परंतु शरीर नहीं गिरा ॥४८॥ और जीता, चलता, खाता, तथा जानता और श्वास लेता रहा. अनंतर मनको चैतन्य करनेवाले रुद्र मनसे निकल गये ॥४९॥ तब इसको जड कहने लगे, तब भी शरीर नहीं गिरा और जीता, चलता, खाता, तथा जानता और श्वास लेता रहा ॥ ५० ॥ पश्चात् प्राण निकल जानेसे इसको मृत कहा और फिर सब देवता विस्मित होकर यह कहने लगे ॥ ५१ ॥ 'जो इस देहको उठानेमें

ततो वाचो विनिष्क्रांतो वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ ४८ ॥ जीवंश्चलन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रांतो मनसो बोधनात्मकः ॥ ४९ ॥ तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥५०॥ पश्चात् प्राणो विनिष्क्रांतो मृतमेनं तदा विदुः ॥ पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥५१॥ देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः ॥ स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजो भविष्यति ॥ ५२ ॥ इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथा क्रमम् ॥ जयंतः प्राविशत् पादौ नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ ५३ ॥ गुह्यं च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ इंद्रो हस्तौ विवेशाथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ ५४ ॥ चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ ५५ ॥

समर्थ होगा, वही हम सबमें श्रेष्ठ होगा और युवराज होवेगा' ॥ ५२ ॥ इसप्रकार परस्पर कह सुनकर यथाक्रम प्रवेश होने लगे. प्रथम जयन्त चरणोंमें प्रविष्ट हुआ, परन्तु शरीर नहीं उठा ॥५३॥ गुह्येंद्रियद्वारा दक्षप्रजापति प्रविष्ट हुआ, परन्तु शरीर नहीं उठा. अनन्तर इन्द्र हाथोंमें प्रविष्ट हुआ, परन्तु शरीर नहीं उठा ॥५४॥ नेत्रोंमें सूर्यनारायण प्रविष्ट हुये परन्तु

शरीर नहीं उठा. इसीप्रकार दिशा कानोंमें प्रविष्ट होनेसेभी शरीर नहीं उठा ॥५५॥-अनन्तर जिह्वामें वरुण प्रविष्ट होनेसेभी शरीर नहीं उठा. एवं नासा इन्द्रियमें अश्विनीकुमार प्रविष्ट हुये तौभी शरीर नहीं उठा ॥ ५६ ॥ फिर वाणीमें अग्नि प्रविष्ट हुआ, तोभी शरीर नहीं उठा. ज्योंका त्यो पडा रहा. रुद्र मनमें प्रविष्ट हुये, परंतु शरीर नहीं उठा ॥ ५७ ॥ पश्चात् प्राण प्रविष्ट हुये. प्राण प्रविष्ट हातेही शरीर उठ खडा हुआ ! तब देवताओंने निश्चय किया कि-' प्राणही सब देवताओंमें श्रेष्ठ और व्यापक है ॥५८॥

वरुणः प्राविशज्जिव्हां नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ ५६ ॥ वन्हिश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ मनश्च प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तत् कलेवरम् ॥ ५७ ॥ पश्चात् प्राणो विवेशासौ तदोत्तस्थौ कलेवरम् ॥ तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥ ५८ ॥ बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च ॥ ततोऽभिषेचयांचक्रुर्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥ ५९ ॥ उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः ॥ तस्मात् प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः ॥ ६० ॥ न प्राणहीनं जगदस्ति किंचित् प्राणेन हीनं न च वै समेधते ॥ प्राणेन हीनं स्थितिमन्न किंचित् प्राणेन हीनं न च किंचिदस्ति ॥ ६१ ॥ तस्मात् प्राणः सर्वजीवाधिकोऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवांतरात्मा ॥

तथा बल, ज्ञान, धीरज और वैराग्य एवं जीवनमें भी सबसे अधिक है. अत एव प्राणहीको युवराज किया ॥ ५९ ॥ उत्कृष्ट स्थितिके हेतुसे सामवेदका गान किया. इसी कारण, स्थावरजंगमात्मक यह सब जगत् प्राणमय है पूर्णअंश और बलकरके युक्त यह प्राण सर्व जगत्पति है ॥ ६० ॥ प्राणहीन जगत् कुछ नहीं है. बिना प्राणके वृद्धिको भी प्राप्त नहीं होता है. प्राणविना कुछ स्थिति नहीं है. तथा प्राणके विना संसारमें कुछभी नहीं है. ॥ ६१ ॥ इसकारण, प्राण सब जीवोंमें अधिक बलवान् तथा सब

प्राणात् कोपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चास्ते ॥ ६२ ॥ तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवो ह्यनेकधा ॥ तस्मात् प्राणं वरं प्राहुः प्राणोपासनतत्पराः ॥ ६३ ॥ लीलयैव जगत् स्रष्टुं हंतुं पालयितुं प्रभुः शेषा हि शिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडाअपि ॥ ६४ ॥ वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥ सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयो विभुः ॥ ६५ ॥ वासुदेवानुगो नित्यं तथा विष्णुवशे स्थितः ॥ वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति ॥ ६६ ॥ देवाः प्रतीपं कुर्वंति रुद्रेंद्राद्याः सुरेश्वराः ॥ प्रतीपं क्वापि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः ॥ ६७ ॥ तस्मात् प्राणो महाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः ॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यं लक्षणं तथा ॥ ६८ ॥ पूर्वबंधानुगं लिंगं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम् ॥ ६९ ॥

जीवोंका अन्तरात्मा है. प्राणोंसे अधिक वा समान शास्त्रोंमें न पहले देखा है; न सुना है ॥ ६२ ॥ भिन्नभिन्न कार्योंको सम्पादन करनेके निमित्त एक प्राणदेवही अनेक प्रकारका हो जाता है अर्थात् अनेक रूप धारण करतासा दीख पडता है. इसकारण, प्राणकी उपासना करनेवाले प्राणोंको सबसे उत्तम मानते हैं ॥ ६३ ॥ लीलाकरके सब जगत्के रचने, संहार करने और पालन करनेमें समर्थ है. शेष-शिव-इन्द्रआदि चेतन और जड कोई भी ॥६४॥ विना वासुदेवके प्राणका पराभव नहीं कर सकते हैं. सर्वदेवात्मक यह प्राण है और सर्वदेवमय व्यापक है ॥ ६५ ॥ तथा वासुदेवका नित्य अनुगामी है. एवं विष्णुके वशमें स्थित है. वासुदेवके प्रतिकूल न सुनता है, न देखता है ॥ ६६ ॥ रुद्रइन्द्रआदि देवता प्रतिकूल कार्य करते हैं; कोईभी प्रतिकूल कार्य करै, परंतु सर्वान्तर्यामी प्राण कभी प्रतिकूल काम नहीं करता है ॥ ६७ ॥ इसकारण, पंडितजन इस प्राणको विष्णुका सहायक कहते हैं. इसप्रकार विष्णुभगवान्के माहात्म्य और लक्षणको जानकर ॥ ६८ ॥ जैसे सांप कैंचुली छोडता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मानुबंध-

शरीरको त्यागकर नारायणके परम धामको जाता है" ॥ ६९ ॥ यह वाक्य शंखमुनिका सुनकर व्याध बहुत प्रसन्न हुआ और नम्रभावसे फिर शंखमुनिसे पूछने लगा॥ ७० ॥ कि-" हे ब्रह्मन् ! महानुभाव, जगद्गुरु इस प्राण सर्वेश्वरकी महिमा लोकमें क्यों प्रगट नहीं है ? ॥ ७१ ॥ देवता, मुनि, राजा और महात्माओंकी महिमा लोकमें और पुराणोंमें अनेक प्रकारसे सुननेमें आती है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मेरे आगे आप कहो. सुननेकी मुझको बडी अभिलाषा है. " शंखमुनि बोले—"पूर्वसमयमें प्राण, हरिदेव अनामय

श्रुत्वा शंखोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः प्रश्रयावनतो भूत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिः ॥ ७० ॥ ब्रह्मन् महानुभावस्य प्राणस्य च जगद्गुरोः ॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै ॥ ७१ ॥ देवानां च मुनीनां च भूपानां च महात्मनाम्॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः ॥ ७२ ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रोतुं कौतुहलं हि मे ॥ शंख उवाच ॥ ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयम् ॥ ७३ ॥ अश्वमेधैर्यष्टुकामो गंगातीरम् ययौ मुदा ॥ हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः ॥ ७४ ॥ अंतर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नाम समाधिगः ॥ हलोत्कृष्टो विनिष्क्रांतः क्रोधादिदमुवाच ह ॥ ७५ ॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम् ॥ अद्यप्रभृति विख्यातिं महिमा भुवनत्रये ॥ ७६ ॥

नारायण भगवान्का ॥ ७३ ॥ अश्वमेध यज्ञद्वारा पूजन करनेके निमित्त प्रसन्नतापूर्वक गंगाजीके तीरपर गया. अनेक मुनियोंसहित हलसे पृथ्वीको शुद्ध करते समय ॥ ७४ ॥ वहां एक वांबी निकली; उसमें एक महात्मा कण्वमुनि समाधि लगाये बैठे थे. हलके द्वारा बाहर निकल आनेपर मुनि क्रोधकरके बोले ॥ ७५ ॥ और प्राणको अपने सामने

देखकर शाप दिया "आजसे तेरी महिमा तीनों भुवनोंसे जाती रहेगी ॥७६॥ और विशेषकरके भूलोकमें तुझको कोई नहीं मानैगा. त्रिलोकीमें तेरे अवतार अमख्यात होंगे" ॥ ७७ ॥ जब मुनिने इसप्रकार शाप देके कहा, तव वायुने क्रोधकरके कहा–"तुमने विनाअपराध मुझको शाप दिया है. क्योंकि, हमारा कुछ अपराध नहीं है ॥ ७८ ॥ इसकारण, हे महाबाहो कण्वमुनि ! तुम शीघ्र गुरुद्रोही होओ और संसारमें तुमारी वृत्ति निन्दित होय " ॥ ७९ ॥ तवहीसे इस संसारमें महाप्रभु प्राण लोकमें प्रगट नहीं है.

तव नामेति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥ मख्यातास्ते भविष्यंति ह्यवतारा जगत्रये ॥ ७७ ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तथाऽब्रवीत् ॥ विनापराधं शप्तोऽसि तितिक्षुर्मां निरागसम् ॥७८॥ तस्मात् कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवाशु च ॥ लोके निंदितवृत्तिश्च भवेस्याह सदा गतिः ॥७९॥ ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन् प्राणस्यास्य महाप्रभो ॥ न ख्यातो महिमा लोके भूलोके तु विशेषतः ॥८०॥ शापात् कण्वो गुरुं जग्ध्वा सूर्यशिष्योऽभवत्तदा ॥ ८१ ॥ इत्येतत् कथितं सर्वं यत् पृष्टं तु त्वयाधुना ॥ यच्छ्रोतव्यमितो व्याध पृच्छ मां मा विचारय ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ ॥

विशेषकरके भूलोकमें प्रसिद्ध नहीं है ॥ ८० ॥ शापसे कण्व अपने गुरुका त्याग करके आगे सूर्यका शिष्य हुआ ॥ ८१ ॥ हे व्याध ! यह जो कुछ तुमने पूछा, सो हमने कहा अब जो कुछ सुननेकी तुमारी इच्छा हो, सो पूछो: विचार मत करो ॥ ८२ ॥ ॥इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

॥ व्याधने कहा– " हे ब्रह्मन् ! जगदीश्वरने ये हजारों करोडों जीव क्यों रचे हैं और इन सनातन जीवोंके कर्म व मार्ग-भिन्न भिन्न क्यों है ? ॥ १ ॥ हे महामते ! इन सबके स्वभाव एकसे क्यों नहीं है ? यह सब जाननेकी मेरी अभिलाषा है; विस्तारसे आप कहिये" ॥ २ ॥ शंखमुनि बोले–"रजोगुणी, सतोगुणी, तमोगुणी इन तीन प्रकारके जीव हैं. रजोगुणी जीव रजोगुणके कर्म करते हैं तथा तमोगुणी तमोगुणके कर्म करते हैं ॥ ३ ॥ सतोगुणी सतोगुणके कर्म करते है. ये यथाक्रम कर्म करते हैं और कभी कभी

व्याध उवाच ॥ ॥ किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्रशः ॥ दृश्यंते भिन्नकर्माणो नानामार्गाः सनातनाः॥१॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते॥ सर्वं तव् पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥२॥ शंख उवाच ॥ ॥ त्रिविधा जीवसंघा हि रजःसत्वतमोगुणाः ॥ राजसा राजसं कर्म तामसा तामसं तथा ॥३॥ सात्विकाः सात्विकं कर्म कुर्वंत्येते यथाक्रमम् ॥ क्वचिच्च गुणवैषम्यमेतेषां संस्ट्तो भवेत् ॥४॥ तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वन्ते फलभागिनः ॥ क्वचित् सुखं क्वचिद्दुःखं क्वचिच्चोभयमेव च ॥५॥ गुणानामेव वैषम्यात् प्राप्नुवंति नरा इमे ॥ प्रकृतिस्था इमे जीवा बद्धा गतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां व्यत्ययः फलम् ॥ गुणानुगुण्यं भूयस्ते प्रकृतिं यांत्यमी जनाः ॥ ७ ॥

इन गुणोंमें विषमता भी हो जाती है ॥ ४ ॥ उसी ऊंचे नीचे कर्म करके फलके भोगनेवाले होते हैं. कभी सुख, कभी दुःख; कभी अभय पाते हैं ॥ ५ ॥ इस संसारमें ये मनुष्य गुणोंकीही विषमतासे सुख–दुःख आदि पाते हैं और ये प्रकृतिस्थ जीव इन्हीं तीनों गुणोंसे बधे हैं ॥ ६ ॥ गुण और कर्मके अनुसारही कर्मोंका नाश और फल है. इन्हीं

गुणोंके अनुगुणी होकर ये मनुष्य प्रकृतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ प्रकृतिस्थ मनुष्य प्रकृतिक गुणकर्मोंसे अभिमूर्तित हैं और वे प्राकृतिक गतिको प्राप्त होते हैं. तथा प्रकृतिका कभी नाश नहीं होता ॥ ८ ॥ तमोगुणी बहुत दुखी रहते हैं. उनकी वृत्ति सदा तमोगुणी रहती है. संसारमें ये निर्दयी, निष्ठुर और सबसे द्वेप रखनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥ राक्षससे पिशाचतक सब तामसी गतिको प्राप्त होते हैं और रजोगुणवालोंकी बुद्धि मिली होती है. ये पुण्य पाप दोनों करते है ॥१०॥ पुण्यसे स्वर्गगामी होते हैं, पापसे नरकमें

प्रकृतिस्थाः प्राकृतिका गुणकर्माभिमूर्छिताः ॥ गतिं प्राकृतिकीं यांति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥८॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः ॥ निर्दया निष्ठुरा लोके सदा द्वेषैकजीविनः ॥ ९ ॥ राक्षसाद्याः पिशाचांतास्तामसीं यांति वै गतिम् ॥ राजसा मिश्रगतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥ १० ॥ पुण्यात् स्वर्गं प्राप्नुवंति क्वचित् पापाच्च यातनाम् ॥ अत एते मंदभाग्या आवर्तन्ते पुनःपुनः ॥ ११ ॥ धर्मशीला दयावंतः श्रद्धावंतोऽनसूयकाः ॥ सात्विकाः सात्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठंत आसते ॥ १२ ॥ ते चोर्ध्वं यांति विमला गुणापाये महौजसः ॥ अतो विभिन्नकर्माणः पृथग्भावाः पृथग् धियः ॥ १३ ॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः ॥ कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥ १४ ॥

गिरते हैं. इससे ये मंदभागी वारंवार जन्मते हैं ॥ ११ ॥ और धर्मशील, दयालु, श्रद्धावान्, पराई निंदा न करनेवाले, सतोगुणी हैं. इनकी वृत्ति सतोगुणी है ॥ १२ ॥ वे निर्मल गुणवाले. महाओजस्वी स्वर्गलोकको जाते हैं. अतएव भिन्नकर्म, भिन्नभाव और पृथक् बुद्धिवाले हैं ॥ १३ ॥ इन्हींके गुणकर्मानुसार विष्णु महाप्रभु इनसे अपने स्वरूपकी

प्राप्तिके निमित्त कर्म कराते हैं ॥१४॥ पूर्णकामनावाले विष्णुभगवान्‌को विषमता नहीं है. विष्णुभगवान् उत्पत्ति, पालन और संहार समान भावसे करते हैं ॥ १५ ॥ अपने गुणोंसेहि ये सब कर्मोंके फल भोगते हैं. जैसे, बागीचामे उत्पन्न हुये सब वृक्षोंपर मेघ समान भावमे वृष्टि करता है ॥ १६ ॥ जैसे, सब वृक्ष एकही नालीसे सींचे जाते हैं, परंतु प्रकृति सब वृक्षोंकी पृथक् पृथक् होती है. बागीचाके लगानेवालेको कुछ विषमता वा निर्घृणता नहीं है" ॥१७॥ व्याधने पूछा—हे मुने ! पूर्णभोगवालोंको मुक्ति कब

विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै न हि ॥ सृष्टिं स्थितिं हृतिं चैव समामेव करोत्ययम् ॥ १५ ॥ स्वगुणादेव ते सर्वे कर्मणः फलभागिनः ॥ आरामोप्तान् यथा सर्वान् समं वर्षयति द्रुमान् ॥ १६ ॥ एककुल्याजला ह्यंग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः ॥ नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथंचन ॥ १७ ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने ॥ सृष्टिकालेऽथवा ह्यंतकाले वा स्थापनस्य च ॥ १८ ॥ क्वचिच्च सृष्टिकालस्य संहारस्यापि वै स्थितेः ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन् ! भगवच्चेष्टितं वद ॥ १९ ॥ शंख उवाच ॥ ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ रात्रिश्च तावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥ २० ॥ दश पंच दिनान्याहुः पक्षं मासो द्व्यात्मकः ॥ मासद्वयं ऋतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥ २१ ॥ अयने द्वे वत्सरः स्यात्ताद्दक् शतसमा यदि ॥ गच्छंति ब्रह्मणो ह्यस्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥ २२ ॥

होती है ? सृष्टिकालमें अथवा प्रलय कालमें वा स्थितिकालमें ॥ १८ ॥ और सृष्टि, स्थिति तथा संहारकालकी मर्यादा कितनी है ? सो हे ब्रह्मन् ! यह विस्तारपूर्वक आप मेरे सामने कहिये" ॥ १९ ॥ यह प्रश्न सुन शंखमुनि बोले—चारहजार युगोंका ब्रह्माका एक दिन कहा है. इतनीही रात्रि होती है. दिनरात मिलकर पूरा दिन होता है ॥ २० ॥ पन्द्राह दिनोका एक पक्ष और तीनऋतुओंका एक अयन कहा है॥२१॥दो अयनोंका एक वर्ष. ऐसे जब सो वर्ष व्यतीत होते हैं तब ब्रह्माकी पूर्ण आयु ब्रह्मकल्प कहा है ऐसा जानना॥२२॥

यही दिनप्रलयकाल है. यह वेदके जाननेवालोंका मत है. प्रलय तीन प्रकारका होता है. पहला मानव प्रलय; वह तब है, जब मनुष्योंका अन्त होता है ॥ २३ ॥ दूसरा दिनप्रलय; जो ब्रह्माके दिनप्रमाणाका होता है. वह दैनप्रलयभी कहाता है. पश्चात् ब्रह्माजीके लयसमयमें जो प्रलय होता है उसको ब्राह्मप्रलय कहते हैं ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीके एक मुहूर्तमें एक मनुका प्रलय होता है. एवं जब चौदह मनुप्रलय हो जाते हैं ॥ २५ ॥ तब एक दैनंदिन प्रलय होता है. उन प्रलयोंकी उतनीही अवधिपर्यन्त

तावान् हि प्रलयः काल इति वेदविदां मतम् ॥ प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥ २३ ॥ दैनंदिने द्वितीयो हि ब्रह्मणो दिवसात्यये ॥ ब्रह्मणोऽथ लयं पश्चाद्ब्राह्मं च प्रलयं विदुः ॥ २४ ॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु मनोस्तु प्रलयं विदुः ॥ प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥ २५ ॥ दैनंदिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिं पुनः ॥ त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वंतरे भवेत् ॥ २६ ॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां क्षयो भवेत् ॥ उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ २७ ॥ मन्वंतरांते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः ॥ दैनंदिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयो भवेत् ॥ २८ ॥ सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यंति साधिपाः ॥ सचेतनाः सा- धिभूताः प्रसुप्ते चतुराननै ॥ २९ ॥

स्थिति रहती है. मन्वन्तरप्रलयमें भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका लय हो जाता है॥२६॥ उस मन्वतरप्रलयमें चेतन जीवोंहीका नाश होता है, परन्तु लोकोंके स्वरूपका नाश नहीं होता है. पूर्वके समान उन लोकोंकी केवल जलसे पूर्ति हो जाती है ॥ २७ ॥ अनन्तर मन्वन्तरके अंतमें चेतन जीवोंकी उत्पत्ति फिर होती है और हे व्याध ! दैनंदिन प्रलयमें लोक और लोकस्थ सबका क्षय होता है ॥२८॥ विना सत्यलोकके और कोई लोक नहीं रहते हैं. सब नष्ट हो जाते है और चेतन अधिभूत जीवोंसहित

भा० टी० अ०२०

सब लोकोंका ब्रह्माजीके शयन करनेपर नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ तत्वाभिमानी देवता और कुछ मुनि शेष रहते हैं और सत्यलोकके शयन करनेवालेभी शेष रहते हैं ॥ ३० ॥ और वे कल्पपर्यन्त निद्रित हो शयन करते रहते हैं. अनन्तर रात्रिके समाप्त होनेपर पूर्वसृष्टिके अनुसार ब्रह्माजी जगत्को रचते हैं ॥ ३१ ॥ ऋषि, देव और पितृलोकोंको तथा वर्णधर्मसहित चारों वर्णोंको पृथक् पृथक् रचते हैं. तब चक्र धारण करनेवाले विष्णुभगवान्के दश अवतार होते हैं ॥ ३२ ॥ इसीप्रकार

तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा ॥ शिष्यंति सुप्ताः सर्वेपि सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ ३० ॥ तिष्ठंति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतींद्रियाः ॥ पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥३१॥ ऋषीन् देवान् पितॄन् लोकान् धर्मान् वर्णान् पृथक् पृथक्॥ पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ ३२ ॥ नियमेन भवंत्येते तथान्येऽपि च भूरिशः ॥ देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च गिरां पतेः ॥ ३३ ॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः ॥ भूपाश्च साधवो ये च सिद्धिं प्राप्ताः परं गताः ॥ ३४ ॥ तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तन्नाम्नाश्रुतिसंस्थिताः ॥ ३५ ॥ तत्तद्गोत्रेषु जायंते तत्तत्कर्मरताः सदा ॥ दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः ॥ ३६ ॥

नियमसे अन्यभी बहुतसे देवता, ऋषि, कल्पपर्यंत ब्रह्माजीके द्वारा ॥ ३३ ॥ फिर होते हैं और जो ब्रह्माके संग मुक्तिमें जानेवाले हैं वो ब्रह्मलोकहीमें रहते हैं तथा जो राजा, साधु सिद्धिको प्राप्त हैं और ब्रह्मलोकवासी हैं ॥ ३४ ॥ वे सब सत्यलोकमेही स्थित रहते हैं, यहां नहीं आते हैं. तथा जो उस राशिपर जानेवाले उसी नामसे श्रुतिमें भलीभांति स्थित हैं वे फिर जाते हैं ॥ ३५ ॥ और उन्हीं उन्हीं गोत्रोंमें उन्हीं उन्हीं कर्म करनेवाले जन्म धारण करते हैं और जब कलियुगकी समाप्ति होती है, तब सब

दैत्योंका भी ॥ ३६ ॥ नाश हो जाता है. तव वे सव कलियुगसमेत अपनी गतिको जाकर प्राप्त होते हैं. उनका निरय स्थान होता है और उनकी राशिपर स्थित उनके नामवाले और भी हैं ॥ ३७ ॥ वे अपने कर्मानुसार आगे कर्म करनेके लिये उत्पन्न होते हैं, अब मैं तुमारे आगे सृष्टिकाल तथा मुक्तिकालका वर्णन करता हूं ॥ ३८ ॥ ब्रह्माआदि देवताओंका मुक्तिकाल सावधान मन होकर सुनौ. देवदेव भगवान्‌का निमेषकाल ब्रह्माजीके कल्पके वरावर होता है ॥ ३९ ॥ उस कल्पका अंत होनेपर उस महा-

कलिना सह गच्छंति स्वां गतिं निरयालयाः ॥ तेषां च राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेपि च ॥ ३७ ॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः ॥ सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च ॥ ३८॥ ब्रह्मादीनां च देवानां समाहितमना भव ॥ निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः ॥ ३९ ॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः ॥ निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान् ॥ ४० ॥ सोऽपश्यन् स्वोदरे सर्वान् जीवसंघाननेकशः ॥ सृज्यान् मुक्तानमून् सर्वान् लिंगभंगमुपागतान् ॥ ४१ ॥ सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेपि तमोगा अपि सर्वशः ॥ पूर्वकल्पे लिंगभंगमापन्ना विधिपूर्वकम् ॥ ४२ ॥ मानवांता जीवकोशा जीवन्मुक्ताश्च मुक्तिगाः ॥ पूर्वकल्पे विमुक्ताश्च ब्रह्माद्या मानवांतकाः ॥ ४३ ॥

प्रभु भगवान्‌का उन्मेष ( पलक खोलना ) होता है. निमेषके अंतमें भगवान् नारायणको अपने कुक्षिगत लोकोंके रचनेकी इच्छा होती है ॥ ४० ॥ और अपने उदरमें सब लोकोंको और अनेक जीवसमुदायोंका भगवान् देखते हैं. मनमें कितनेही सजने योग्य हैं. कितनेही मुक्त हैं. कितनेही ऐसे हैं, जिनका लिंगदेह छूट गया है ॥४१॥ वे सुप्त हैं. संसारमें स्थित हैं, वे सब तमोगुणसंबंध युक्त हैं और ऐसेभी हैं. जो विधिपूर्वक पूर्वकल्पमें लिंगभंगको प्राप्त हुये हैं ॥ ४२ ॥ मानवांत, जीवकोश, जीवन्मुक्त, मुक्तिगामी, पूर्वकल्पमें

विमुक्त ब्रह्माआदि मनुष्यपर्यन्त ॥ ४३ ॥ विष्णुकी कुक्षिमें स्थित होनेपरभी ध्यानावस्थित रहते हैं. उन्मेषके प्रथम भागमें चतुर्व्यूहात्मक विभु ॥ ४४ ॥ होकर व्यूहमें स्थित षड्गुणवाले वासुदेवसे ब्रह्माको सायुज्यमुक्ति देकर तदनन्तर महाविभु ॥ ४५ ॥ महात्माओंको तत्वज्ञानरूप सायुज्यमुक्ति देकर सारूप्यमुक्ति देते हैं. तथा किन्हीको विभु भगवान् सामीप्यमुक्ति देते हैं ॥ ४६ ॥ तथा अन्य मनुष्योंको देवदेव जनार्दन सालोक्य मुक्ति देकर अनिरुद्धरूपसे सम्पूर्ण स्थित लोकोंको देखते हैं ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नरूपसे जगत् रचे-

ध्यानसंस्था हि तिष्ठंति विष्णुकुक्षिगता अपि ॥ उन्मेषप्रथमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४४ ॥ भूत्वा तु पूर्वषाड्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात् ॥ दत्त्वा तु ब्रह्मणे मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः ॥४५॥ दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम् ॥ सारूप्यं चैव केषांचित् सामीप्यं च तथा विभुः ॥ ४६ ॥ सालोक्यं च तथान्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः ॥ अनिरुद्धवशे सर्वान् स्थितांल्लोकानलोकयत् ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नस्य वशे दत्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे ॥ मायां जयां कृतिं शांतिमुपयेमे स्वयं हरिः ॥ ४८ ॥ चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात् ॥ ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः ॥ ४९ ॥ भिन्नकर्माशयं लोकं पूर्णकामो व्यजीजनत् ॥ उन्मेषांते पुनर्विष्णुर्योगमायां समाश्रितः ॥ ५० ॥

नेका विचार करते हुये स्वयं हरिभगवान् माया, जया, कृति, शांतिके साथ विवाह करते हैं ॥ ४८ ॥ वासुदेवआदि क्रमसे पूर्ण गुणयुक्त चतुर्व्यूह उन माया, जया आदि शक्तिसे युक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णु भगवान् ॥४९॥ कर्म और भिन्नआशयवाले लोकोंको रचते हैं. पूर्णकाम भगवान् नेत्र खोलनेके अन्तमें योगमायाका आश्रय लेकर ॥५०॥

व्यूहगत संकर्षणद्वारा इस चराचरका नाश करते हैं. उस महात्माका यह सब अचिन्तनीय कार्य प्रसिद्ध है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माआदि योगियोंके द्वाराभी यह कार्य अचिन्त्य है. " यह सुन व्याधने पूछा– " हे ब्रह्मन् ! भागवतधर्म कौनसे हैं ? किन धर्मोंसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होते हैं ? ॥ ५२ ॥ उन धर्मोंके सुननेकी हमारी इच्छा है. सो हे मुने ! आप मेरे सामने कहो. " यह प्रश्न सुनकर शंखमुनि बोले– " जिससे चित्तकी शुद्धि होती है और जिससे सज्जनोंका उपकार होता है ॥ ५३ ॥ उसको सात्विक धर्म

संकर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम् ॥ तदेतत् सर्वमाख्यातं कार्यं चिंत्यं महात्मनः ॥ यदचिंत्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः ॥
॥ ५१ ॥ व्याध उवाच ॥ ॥ के च भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसीदति ॥ तानहं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं वद नो मुने ॥ ५२ ॥
शंख उवाच ॥ येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः ॥५३॥ तं विद्धि सात्विकं धर्मं यश्च केनाप्यनिंदितः ॥ श्रुतिस्मृत्युदितो
यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥ ५४ ॥ यस्तु लोकाविरुद्धोऽपि तं धर्मं सात्विकं विदुः ॥ चतुर्विधा हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥
॥ ५५ ॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधा माताः ॥ ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः ॥ ५६ ॥ तदा वै सा-
त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः ॥ देवतांतरदैवत्याः सकामा राजमा मताः ॥ ५७ ॥

जानो; जो किसीसे निन्दित नहीं है. तथा जो श्रुतिस्मृतिमें कहा है और कामनारहित होता है ॥५४॥ जो लोकसे विरुद्ध नहीं होता है, उस धर्मको सात्विक धर्म जानो. वह धर्म, वर्ण और आश्रमके विभाग करके चार प्रकारका होता है ॥ ५५ ॥ तथा नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन तीन भेदोंसे तीन प्रकारका है. परंतु जो वे सब अपने अपने धर्म विष्णुभगवान्‌को अर्पण किये जावें ॥ ५६ ॥ तब उनको सतोगुणवाले उत्तम भागवत धर्म जानो और जे धर्म कामनासहित अन्य देवताओंको अर्पण किये जाते हैं,

उनको राजसधर्म जानौ ॥ ५७ ॥ तथा यक्ष, राक्षस, पिशाच इनको देव मानकर किये हुये, तथा हिंसात्मक तथा लोकोंमें जो निन्दित धर्म हैं वे सब तामस कहाते हैं ॥ ५८ ॥ जो सतोगुणी पुरुष विष्णुभगवान्के प्यारे सात्विक धर्मोंको करते हैं, वे नित्य धर्म भागवतधर्म कहाते हैं ॥ ५९ ॥ जिनका चित्त सदा विष्णुमें रहता है, जो जिह्वासे विष्णुभगवान्का नाम रटते हैं, जिनके हृदयमें भगवान्के चरण रहते हैं वेही भागवत ( भगवत्संबंधी ) कहाते हैं ॥ ६० ॥ जे सदाचारमें तत्पर रहते हैं, जे सबका उपकार करते हैं औरं जे सदा

यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः ॥ हिंसात्मका निंदिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥ ५८ ॥ सत्वस्थाः सात्विकान् धर्मान् विष्णुप्रीतिकरान् शुभान् ॥ कुर्वंत्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५९ ॥ येषां चित्तं सदा विष्णौ जिव्हायां नाम वै विभोः ॥ पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६० ॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः ॥ सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६१ ॥ येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु ॥ ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ६२ ॥ येषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ॥ श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥ ६३ ॥ अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् ॥ श्रवणं सर्वधर्माणां विषयासक्तचेतसाम् ॥ ६४ ॥

ममतारहित रहते हैं, वेही भागवत कहाते हैं ॥ ६१ ॥ जिनका शास्त्र, गुरु, साधु और कर्म इनमें विश्वास है, जे निरंतर विष्णुभक्त हैं, वेही भागवत कहाते हैं ॥ ६२ ॥ जिनको विष्णुभगवान्के प्रिय होनेवाले धर्म सदा सम्मत हैं और श्रुति-स्मृति ओंमें ( वेद और धर्मशास्त्रमें ) जे धर्म कहे हैं, वेही धर्म उत्तम कहे हैं ॥ ६३ ॥ सब देशोंमें विचरना, सब कर्मोंको देखना और सब धर्मों-

को सुनना. परंतु विषयमें आसक्त चित्तवाले ॥ ६४ ॥ इनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकते हैं; जैसे नपुंसकके लिये सुन्दर स्त्री कुछभी आनन्द नहीं करती. सज्जनोंका मन साधुओंके दर्शनसेही द्रवीभूत हो जाता है ॥ ६५ ॥ जैसे, चन्द्रमाकी कौमुदी ( चांदनी ) के संगसे चन्द्रकांत मणि द्रवीभूत हो जाती है. कोई सत्शास्त्रोंके सुननेसे विषयोंकरके चलायमान मनवाले होते हैं ॥ ६६ ॥ सज्जनपुरुष सदा तेजरूप और पापरहित रहते हैं. जैसे, सूर्यकी किरणके संग सूर्यकांत मणि रहती है ॥ ६७ ॥ कामनारहित पुरुषोंसे

अकिंचित्करमेतेषां षंढस्येव वरस्त्रियः ॥ साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥ ६५ ॥ चंद्रस्य कौमुदीसंगाच्चंद्रकांतशिला यथा ॥ क्वचित् सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयेभ्यश्चलं मनः ॥ ६६ ॥ तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपं ह्यकल्मषम् ॥ पद्मबंधोः प्रभासंगात् सूर्यकांतशिला यथा ॥ ६७ ॥ निष्कामैर्हि जनैर्यैस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः ॥ यो विष्णुवल्लभो नित्यं धर्मो भागवतो मतः ॥ ६८ ॥ तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहामुत्र फलप्रदाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥ ६९ ॥ दध्नः सारमिवोद्धृत्य धर्मं वैशाखसंभवम् ॥ रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥ ७० ॥ मार्गेच्छायाविनिर्माणं प्रपादानं च वै तथा ॥ व्यजनैर्वीजनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ॥ ७१ ॥

श्रद्धापूर्वक जे विष्णुप्रिय नित्य धर्म किये जाते हैं, वेही भागवत धर्म हैं॥ ६८॥ इसलोक और परलोकमें सुख देनेवाले बहुतसे धर्म देखे, परंतु विष्णुभगवानको प्रसन्न करनेवाले धर्म सूक्ष्म और सब दुःखोंके दूर करनेवाले होते हैं ॥ ६९ ॥ जैसे, दहीमेंसे साररूप मक्खन निकाल लेते हैं, वैसेही सबके हितकी कामनासे क्षीरसागरमें भगवान्ने लक्ष्मीजीके-प्रति वैशाखधर्मको कहा है ॥ ७० ॥ मार्गमें छाया कराना, प्याऊ लगवाना, तथा पंखासे वायु कराना, योग्य पुरुषोंको दान देना ॥ ७१ ॥

छतरी, जूता, कपूर, गन्ध ( चंदनादि ) पदार्थोंका दान, विभव हो तो बावडी–कुवां–तालावका बनवाना ॥ ७२ ॥ सायंकालमें शर्बत और फूलोंका दान, तांबूलदान पापनाशक गोरसदान सबसे उत्तम है ॥ ७३ ॥ मार्गमें थके हुयेको लवणसंयुक्त छाछका दान, उवटन और थके ब्राह्मणका चरणप्रक्षालन ॥ ७४ ॥ चटाई, कंबल, शय्या इनका दान, एवं गोदान, मधुसहित तिलदान जो पापोंको विनाश करनेवाला है ॥ ७५ ॥ सायंकालमें ईख और ककड़ीका दान, तथा पितरोंके निमित्त

छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगंधयोः ॥ वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति ॥ ७२ ॥ सायान्हे पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च ॥ तांबूलदानं पापघ्नं गोरसानां विशेषतः ॥ ७३ ॥ लवणान्विततक्रस्य दानं श्रांताय वै पथि ॥ अभ्यंगकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥ ७४ ॥ कटकंबलपर्यंकदानं गोदानमेव च ॥ मधुयुक्तं तिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥ ७५ ॥ सायान्हे चेक्षुदंडानां दानमुर्वारुकस्य च ॥ रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥ ७६ ॥ एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन् द्विजकुलेरितम् ॥ ७७ ॥ नित्यकर्माणि कृत्वैव मधुसूदनमर्चयेत् ॥ कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥ ७८ ॥ तैलाभ्यंगं वर्जयेच्च कांस्यपात्रे तु भोजनम् ॥ निषिद्धभक्षणं चैव वृथालापं तु वर्जयेत् ॥ ७९ ॥

रसायनका दान ॥ ७६ ॥ ये सब दान, इस माधवप्रिय-वैशाखमासमें विशेष धर्म कहे हैं. प्रातः सूर्योदयकालमें स्नान कर ब्राह्मणके मुखसे धर्म सुने ॥ ७७ ॥ नित्यकर्म करके मधुसूदन भगवान्‌की पूजा करै, वैशाखमाससम्बन्धी कथा मन लगाकर सुनै ॥ ७८ ॥ तैलका मर्दन और कांस्यपात्रमें भोजन नहीं करै. निषिद्ध पदार्थ ( अभ-

ष्य ) भोजन नहीं करै और वृथा वार्तालाप नहीं करै ॥ ७९ ॥ लौकी, गाजर, लशुन, तिलकुट, कांजी ( सिर्का ), फूट तथा घियातोरई ॥ ८० ॥ पोई, कलिंग ( वटवृक्ष ) सहिंजना शाक वर्जित करै. मटर माष, कुलथी, मसूर इनको नहीं खावै ॥ ८१ ॥ बैंगन, कलिंदा, कोदों, चौलाईका शाक, कुसुंभ तथा मूली इनका त्याग करै ॥ ८२ ॥ गूलर, बेलफल तथा लिहसोडाका फल, इस माधवप्रिय ( वैशाख ) मासमें विद्वान् इनको सर्वथा वर्जित करै अर्थात् भूलकरभी इनका सेवन नहीं करै ॥ ८३ ॥ इनका

अलाबुं गृंजनं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् ॥ आरनालं भिस्सटं च घृतकोशातकीं तथा ॥८०॥ उपोदकीं कलिंगं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत् ॥ निष्पावानि कुलित्थानि मसूराणि च वर्जयेत् ॥ ८१ ॥ वृंताकानि कलिंगानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् ॥ तंदुलीयकशाकं च कौसुंभं मूलकं तथा ॥ ८२ ॥ औदुंबरं विल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् ॥ सर्वथा वर्जयेद्विद्वान् मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ ८३ ॥ एतत्त्वन्यतमं भुक्त्वा स चांडालो भवेद्ध्रुवम् ॥ तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८४ ॥ एवं मासव्रतं कुर्यात् प्रीतये मधुघातिनः ॥ एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः ॥ ८५ ॥ मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् ॥ स्वार्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८६ ॥

सेवन करनेसे अवश्यमेव चांडालयोनिमें जन्म प्राप्त होता है; सौवार पशुयोनिमें जाना पडता है. इसमें विचार नहीं करना ॥ ८४ ॥ इसप्रकार मधुसूदन भगवान्की प्रीतिके अर्थ वैशाखमासमें व्रत करै. व्रत समाप्त होनेपर विष्णुभगवान्की प्रतिमा बनवावै ॥८५॥ फिर मधुसूदनकी प्रतिमाको वस्त्र पहराय दक्षिणासमेत अपने सम्पूर्ण विभवके अनुसार पूजन

करके ब्राह्मणको देवै ॥ ८६ ॥ वैशाखशुक्लपक्ष द्वादशीके दिन दही-भात जलपूर्ण घट, तांबूल, फल और दक्षिणा इनके सह अवश्य देवै ॥ ८७ ॥ अनन्तर जूता छतरीका दान देवै; ब्राह्मणको भोजन करावै. तदनन्तर शीतल जल, दही, अन्न, तांबूल, दक्षिणासहित देवै ॥ ८८ ॥ और यह वचन कहे कि-' मैं धर्मराजकी प्रसन्नताके अर्थ दान करता हूं, इस दानसे यमराज मुझपर प्रसन्न होओ. अपसव्य होकर अपना नामगोत्र और पिताका नाम संकल्पमें उच्चारण कर दान देवै ॥ ८९ ॥ पहले दही और

वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमंजसा ॥ सोदकुंभसतांबूलं सफलं च सदक्षिणम् ॥ ८७ ॥ दद्यादुपानहौ छत्रं ब्राह्मणान् भोजये-त्ततः ॥ शीतलोदकदध्यन्नं सतांबूलं सदक्षिणम् ॥ ८८ ॥ ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः ॥ अपसव्यान् समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः ॥ ८९ ॥ दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ गुरुभ्यश्च तथा दद्यात् पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ॥ ९० ॥ शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् ॥ सदक्षिणं सतांबूलं सभक्ष्यं च फलान्वितम् ॥ ९१ ॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलो-कजिगीषया ॥ इति दत्त्वा यथाशक्त्या गां च दद्यात् कुटुंबिने ॥ ९२ ॥

अन्न पितरोंकी अक्षय तृप्तिके अर्थ देवै; अनन्तर गुरुके निमित्त, फिर विष्णुभगवान्के अर्थ देवै ॥ ९० ॥ शीतल जल, दही, अन्न, कांसेके उत्तम पात्रमें दक्षिणासहित तांबूल और खानेके योग्य फल रखकर देवै ॥ ९१ ॥ और कहे-' हे विष्णो ! मैं वैकुंठकी प्राप्तिके निमित्त ये दान करता हूं.' यह सब यथाशक्ति देकर कुटुम्बी ब्राह्मणके अर्थ गोदा-

न देवे ॥ १२ ॥ ऐसे वैशाखमासमें सदा दंभरहित व्रत करै, तो वह सब पापोंसे छूटकर अपने सौ कुलोंका उद्धार कर ॥ १३ ॥ सब प्राणियोंके देखते सूर्यमंडलको पारकर विष्णुके परम धामको जाता है. जो योगियोंकोभी दुर्लभ है " ॥ १४ ॥ ऐसे श्रुतदेवजीने वैशाखमासके सम्पूर्ण धर्मोंको व्याधके पूछनेपर वर्णन किया. उसी समय शीघ्र सबके देखते २ पृथ्वीपर वह पंचशाख वृक्ष गिर पडा ॥ १५ ॥ तब उस वृक्षकी खोहमेंसे एक बडा भयंकर सांप तुरंत पापरूप शरीरको छोडकर हाथ जोड शिर झुकाय वहां बैठ

एवं मासव्रतं कुर्यात् सदा दंभविवर्जितः ॥ स सर्वैः पातकैर्हीनः कुलमुद्धृत्य वै शतम् ॥ १३ ॥ पश्यतामेव भूतानां भित्त्वा वै सूर्यमंडलम् ॥ याति विष्णोःपरं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥ १४ ॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान् विष्णवादिष्टानतिमहितरान् व्याधपृष्टान् समस्तान् ॥ वृक्षः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पंचशाखी द्रुमोऽयम् ॥१५॥ वृक्षात्तस्मात् कोटरे संस्थितो हि व्यालःकश्चिद्दीर्घदेही करालः ॥ हित्वा देहं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्रांजलिर्नम्रमूर्धा ॥१६॥ ॥इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शंखो व्याधसमन्वितः ॥ को भवानिति तं प्राह दशेषा च कुतस्तव ? ॥ १ ॥ केन वा कर्मणा सौम्य मतिस्तव शुभावहा ॥ अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥

गया ॥ १६ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीपसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रुतदेवजी बोले–" तब तो शंखमुनि व्याधसहित विस्मित होकर शंखमुनिने पूछा कि–' तुम कौन हो और तुमारी यह दशा कैसे हुई ? ॥ १ ॥ हे सौम्य ! किस कर्मसे तुमारी उत्तम मति हुई है ? अकस्मात् तुमारी मुक्ति

कैसे होगई सो विस्तारपूर्वक हमारे आगे कहो ॥ २ ॥ शंखमुनिने जब इसप्रकार पूछा, तब वह पृथिवीपर दंडवत् गिर पडा. फिर शिर झुकाय हाथ जोड यह वचन बोला ॥ ३ ॥ " पूर्वसमय मैं प्रयागराजमें एक ब्राह्मण बहुत बात करनेवाला था. रूपयौवनसम्पन्न विद्याके मदसे अहंकारयुक्त था ॥ ४ ॥ धनवान् व बहुपुत्रवान् होनेसे सदैव अहंकारसे दूषित, कुसीदमुनिका पुत्र रोचननामसे मैं विख्यात रहा ॥ ५ ॥ आसन, शयन, निद्रा, व्यवाय, अक्षपरिक्रिया, लोकवार्ता, व्याज लेना यही मेरा व्यापार था ॥ ६ ॥

शंखेनैवं तदा पृष्टो दंडवत् पतितो भुवि ॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित् प्रयागे बहुभाषकः ॥
रूपयौवनसंपन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥ ४ ॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाहंकारदूषितः ॥ कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥ ५ ॥
आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रिया ॥ लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापरास्ते ममाभवन् ॥ ६ ॥ तंतुमात्राणि कर्माणि लोकनिंदा-
विशंकितः ॥ सदंभश्च सदा क्रूरो न श्रद्धा मे कदाचन ॥ ७ ॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियान् कालो गतोऽभवत् ॥ तदा वैशाखमासेऽस्मिन्
जयंतो नाम वै द्विजः ॥ ८ ॥ श्रावयामास तन्मास-धर्मान् भागवतप्रियान् ॥ तत्क्षेत्रवासिनां पुण्य-कर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥

लोकनिंदासे मैं निश्शंक, दंभी, सदा क्रूरस्वभाववाला हो गया. किसी बातमें मेरी श्रद्धा नहीं रही ॥ ७ ॥ मुझ दुर्मति दुष्टका बहुत समय इसप्रकार व्यतीत हुआ. तब इस वैशाखमासमें जयन्त नाम ब्राह्मण ॥ ८ ॥ भगवान्के प्यारे वैशाखधर्मोंको सुना रहा था. उस क्षेत्रके रहनेवाले पुण्यात्मा द्विज ॥ ९ ॥

स्त्री, पुरुष, हजारों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, प्रातःसमय स्नान कर अविनाशी मधुसूदन भगवान्‌की पूजा करके ॥ १० ॥ निरन्तर कथा सुने और जयंत कथा बांचे. मन पवित्रतापूर्वक बैठे मौन साधे, वासुदेवकी कथामें मन लगाये ॥ ११ ॥ वैशाखधर्मके प्रेमी, दंभ और आलस्य रहित कथा सुन रहे. वहां उस समयमें मैंभी कौतुक देखनेकी इच्छासे चला गया ॥ १२ ॥ शिरपर मेरे पगडी बंधी रही, मैंने वहां बैठे हुये जनोंको नमस्कार किया. मुखमें पान चबाये था, कंचुक

नार्यो नराः क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः ॥ प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधूसूदनमव्ययम् ॥ १० ॥ कथां शृण्वंति सततं जयंतेन समीरिताम् ॥ शुचिर्भूत्वा मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥ ११ ॥ वैशाखधर्मनिरता दंभालस्यविवर्जिताः ॥ तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥ १२ ॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽर्पितो जने ॥ तांबूलं च मुखे कृत्वा कंचुकं च मया धृतम् ॥ ॥ १३ ॥ कथाविक्षेपमकरवं लोकवार्ताभिरंजसा ॥ सर्वेषां चित्तचांचल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥ १४ ॥ क्वचिद्वासः प्रसार्याहं क्वचिन्निंदन् क्वचिद्धसन् ॥ एवं कालो मया नीतः कथा यावत् समाप्यते ॥ १५ ॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्टधीः ॥ सन्निपातेन पंचत्वं प्राप्तोऽहं च परे दिने ॥ १६ ॥ यमदूतैश्च नीतोऽहं नरके च भयंकरे ॥ घोरां च यातनां भुक्त्वा मन्वंतानि चतुर्दश ॥ १७ ॥

पहरे हुये था ॥ १३ ॥ सभामें जातेही मैं लोकवार्ता करने लगा, जिससे कथामें विघ्न पड गया. मेरी बातचीतसे श्रोताओंका मन चलायमान हो गया ॥ १४ ॥ कभी मैं वस्त्र फैलाता था, कभी निंदा करने लगता; कभी हंसता. इसी प्रकार कथासमाप्तिपर्यंत समय बिताया ॥ १५ ॥ अनन्तर उसी दोषसे मेरी बुद्धि नष्ट हो गई. आयु क्षीण होने लगी. दूसरे दिन सन्निपातसे व्याकुल होकर मैं मरगया ॥ १६ ॥ यमके दूत मुझको नरकमें ले गये. वहां चौदह

१ पाठ " तसमन्तरेः पूर्व निरये च दुस्तरम् ॥ प्राप्य भुक्त्वा यातनां च मन्वंतानि चतुर्दश " ॥ १७ ॥ एतमपि पाठो दृश्यते केषुचित्पुस्तकेषु ।

मन्वन्तरपर्यन्त मैं नरकपीडा भोगकर ॥ १७ ॥ चौरासी लाख योनियोंमें क्रमसे उत्पन्न हुआ. अब मैं इस समय इस वृक्षमें निवास करता था ॥ १८ ॥ यह वृक्ष दशयोजन लम्बा चौडा और सौ योजन ऊँचा है. इसकी सात योजनोंकी एक खोहमें मैं क्रूरसर्पकी तामस ॥ १९ ॥ योनि पाय वास करता हूं. हे विप्रर्षे ! यह मेरे पूर्वकर्मोंका फल है. ऐसे इस खोहमें रहते निराहार दशहजार वर्ष व्यतीत हुये हैं ॥ २० ॥ दैवयोगसे आपके मुखारविंदसे कही हुई कथामृतको चक्षुगोलकद्वारा सुनकर मेरे सब पाप

युगेष्वथ च लक्षेषु तथा चतुरशीतिभिः ॥ क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं चावसं द्रुमे ॥ १८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते ॥ व्यालोऽहं तामस क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥१९॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा ॥ अयुतं च समायातं निराहारस्य कोटरे ॥ २० ॥ दैवात्तव मुखांभोजसमीरितकथामृतम् ॥ श्रुत्वा च चक्षुश्शुल्कैः सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥ २१ ॥ व्यालयोनिं विसृज्याहं दिव्यरूपधरः पुमान् ॥ प्रांजलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥२२॥ कस्मिन् जन्मनि त्वं बंधुर्न जाने मुनिसत्तम ! ॥ न मयोपकृतं क्वापि सानुबंधः कुतः सताम् ? ॥ २३ ॥

दूर हो गये. हे मुने ! ॥ २१ ॥ अब सांपयोनि छोडकर मैं दिव्य पुरुषरूप धारण कर हाथ जोड, शिर झुकाय आपकी शरणमें आकर प्राप्त हुआ हूं ॥ २२ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैं नहीं जानता कि किस जन्ममें आप मेरे बन्धु हुये हो. मैंने कभी किसीका उपकार नहीं किया. फिर सत्पुरुषोंका सत्संग कैसे प्राप्त हो गया ? ॥ २३ ॥

समानचित्तवाले और सबपर दया करनेवाले, परोपकारकी प्रकृतिवाले, साधुजनोंकी मति कभी अन्यथा नहीं होती है ॥ २४ ॥ आज आपने मुझपर बडी कृपा करी. जैसे धर्ममें मेरी मति होवे और जैसे मेरी सुगति होवे तथा जैसे विष्णुभगवान्में प्रीति होवे ॥ २५ ॥ तथा चक्रधारी विष्णुभगवान्की कभी विस्मृति न होवे और साधुमहात्माओंकी संगति सदा बनी रहे ॥ २६ ॥ कभी मुझसे अधर्म नहीं होवे. अहंकार और मदसे युक्त मैं नहीं रहूं, मैं सदा दरिद्रीही बना रहूं, जो दरिद्र धनके मदसे अंधे

साधूनां समचित्तानां सदा भूतदयावताम् ॥ परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथा मतिः ॥ २४ ॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् ॥ यथा च सुगतिर्भूयाद्यथा विष्णौ रतिर्भवेत् ॥ २५ ॥ न भूयाद्विस्मृतिः क्वापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥ महतां साधुवृत्तानां सद्रतिश्च सदा भवेत् ॥ २६ ॥ नाधर्मः क्वापि मे भूयान्नाहंकारो गदान्वितः ॥ दारिद्र्यमेव मे भूयान्मदांधानां यदंजनम् ॥ २७॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ प्रांजलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥ २८ ॥ शंखो दोर्भ्यां समुत्थाप्य पूर्णप्रेमपरिप्लुतः ॥ परस्पर्श पाणिना चांगं शंतमेन गताध्वसः ॥ २९ ॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन् दिव्यरूपधरे द्विजे ॥ प्राह तं कृपयाविष्टो भाविवृत्तान्तमंजसा ॥ ३० ॥

लोगोंका अंजनरूप है " ॥ २७ ॥ इसप्रकार शंखमुनिकी अनेक प्रकारसे स्तुति कर वारंवार प्रणाम कर हाथ जोड शिर झुकाय मुनिके आगे चुपचाप खडा रहा ॥ २८ ॥ तब शंखमुनिने प्रेमसे पूर्ण हो, उसको दोनों हाथोंसे उठाकर हाथोंसे स्पर्श किया, जिससे उसके सब पाप दूर हो गये ॥ २९ ॥ और उस दिव्यरूपधारी ब्राह्मणपर

कृपा करके भावी वृत्तान्त कहने लगे ॥ ३० ॥ हे द्विज ! वैशाखमासमाहात्म्य और हरिभगवान्‌का माहात्म्य सुननेसे तुमारे सब पाप दूर हो गये हैं ॥ ३१ ॥ तुम क्रमसे अतिवाहिक लोकोंको जाकर फिर पृथ्वीपर दशार्ण देशमें जाकर ब्राह्मणके घरमें जन्म पाओगे ॥ ३२ ॥ वेदशर्मानामसे तुम विख्यात होगें और सब विद्याओंमें विशारद होंगे. वहां तुमारी बहुतही जातिस्मृति होगी ॥ ३३ ॥ इस स्मृतिके अनुबन्धसे तुम सब इच्छाओंको छोडकर वैशाखोक्त हरिप्रिय धर्मोंको करोगे ॥ ३४ ॥

द्विज ते मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि ॥ माहात्म्यश्रवणात् सद्यो ध्वस्तनष्टाखिलाशुभः ॥ ३१ ॥ अतिवाहिकलोकांश्च क्रमाद्गत्वा पुनर्भुवि ॥ दशार्णे विषये पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ वेदशर्मेति विख्यातः सर्वविद्याविशारदः ॥ तत्र ते भविता जातिस्मृतिरात्यंतिकी शुभा ॥ ३३ ॥ तथा स्मृतानुबंधस्त्वं त्यक्तसर्वेषणः शुभः ॥ करोषि सकलान् धर्मान् वैशाखोक्तान् हरिप्रियान् ॥ ३४ ॥ निर्द्वन्द्वो निःस्पृहोऽसंगो गुरुभक्तो जितेंद्रियः ॥ सदा विष्णुकथालापो भविता तत्र जन्मनि ॥ ३५ ॥ ततः सिद्धिं सम्यगाप्य विध्वस्ताखिलबंधनः ॥ प्राप्नोषि परमं धाम योगैरपि दुरासदम् ॥ ३६ ॥ मा भैषीः पुत्र ! भद्रं ते भविता मत्प्रसादतः ॥ हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात् कामादथापि वा ॥ ३७ ॥

निर्द्वन्द्व, निस्पृह, निःसंग, गुरुभक्त और जितेन्द्रिय रहकर उस जन्ममें तुम सदा विष्णुभगवान्‌की कथाके आलापमें रहोगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर सिद्धिको प्राप्त होकर सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूट परम धामको प्राप्त होंगे जो योगियोंकोभी दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! भय मत करो; अब हमारी प्रसन्नतासे तुमारा कल्याण ( भला ) होगा. हंसीसे

भयसे तथा क्रोधसे, द्वेषसे अथवा कामसे ॥ ३७ ॥ वा स्नेहसे एक वारभी पापहारी भगवान्‌का नाम उच्चारण करे, तो विष्णुनामके प्रतापसे पापीभी निर्मल होके विष्णुलोकको चले जाते हैं ॥ ३८ ॥ फिर जो श्रद्धापूर्वक क्रोधको जीत जितेन्द्रिय और दयावान् होकर हरिकथा सुनते हैं, उनका तो कहनाही क्या है ? हे द्विजोत्तम ! वे विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ३९ ॥ कोई केवल भक्तिकरकेही कथालापमें तत्पर रहते हैं और सब धर्मोंको त्यागकर विष्णुके परम पदको जाते हैं ॥४०॥ तथा जो कोई द्वेषसे अथवा

स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च ॥ पापिष्ठा अपि गच्छंति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥ ३८ ॥ किमुत श्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेंद्रियाः ॥ दयावंतः कथां श्रुत्वा गच्छंतीति द्विजोत्तम ! ॥ ३९ ॥ केचित् केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः ॥ सर्वधर्मोज्झिता वापि यांति विष्णोः परं पदम् ॥ ४० ॥ द्वेषादिना च भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते ॥ सोपि याति परं धाम पूतनेवासुहारिणी ॥ ॥ ४१ ॥ महद्भिः संगतो नित्यं वाग्विसर्गस्तदाश्रयः ॥ मुमुक्षुणा च कर्तव्यः स विधिः श्रुतिचोदितः ॥ ४२ ॥ सवाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनंतस्य यशोंकितानि शृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥ ४३ ॥ यः कष्टसेवां च न कांक्षते विभुं वा धनं भूरि न रूपयौवने ॥ स्मृतः सकृद्वांछति धाम भास्करं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ ४४ ॥

भक्तिसे विष्णुकी उपासना करते हैं, वे परम धामको जाते हैं; जैसे, प्राण हरनेवाली पूतना मोक्षको प्राप्त हो गई ॥ ४१ ॥ प्रतिदिन महात्माओंका संग और वार्तालाप तथा उनका आश्रय मुमुक्षुओंको सदा कर्तव्य है; यही विधि वेदमें कही है ॥ ४२ ॥ महात्माओंके संग वार्तालाप करनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं. भगवान्‌के भिन्नभिन्न यशरूपके अंकित जो अनेक नाम हैं; उन्हीं नामोंको महात्मा साधु जन सुनते हैं, गान करते हैं और मनन करते हैं ॥ ४३ ॥ इस प्रकारकी जो भगवान्‌की

सेवा है, इसमें न कष्ट उठानेकी आवश्यकता है; न बहुत धनके खर्चकी आवश्यकता है. न रूपयौवनसे भगवान् प्रसन्न होते हैं. भगवान्के स्मरणमात्रसे प्रकाशवान् धाम प्राप्त होता है; उस दयालु भगवान्की शरणमें हम जाते हैं ॥ ४४ ॥ उस अनामय नारायणकीही शरणमें जाओ; जो भक्तवत्सल, केवल एकाग्र अंतःकरणसेहि जानने योग्य और दयानिधि है ॥ ४५ ॥ हे महामते ! इन सब वैशाखोक्त धर्मोंको करो. इनके करनेसे जगन्नाथ प्रसन्न होकर सब प्रकारसे तुमारा मंगल करेंगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार कहकर मुनि चुप हो गये. तब व्याधको देख विस्मित हो वह दिव्य पुरुष फिर मुनीश्वरसे बोला ॥ ४७ ॥ दिव्य पुरुषने कहा—" मै धन्य हूं. हे शंखमुने आप दयालुने मेरे ऊपर

तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम् ॥ भक्तवत्सलमव्यग्रचेतोगम्यं दयानिधिम् ॥ ४५ ॥ कुरु सर्वानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तान् महामते ॥ तेन तुष्टो जगन्नाथः शर्म ते च विधास्यति ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ व्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः ॥ स दिव्यः पुरुषः प्राह पुनस्तं मुनिपुंगवम् ॥ ४७ ॥ दिव्यपुरुष उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोस्मि त्वया शंख दयालुना ॥ दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव परां गतिम् ॥ ४८ ॥ इति तं च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ ॥ ततः सायमभूद्राजन् ! शंखो व्याधेन तोषितः ॥ ४९ ॥ संध्यां सायंतनीं कृत्वा रात्रिशेषं निनाय च ॥ नानाख्यानैश्च भूपानां देवानां च महात्मनाम् ॥ ५० ॥ लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्टिभिरेव च ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥ ५१ ॥

बडा अनुग्रह किया. आपकी कृपासे मेरी दुष्ट योनि जाती रही और उत्तम गति प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥ इसप्रकार परिक्रमा दे आज्ञा लेके स्वर्गलोकको चला गया. तदनन्तर सायंकाल हो गया. हे राजन् ! शंखमुनि व्याधसे प्रसन्न हो ॥ ४९ ॥ सायंकालकी संध्या कर राजा, देवता और महात्मा इनके अनेक इतिहासों करके रात्रिशेष बिताय ॥ ५० ॥ विष्णुभगवान्के अवतारोंकी देखी और सुनी लीलासम्बन्धी कथा सुनाय ब्राह्ममुहूर्तमें उठ चरण धोय मौन साध ॥ ५१ ॥

तारक ब्रह्मका ध्यान कर शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर सूर्योदयसे पहले स्नान कर ॥ ५२ ॥ सन्ध्याआदि नित्य कर्म तथा पितरोंका तर्पण करके प्रसन्न-चित्तसे व्याधको बुलाय उसके शिरपर जल छिडक और कृपादृष्टिसे उसको देखकर ॥ ५३ ॥ वेदसेभी अधिक उत्तमफलदायक ' राम ' येह दो अक्षर दिये. विष्णुका एक एक नाम सब वेदोंसे अधिक शुभफलदायक है ॥ ५४ ॥ ऐसे अनन्त नामोंसे अधिक विष्णु भगवान्के सहस्र नाम हैं. उन हजार नामोंसे अधिक रामनाम

ध्यायंश्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् ॥ वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक् च भगोदयात् ॥ ५२ ॥ कृत्वा संध्यादिकं कर्म तथा संतर्प्य चाखिलान् ॥ व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥ ५३ ॥ रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम् ॥ विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥ ५४ ॥ तेभ्यश्चानंतनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम् ॥ तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम् ॥ ५५ ॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरंतरम् ॥ धर्मानेतान् कुरु व्याध यावदामरणांतिकम् ॥ ५६ ॥ ततस्ते भविता जन्म वाल्मीकस्य ऋषेः कुले ॥ वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि ॥ ५७ ॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥ व्याधोपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

है ॥ ५५ ॥ इससे हे व्याध ! तुम निरन्तर रामनामका जप करो और हे व्याध ! मरणपर्यन्त अर्थात् जबतक जियो तबतक इन वैशाखधर्मोंको करते रहो ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तुमारा जन्म वाल्मीकऋषिके कुलमें हो और वाल्मीक यह नाम पृथ्वीपर प्रसिद्ध हो ॥ ५७ ॥ ऐसे उस व्याधको समझाकर आप दक्षिण दिशाको

चले गये. व्याधभी मुनिकी परिक्रमा कर वारंवार प्रणाम कर ॥ ५८ ॥ कुछ दूरतक पीछे चला गया. फिर मुनिके विरहसे आतुर हो, रुदन करने लगा और जबतक नेत्रोंसे दिखाई दिये, तबतक मुनिकी चालको देखता रहा ॥ ५९ ॥ फिर बडी कठिनतासे रुका और शंखमुनिका अपने मनमें ध्यान करता हुआ, वनको निर्मल कर मार्गमें प्याऊ लगादिया ॥ ६० ॥ इन वैशाखोक्त धर्मोंको अतियोग्यताके साथ करता रहा और वनके कैथ, कटहर, जामुन, आम आदि फलोंसे ॥ ६१ ॥

किंचिद्दूरानुगो भूत्वा स रुदन् विरहातुरः ॥ यावद्दृष्टिपथं तावत् पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥५९॥ पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिंतयन् ॥ वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥ ६० ॥ अतियोग्यानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तांश्चकार ह ॥ वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बुचूतादिभिः फलैः ॥ ६१ ॥ मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं पर्यकल्पयत् ॥ उपानद्भिश्चंदनैश्च छत्रैश्च व्यजनैरपि ॥ ६२ ॥ वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित् क्वचित् ॥ आजहार च पांथानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा ॥ ६३ ॥ प्रातः स्नात्वा दिवा रात्रं जपन् रामेति वै मनुम् ॥ व्याधजन्मनि नायासौ वाल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥ ६४ ॥ कृणुर्नाममुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे ॥ तपो वै दुस्तरं तेपे बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ ६५ ॥

थके हुये पथिक जनोंकी सेवा ( आहार आदि ) शुश्रूषा करने लगा और जूता, चन्दन, छतरी, पंखा इन पदार्थोंके दानसे भी प्रसन्न किया ॥ ६२ ॥ कहीं २ वालूके बिछौना और छाया आदिसे पसीना आये हुये पथिक जनोंकी थकावटको दूर करने लगा ॥ ६३ ॥ प्रातःसमय स्नान कर दिनरात भगवान्के नामका जप करता हुआ, व्याधके जन्मको पूरा करके वल्मीकके घर जन्म लेके उसका पुत्र हुआ ॥ ६४ ॥ उसी सरोवरमें कोई कृणु नाम मुनि कठिन तप कर रहे थे. बाहरके सब काम ऋषिने त्याग

दिये थे ॥६५॥ मुनिके शरीरपर बहुत समय बीत जानेके कारण बांबी बनगई थी. इसीसे मुनिवरको वाल्मीक कहने लगे ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! फिर तपके अन्तमें जब कुणपक्षिके कानमें प्रियोंके मधुर शब्द सुनाई देने लगे, तब मुनिका मन जलायमान हुआ ॥ ६७ ॥ और एक भील जातिकी स्त्रीको लाकर उसमें एक पुत्र उत्पन्न किया, जो भुवनोंमें महायशस्वी वाल्मीकि नामसे विख्यात हुआ ॥ ६८ ॥ जिस मुनिने अपने प्रबन्धसे मनोहर छन्दमें दिव्य रामकथा संसारमें प्रसिद्ध करी; जो रामकथा सब कर्म-

वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा ॥ वाल्मीक इति तं प्राहुस्ततो वै मुनिपुंगवम् ॥ ६६ ॥ पश्चात्तपोविरामांते कुणौ स्मृतिपथं गते ॥ स्त्रियो वै स्मरता राजन् स्खलितं चेंद्रियं मुनेः ॥ ६७ ॥ जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः ॥ वाल्मीकिरिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ॥ ६८ ॥ यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः प्रबंधैर्मनोहरैः ॥ लोके प्रख्यापयामास कर्मबंधनिकृंतनीम् ॥ ६९ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूप लघ्वपि भूरिदम् ॥ व्याधोप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥ ७० ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैथिल उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके ॥ कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः ॥ १ ॥

बन्धनोंको काटनेवाली है ॥ ६९ ॥ श्रुतदेवजी बोले-" हे राजन् ! वैशाखके माहात्म्यको देखो कि थोडे दानसे भी बहुत फल प्राप्त होता है. व्याध होनेपरभी केवल जूतेका जोडा देनेसेही दुर्लभ ऋषिपदवीको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ जो इस पापनाशक रोमहर्षण आख्यानको सुनता और सुनाता है, उसका जन्म फिर इस संसारमें नहीं होता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ ॥ मैथिल राजाने पूछा-" हे ब्रह्मन् ! वैशाख-

मासमें कौन तिथियां अधिक पुण्य देनेवाली हैं ? उनमे कौन कौन दान देनेसे विशेषतासे शुभ फल प्राप्त होता हैं ॥ १ ॥ वे लोकमें किसने प्रसिद्ध करी है ? यह विस्तरपूर्वक आप कहिये. " यह सुन श्रुतदेवजी बोले–" वैशाखमें मेषके सूर्य होनेपर तीसौ तिथियां पुण्य देनेवाली है ॥ २ ॥ एक एक तिथिमें पुण्य करनेसे कोटिकोटिगुणा फल मिलता है. सब दानोंके करनेसे जो पुण्य होता है, सब तीर्थोंमें जानेसे जो फल प्राप्त होता है ॥३॥ वह फल वैशाखके एक एक तिथिमें स्नान, दान, तप, होम, देवपूजन,

कैः प्रख्याताश्चा वै लोके एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ त्रिंशच्चतिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवो ॥ २ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ सर्वदानेषु यत् पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत् फलम् ॥ ३ ॥ तत् फलं समवाप्नोति ह्येकैकस्यां जलाप्लुनः ॥ स्नानं दानं तपो होमो देवतार्चनसत्क्रियाः ॥ ४ ॥ कथायाः श्रवणं चैव सद्योमुक्तिविधायकम् ॥ रोगाद्युपहतो यस्तु दरिद्रेणापि पीडितः ॥ ५ ॥ श्रुत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥ ६ ॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्चात्महा स्मृतः ॥ जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥ ७ ॥ माधवो मनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः ॥ साधवश्च दयावंतः को न सेवेत माधवम् ॥ ८ ॥

सत्कर्म इनके करनेसे होता है ॥ ४ ॥ और कथाके सुननेसे शीघ्र मुक्ति प्राप्त होती है, तथा जो रोगआदिसे युक्त हो वा दरिद्रसे पीडित हो ॥५॥ वह मनुष्य इस पवित्र कथाक सुनकर कृतकृत्य हो जाता है और जो विना स्नान दान किये इन शुभ तिथियोंको व्यतीत करता है ॥ ६ ॥ वह गोघाती, कृतघ्न, पितृघाती और आत्मघाती होता है. क्यों कि, जलाशय अपने आधीन हैं और शरीरभी अपने आधीन है ॥ ७ ॥ माधव भगवान् मनसे सेवा करनेके योग्य है; यह काल उत्तम गुणवाला है और साधुजन दयावान्

होते हैं. तो ऐसे समयमें कौन माधवकी सेवा न करे ? अवश्य माधवभगवान्‌की सेवा ऐसे अवसरमें करनी चाहिये ॥ ८ ॥ दरिद्री, धनी, लंगडा, अंधा, नपुंसक, विधवा स्त्री तथा पुरुष इनकरके ॥९॥ और कुमार ( बालक ), युवा, वृद्ध, रोगसे पीडित सबहीको हे राजन् ! वैशाखमासके धर्म अतीव सुखसाध्य हैं ॥१०॥ वैशाखमास आनेपर इन शुभधर्मोंको करो. ऐसे अवसरको पाय धर्मोंकेविषे कौन यत्न नहीं करे ? इससे शुभ और धर्म नहीं हैं ॥११॥ जो नराधम इन अति सुलभ धर्मोंको नहीं करता है, उसको सहजही

दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पंगुभिश्चांधकैस्तथा ॥ षंढैश्च विधवाभिश्च नारीभिश्च नरैस्तथा ॥ ९ ॥ कुमारयुववृद्धैश्च रोगार्तैरपि भूमिप ! ॥ अतीव सुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥ १० ॥ मासमेनमनुप्राप्य धर्मान् कुरु इमान् शुभान् ॥ को न यत्नं च कुरुते तस्मात् कोन्वपरः शुभः ॥ ११ ॥ योऽतीव सुलभान् धर्मान्न करोति नराधमः ॥ तस्यैव सुलभा लोका नरका नात्र संशयः ॥ १२ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि तस्मिन् मासे नृपोत्तम ॥ तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥ १३ ॥ चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ पापघ्नी पितृदैवत्या गया कोटिफलप्रदा ॥ १४ ॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी ॥ नरकं पितृनुद्दिश्य सावर्णौ शासति क्षितिम् ॥ १५ ॥

नरक मिलनेमें सन्देह नहीं है ॥ १२॥ हे नृपोत्तम ! अब मैं इस मासमें उस पापनाशिनी तिथिको वर्णन करता हूं. जैसे, दहीमेंसे साररूप माखन निकाल लिया जाता है, वैसेही उत्तम फल देनेवाली तिथिको कहता हूं ॥ १३॥ चैत्रमासमें मेषराशिपर सूर्य स्थित हो, तब महापुण्या जो अमावास्या वह सब पापोंका नाश करनेवाली है. कोटि गया करनेके फलको देती है ॥१४॥ यह पितरोंकी एक पुरानी गाथा सुनी जाती है. पृथ्वीपर जब सावर्णि मनुका राज्य था, तबकी नरक और पितरोंके संबंधकी यह पवित्र कथा है ॥१५॥

तीसवें कलियुगके अन्तमें जब सब धर्म नष्ट हो गये, उस समय आनर्त देशमें धर्मवर्ण नामवाला एक ब्राह्मण था ॥ १६ ॥ उस मुनिने घोर कलियुगमें मनुष्योंको पापसे युक्त देखा. उसी कलियुगके पहले चरणमें जब मनुष्य वर्णधर्मसे रहित हो गये ॥ १७ ॥ तब एकदिन यह मुनिजी महात्मा मुनियोंके सत्रयज्ञके दर्शन करनेको पुष्कर क्षेत्रमें आकर प्राप्त हुये. अनेक मौनधारी मुनि सत्रयज्ञ कर रहे थे ॥१८॥ वहां ऋषि लोग शास्त्रविहित पुण्यकथाओंको कह रहे थे, उनमेंसे कोई महान् महान् व्रत धारण करने वाले मुनि कलियुगकी

त्रिंशत्कलियुगस्यांते सर्वधर्मविवर्जिते ॥ आनर्ते तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा कलियुगे घोरे जनान् पापरतान् मुनिः ॥ तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते ॥ १७ ॥ स कदाचित् सत्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् ॥ अगमत् पुष्करेक्षेत्रे कुर्वतां मौनधारिणाम् ॥ १८ ॥ तत्र चासन् पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः ॥ तत्र केचित् कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥ १९ ॥ कृते यद्वत्सरात् साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ॥ त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥ २० ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ॥ अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥ २१ ॥ दयापुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते ॥ दयादानं च कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम् ॥ २२ ॥

प्रशंसा करने लगे ॥ १९ ॥ कि सतयुगमें वर्षभर पुण्य करनेसे माधव भगवान् प्रसन्न होते हैं. त्रेतामें एक मासभरमें, द्वापरमें एक पक्षभरमें माधवभगवान् प्रसन्न होते हैं ॥२०॥ हे राजन्! उससे दशगुना पुण्य कलियुगमें विष्णुके स्मरणसे होता है. बहुत थोडा किया हुआभी पुण्य कलियुगमें करोड गुणा फल देता है॥२१॥जो दया और पुण्य इनसे हीन और दान-

श्रमसे रहित हैं, वे दयादान न करें, परन्तु केवल हरिका नाम एक एकवार उच्चारण करें ॥२२॥ जो अकालमें अन्नदान करता है, वह वैकुंठको जाकर प्राप्त होता है. जब यह प्रसंग हो रहा था, उसीसमय वहां नारदमुनि आकर प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ और एक हाथसे शिश्न, एक हाथसे जिह्वाको पकडकर मुनिवर नारदजी हंसते हुये उन्मत्तके समान वहां नाचने लगे ॥ २४ ॥ तब उस सभाके लोग बोले–"हे नारदमुने ! यह क्या चलाया है ?" तब बुद्धिवान् नारदजी हंसते और नाचते हुये उन सब सभ्योंके प्रति बोले ॥२५॥

स एव चोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षेचान्नदस्तथा ॥ एतत्प्रसंगावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥ २३ ॥ करेणैकेन शिश्नं च जिव्हां चैकेन वै हसन् ॥ प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः किमेतदिति नारद ! ॥ प्रत्युवाच स तान् सर्वान्नृत्यं कुर्वन् हसन् सुधीः ॥ २५ ॥ संतोषाद्यदिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः ॥ सिद्धा वयं न संदेहः पुण्योऽयं कलिरागतः ॥ २६ ॥ तत् सत्यं न च संदेहो बहु स्वल्पेन साध्यते ॥ स्मरणात्तोषमायाति केशवः क्लेशनाशनः ॥ २७ ॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं ध्रुवम् ॥ शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा ! जिव्हाया अपि नित्यशः ॥ २८ ॥ द्वयं यस्य वशे भूयात् स एव स्याज्जनार्दनः ॥ भवद्भिर्नात्र स्थातव्यं तस्मात् कलियुगागमे ॥ २९ ॥

" भवितात्माओंने सन्तोषपूर्वक नृत्य करते हुये जो कहा है, उससे हम सिद्ध हो गये हैं, निस्सन्देह यह पुण्यरूप कलियुग आकर प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥ यह सत्य है और इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, कि बहुत थोडे परिश्रमसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है, क्लेशहारी केशवभगवान् स्मरणमात्रसेही प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २७ ॥ तथापि हम कहते हैं कि हे पुत्रो ! शिश्न और जिह्वा इन दोनोंका निग्रह करना बहुत कठिन है ॥ २८ ॥ जिसके वशमें शिश्न और जिह्वा है वही जनार्दनके समान है. इसकारण, कलियुगके आगमनमें

आप लोगोंको यहां ठहरना उचित नही है ॥ २९ ॥ इस पाखंडमय भारतको छोडकर सुखपूर्वक अन्यत्र विचरौ, जिस किसी देशमें जंहां तुमारा मन प्रसन्न रहै, वहां जाकर वास करौ " ॥ ३० ॥ यह नारदवचन सुनकर व्रत धारण करनेवाले मुनिगण सत्रयज्ञको समाप्त कर सुखपूर्वक सहसा वहांसे चले गये ॥३१॥ धर्मवर्णनेभी यह सुनकर भूमिको त्याग देनेका विचार किया. व्रतधारी तेजवान् दंडकमंडलू धारण कर ॥ ३२ ॥ जटा और वल्कलवस्त्रधारी मनमें विस्मय करता हुआ कलियुगमें अनाचारोंको देखनेके अर्थ

पाखंडं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् ॥ यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति ॥ ३० ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥ सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथासुखम् ॥ ३१ ॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनो दधे ॥ सव्रतं चोर्ध्वतेजस्कं धृत्वा दंडकमंडलू ॥ ३२ ॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः ॥ कलौ युगे त्वनाचारान् द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यज्जनान् घोरान् पापाचाररतान् खलान् ॥ पाखंडिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्रजिनस्तथा ॥ ३४ ॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा ॥ भृत्यश्च स्वामिहंता च पुत्रः पितृवधे रतः ॥ ३५ ॥ शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः ॥ गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥ ३६ ॥

जाता हुआ ॥ ३३ ॥ वहां देखा कि मनुष्य घोर पाप करनेमें तत्पर हैं, स्वभाव दुष्ट हो गया है, सब द्विज ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ) और शूद्र तथा संन्यासी पाखंडी हो गये हैं ॥३४॥ स्त्री अपने पतिसे विरोध करती है; तथा शिष्य अपने गुरुसे द्रोह करता है. सेवक स्वामीको और पुत्र पिताके मारनेमें तत्पर है ॥ ३५ ॥ सब द्विज शूद्र-

समान हो रहे हैं; गौवें बकरीके तुल्य हो गईं, वेद कहानीके समान हैं. तथा वेदोक्त शुभकर्म साधारण कर्म हो गये हैं ॥ ३६ ॥ भूत-प्रेत-पिशाच आदि देवतारूपसे फल-दायक हो रहे हैं; पापीलोग श्रद्धासे इन्हींका पूजन कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ सब कुकर्ममें आसक्त हैं और कुकर्मकेलिये अपना प्राणत्याग कर देते हैं. झूंठी साखी (गवाही) देते हैं और मनमें सदा कपट रखते हैं ॥ ३८ ॥ एक विचार मनका, एक वाणीका, एक कर्मका, सदा कलियुगमें देखा. इस प्रकार सबकी पाखंडमयी विद्याही राजमंदिरमें प्रतिष्ठा

भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः ॥ ता एव श्रद्धयार्चंति जनाः पापरताः खलाः ॥ ३७ ॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्त-जीविताः ॥ कूटसाक्षिप्रवक्तारः सदा कितवमानसाः ॥ ३८ ॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ ॥ सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमंदिरे ॥ ३९ ॥ गीताद्याश्च कला विद्या नृपाणां च प्रियावहाः ॥ हीनाश्च पूज्यतां याति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥ ४० ॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे ॥ विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते ॥ ४१ ॥ प्रायः पाखंडभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥ शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तापसाः कलौ ॥ ४२ ॥ सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः ॥ सर्वे धर्मप्रव-क्तारः सर्वे च ग्रहणोत्सवाः ॥ ४३ ॥

पाती है ॥ ३९ ॥ गीतआदि कलाविद्यायें राजाओंको प्यारी लगती हैं. कलियुगमें नीचजन पूज्य होगये, उत्तम मनुष्य नीच हो गये ॥ ४० ॥ वेदपाठी सब ब्राह्मण कलियुगमें दरिद्री हो रहे हैं, मनुष्योंके हृदयसे विष्णुभगवान्‌की भक्ति जाती रही है ॥ ४१ ॥ पुण्यक्षेत्रोंमें प्रायः पाखंड भर गया है; शूद्रलोग धर्मोपदेश करने लगे हैं. कलियुगमें जटाधारीही तपस्वी हैं ॥ ४२ ॥ सब मनुष्य अल्पायु, दयाहीन और शठ हो गये हैं; सबही धर्मवक्ता बन गये और सबही उत्साहरहित हो रहे हैं ॥ ४३ ॥

और अपनीही पूजा चाहते है, वृथा निन्दामें लगे रहते हैं. बहुतेरे ऐसे हैं कि स्वामीके घर चले जानेपर उसकी निन्दा करते हैं ॥ ४४ ॥ भाई बहिनसे और पिता पुत्रीसे संगम करते हैं तथा कलियुगमें सबही शूद्रा और वेश्याओंमें मन डुला रहे है ॥ ४५ ॥ साधुजनोंकी अवज्ञा करते हैं. पापी जनोंका सन्मान करते हैं. साधुओंमें एक दोष होनेपरभी प्रगट करते हैं ॥ ४६ ॥ पापियोंके दोषोंको गुण समझकर बखान करते हैं. निर्गुणी जन कलियुगमें दोषहीको ग्रहण करते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे, स्तनमें लगी

स्वार्चनं चापि हीच्छंति वृथा निंदापरायणाः ॥ असूयानिरताः सर्वे परे प्रभौ गृहं गते ॥ ४४ ॥ भ्राता च भगिनीगंतो पिता पुत्रीं च वै कलौ ॥ सर्वेऽपि शूद्रीनिरताः सर्वे वारांगनारताः ॥ ४५ ॥ साधूंनैव विजानंति बहुपापांश्च मन्यते ॥ व्यक्तीकुर्वंति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥ ४६ ॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदंति हि ॥ दोषमेव प्रगृह्णंति कलौ तु विगुणा जनाः ॥ ४७ ॥ जलूकस्तनसंयुक्तो रक्तं पिबति नो पयः ॥ ओषध्यः सत्वहीना हि ऋतूनां व्यत्ययास्तथा ॥ ४८ ॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या काले न सूयते ॥ नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमंतो नराः कलौ ॥ ४९ ॥ वेदवेदांतविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः ॥ भूतान् पश्यंति तान् मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिलाशिषः ॥ ५० ॥

हुई जोंक केवल रुधिरहीका पान करती है, दूध नहीं पीती है. औषधियां सत्वहीन हो गई. ऋतुओंका उलट पलट हो गया तथा ॥ ४८ ॥ सब राज्यभरमें अकाल पडता है. कन्याके पुत्र उत्पन्न होता है. है. कलियुगमें मनुष्य नट और नृत्यविद्यामें प्रेम करते है ॥ ४९ ॥ वेदवेदांतविद्याके प्रेमी और अधिक गुणवालोंको मूढलोग सेवकके समान देखते इसप्रकार ये सब मूढ सर्वमंगलोंसे भ्रष्ट हो रहे हैं ॥ ५० ॥

श्राद्ध आदि कर्म और वेदोक्त कर्म सबने परित्याग कर दिये हैं. विष्णुभगवानका नाम जीभसे कभी उच्चारण नहीं करते. शृंगाररसमें सब मग्न हो रहे हैं और उसीप्रकारके गीत गाते हैं ॥ ५१ ॥ न विष्णुकी सेवा करते हैं, न शास्त्रवार्ता उनको अच्छी लगती है, न योगकी दीक्षा लेते हैं, न कुछ विचार करते हैं, न तीर्थयात्रा करते हैं, न दानधर्म करते हैं. इसप्रकार कलियुगी मनुष्योंकी विचित्र गति है ॥ ५२ ॥ उनको देखकर धर्मवर्णभी बहुत डर गया और विस्मयको प्राप्त हुआ.

त्यक्तश्रद्धाक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदोदितक्रियाः ॥ जिव्हायां विष्णुनामानि न वर्तंते कदाचन ॥ शृंगाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः ॥
॥ ५१ ॥ न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न योगदीक्षा न विचारलेशः ॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वापि बभूव चित्रम्
॥५२॥ तान् दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यंतविस्मितः ॥ वंशं पापात् क्षयं यातं दृष्ट्वा द्वीपांतरं ययौ ॥ ५३ ॥ स चरन् सर्वद्वीपेषु लो-
केष्वेव तु सर्वशः ॥५४॥ पितृलोकं ययौ धीमान् कदाचित् कौतुकान्वितः ॥ तत्रापश्यन्महाघोरान् भ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः ॥ ५५ ॥
धावतो रुद्‌मानांश्च पततः पातितानपि ॥ तत्रापश्यच्चान्धकूपे पतितान् स्वान् पितॄनथ ॥५६॥ दूर्वाग्रलंबिनो दीनान् दूर्वाच्छेदं हि
शंकितान् ॥ तदाखुः खादयत्यद्धा दूर्वामूलं तदाश्रयम् ॥ ५७ ॥

देशको पापसे नष्ट होता देखकर द्वीपांतरको जाय ॥ ५३ ॥ सब द्वीप और लोकोंमें विचरता हुआ ॥ ५४ ॥ वह बुद्धिवान् पितृलोकको गया. वहां आश्चर्ययुक्त होता हुआ यह देखा कि महाघोर कर्मोद्वारा भ्रमण करते हुये ॥ ५५ ॥ दौडते रोते और गिरते हुये अन्धकूपमें गिरे हुये अपनेही पितर नरकमें देखे ॥ ५६ ॥ उसमें कोई दूबके सहारे लटं

है और दूबके उखडने अथवा टूटनेसे शंकित हो रहे हैं और उनके आश्रयवाली दूबकी जडको मूषक क्तर रहे हैं ॥ ५७ ॥ उस दूबसे तीन भाग मूषकने करत डाले। एक भाग शेष रहा, उसको देखकर वे दुःखसे दुर्बल हो रहे हैं ॥ ५८ ॥ नीचे अधकूपको देखकर जो अतिभयानक दुर्गम महाघोर कर्मोसे प्राप्त दुखोसे पीडित होकर पडे हैं ॥ ५९ ॥ आगेकी ओर यह कूप दुर्गम है, जिसमें कुछ अवलंब नहीं. उन पितरोंको देख विस्मित हो दयाभावसे धर्मवर्णमुनि कहने लगे ॥ ६० ॥ " तुम लोग कौन

तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः ॥ तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाण-मूलं दुःखेन कर्शिताः ॥ ५८ ॥ अधो दृष्ट्वा चांधकूपं पटपातातिभीषणम् ॥ दुरुत्तरं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः ॥५९॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलंबविवर्जितम् ॥ तान् दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन् केन दुस्तरकर्मणा ॥ कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वो मुक्तिरूर्जिता ॥ ६१ ॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोद्य भविष्यति ॥ इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथ सुदुःखिताः ॥ ६२ ॥ तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ॥ पितर ऊचुः ॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि संतानवर्जिताः ॥ ६३ ॥ पिंडश्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् ॥ निःसंतानोपि नो वंशो जातः पापैः कलौ युगे ॥ ६४ ॥

हो ? किस दुस्तरकर्मसे यहां पडे हो ? कौन गात्रेमें उत्पन्न हुये हो ? तुमारी मुक्ति कैसे होगी ? ॥ ६१ ॥ यह तुम मुझसे कहो. आजही तुमारा कल्याण होगा. " धर्मवर्णने जब इसप्रकार पूछा, तब दुःखसे व्याकुल पितरलोग प्रसन्न हो ॥ ६२ ॥ धर्म और वेदको आगे कर दीनवाणीसे बोले. पितर कहने लगे-" हम श्रीवत्सगोत्रीय है. पृथ्वीपर सन्तानसे, रहित है ॥ ६३ ॥ पिडश्राद्धसे रहित हैं, इसीसे हम दुःख भोग रहे हैं. कलियुगमें पापोंके कारण, हमारा वंश निःसंतान रहा ॥ ६४ ॥

हमारा वंश पापसे क्षय हो गया. हमको पिंड देनेवाला कोई नहीं है. इसीसे हम दुरात्मा अंधकूपमें पडे हैं ॥ ६५ ॥ हमारे वंशमें एक महायशस्वी धर्मवर्णही रह गया है. परंतु वह विरक्त हुआ विचरता है. उसने गृहस्थ होनेकी इच्छा नहीं की ॥ ६६ ॥ दूर्वाका तंतुरूप वही है, जिसको पकडकर हमलोग लटक रहे हैं. वहां तंतुहीन है, इसीसे उसकी जडको मूषक प्रतिदिन कतर रहा है ॥ ६७ ॥ अकेला वही बचा है, इसीसे थोडीसी शेष है. हे सौम्य ! उसको भी देखो, मूषक कतर रहा है ॥ ६८ ॥ हे

नास्माकं पिंडदश्चारित वंशे पापात्र क्षयं गते ॥ तेनांधकूपे पतनं निस्तंतूनां दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः ॥ स विरक्तश्चरत्येको न गार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥ ६६ ॥ तंतुना तेन विश्रामो दूर्वानालविलंबिताः ॥ निस्तंतुत्वाच्च तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥ ६७ ॥ एकस्यैवावशिष्टत्वात् किंचिन्मूलावशेषितः ॥ आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥ ६८ ॥ तस्य चायुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति ॥ पश्चात् कूपे पतिष्यामो दुस्तारेऽधतामसे ॥ ६९ ॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय ॥ अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥ ७० ॥ पितरस्ते भृशार्ता हि नरके पातिता मया ॥ अंधकूपे दुस्तारे दृष्टा दूर्वावलंबिताः ॥ ७१ ॥

तात ! उसकी आयु क्षीण हो जानेपर दूर्वाका शेष भाग मूषक कतर डालेगा और हम इस दुर्गम अंधकूपमें गिर पडेंगे ॥ ६९ ॥ इसकारण, तुम भूमिपर जाकर धर्मवर्णको समझा देना. उस गृहस्थधर्मसे विमुख मुनिको हमारे दीन वाक्योंद्वारा समझाकर कह देना ॥ ७० ॥ कि तुमारे पितर महादुःखित दुर्गम अंधकूपमें पडे हुये हमने देखे हैं. केवल एक दूबके सहारेसे लटक रहे हैं ॥ ७१ ॥

हे मुने ! यह वंशरूपी दूब है; इसकी जडको कालरूपी मूषक प्रतिदिन कतरता है ॥ ७२ ॥ इसी क्रमसे सब वंशनाश हो गया. एक तुमही शेष रहे हो. हे मुने ! कालरूप मूषकसे इस दूबके तीन भाग नष्ट हो गये हैं ॥ ७३ ॥ एक भाग तुम पृथ्वीपर शेष रह गये हो, सो थोडा थोडा मूषक कतर रहा है. तुमारी आयु प्रतिदिन क्षीण हो रही है ॥ ७४ ॥ तुमारी आयु बीत जानेपर और संतानके क्षय हो जानेपर हम और तुम सब अंधतामिस्र कूपमें पडेंगे ॥ ७५ ॥ इसकारण, गृहस्थधर्म

सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततं मुने ! ॥ कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥ ७२ ॥ वंशनाशानुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः ॥ तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टभागत्रयं मुने ! ॥ ७३ ॥ एकोभागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि ॥ किंचित् खादति वै त्वाखुस्तव चायुःक्षयः क्रमात् ॥ ७४ ॥ परेते त्वयि चास्माकं तवापि पतनं भवेत् ॥ कूप एवांधतामिस्रे संतानेऽपि क्षयंगते ॥ ७५ ॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु संततिवर्द्धनम् ॥ तेनास्माकं तवापि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥ ७६ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वा ऽश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ७७ ॥ यद्येकोपि च वैशाखे मासे वा कार्तिकेऽपि वा ॥ अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥ ७८ ॥

धारणकर संततिकी वृद्धि करौ, इसीसे हमको ऊर्ध्वगति मिलेगी; इसमें संशय नहीं है ॥ ७६ ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करना उचित है. उनमे एकभी गयाको जाय अथवा अश्वमेध यज्ञ करै वा नीलरंगका सांड छोडै ॥ ७७ ॥ तथा एकभी उनमेंसे वैशाखमाघ अथवा कार्तिकमासमें हमारे निमित्त स्नान–श्राद्ध–दान करैगा ॥ ७८ ॥

उससे हमको ऊर्ध्वगति प्राप्त होगी और नरकोंसे उद्धार होगा. अथवा एकभी विष्णुभक्त ( वैष्णव ) हो अथवा कोई एकभी एकादशीव्रत करनेवाला हो ॥ ७९ ॥ अथवा एकभी विष्णुभगवानकी पापनाश करनेवाली कथा सुने उसके पूर्व बीतेहुये सौ कुल और आगे होनेवाले सौ कुल ॥ ८० ॥ उनमें कोईभी पापी हो तो वह नरकका दर्शन नहीं करता है. और बहुतसे दयाधर्मसे रहित पुत्रोंके होनेसे क्या है ? ॥ ८१ ॥ जिस कुलमें उत्पन्न प्राणी विष्णुनारायणकी पूजा नहीं करते हैं

तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः ॥ एको वा विष्णुभक्तः स्यादेको वा हरिवासरी ॥ ७९ ॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशनीम् ॥ तस्यातीतं कुलशतं भावि चापि कुलं शतम् ॥८०॥ अपि पापवृतं क्वापि नरकं नैव पश्यति ॥ किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ॥८१॥ ये जीवा नार्चयंत्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले ॥ नापुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः ॥८२॥ तत्रापि च दयायुक्तं तत्र संतानं च दुर्लभम् ॥ इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ॥ ८३ ॥ विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु ॥ पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ॥ ८४ ॥ प्रणम्य प्रांजलिः प्राह रुदन् वै जातवेपथुः ॥ नाम्नाहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही ॥ ८५ ॥

उन पुत्रोंके होनेसेभी लोकमें कुछ फल नहीं होता है. यह सब जानते हैं ॥ ८२ ॥ तहांभी दयाधर्मसे युक्त सन्तान दुर्लभ है. इसप्रकार उसको सत्य वाक्योंसे समझाकर ॥ ८३ ॥ विरक्त और ऊर्ध्वरेता धर्मवर्णको गृहस्थधर्ममें आनेकी मति करो." पितरोंका यह वचन सुनकर धर्म अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ और हाथ जोड प्रणाम कर रोता हुआ कांपकर बोला कि—" मैंही तुम्हारा वंशधर दुराग्रही धर्मवर्ण हूं ॥ ८५ ॥

यज्ञमें महात्मा नारदका वचन सुनकर कि कलियुगमें जिह्वा और शिश्न किसीकेभी वशमें नहीं हैं ॥ ८६ ॥ पृथ्वीपर पापियोको देखकर उन जनोंसे शंकायुक्त होकर और दुर्जनोंकी संगतिसे डरकर द्वीपान्तरमे विचरता और ठहरता हुआ ॥ ८७ ॥ इस कलियुगके तीन चरण बिताये; अब तीन चरण कलियुगके बीत गये और अंतवाले चौथे चरणमेंभी इस समय हे पितरो ! साढेतीन भाग व्यतीत होगये है ॥ ८८ ॥ हमने आपका दुःख नहीं जाना; हमारा जन्म वृथाही गया. जिस कुलमें मै

सत्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ॥ जिव्हादार्ढ्यं गुह्यदार्ढ्यं न कस्यापि कलौ युगे ॥ ८६ ॥ दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्तान् जनानपि शंकितः ॥ भीतो दुर्जनसंगत्या चरन् द्वीपांतरे वसन् ॥ ८७ ॥ पादास्त्रयो गता ह्यस्य कलेः पादेऽतिमेऽपि च ॥ गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥ ८८ ॥ नाहं वेद्मि भवद्दुःखं वृथा जन्म गतं मम ॥ यस्मिन् कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वै हृतम् ॥८९॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा ॥ यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन् देवानृषींस्तथा ॥ ९० ॥ युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाज्ञापयत क्षितौ ॥ यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥ ९१ ॥ कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले ॥ इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥ ९२ ॥

१४ उत्पन्न हुआ, उस कुलके पितरोंका ऋण दूर नहीं किया ॥ ८९ ॥ तो भूभाररूप अन्नशत्रु ऐसे मेरे जन्म लेनेमात्रसे क्या हुआ ? जो प्राणी विष्णुभगवान्का पूजन नहीं करै, तथा पितर, देवता और ऋषियोंकी पूजा नहीं करै, उसका जन्म संसारमें निष्फल है ॥ ९० ॥ मैं आपकी आज्ञा पालन करूंगा. परंतु आप यह आज्ञा करो कि पृथ्वीपर सांसारिक कर्तव्योंके करनेपर भी मुझको कलियुगी बाधा न हो ॥ ९१ ॥ और इस पृथ्वीपर कौनसे कौनसे कृत्य करने सोभी कहना. जब वगधर

नृहितार्थ धर्मवर्णन इसप्रकार कहा ॥ ९२ ॥ तब हे महीपते ! मनमें कुछ धीरज धरकर पितर बोले—" हे पुत्र ! देखो, तुमारे महात्मा पितरोंकी यह दशा है ॥ ९३ ॥ कि संततिके अभावसे गिर रहे हैं. केवल तृणके सहारेसे ठहर रहे हैं. तुम गृहस्थधर्ममें प्रवृत्त होकर संतान उत्पन्न कर हम लोगोंका उद्धार करो ॥ ९४ ॥ जे विष्णुकथा सुनते रहते हैं और जे रातदिन हरिका स्मरण करते हैं. तथा जे सदाचारमें तत्पर रहते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९५ ॥ हे मानद ! शालिग्रामशिला ( श्रीठाकुरजीकी मूर्ति ) जिसके घरमें रहती है, अथवा जिसके घरमें भारतकथा होती है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९६ ॥ विष्णुभगवान्‌को

किंचिद्दाश्वस्त मनस इदमूचुर्महीपते ! ॥ पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ संतत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलंबिनाम् ॥ त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य संतत्यास्मान् समुद्धर ॥ ९४ ॥ ये च विष्णुकथारक्ता ये स्मरंत्यनिशं हरिम् ॥ ये सदाचारनिरता न तान् वै बाधते कलिः ॥ ९५ ॥ शालिग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद ! ॥ अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥ ९६ ॥ विष्णोर्निवेदितान्नं च वर्तते यस्य चोदरे ॥ कर्णे वा तुलसीपत्रं न तं वै बाधते कलिः ॥ ९७ ॥ यत्करे तुलसीमाला यद्धस्ते च पवित्रकम् ॥ यज्जिह्वायां हरेर्नाम न तं वै बाधते कलिः ॥ ९८ ॥ यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः ॥ कार्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः ॥ ९९ ॥ प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः ॥ पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥ १०० ॥

निवेदन किया अन्न जिसके उदरमें वर्तमान है अथवा कानमें तुलसीदल रहता है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९७ ॥ जिसके हाथमें तुलसीकी माला है और जिसके हाथमें पवित्रक ( कुशा ) है, तथा जिसकी जीभपर हरिनाम है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९८ ॥ जो वैशाख और माघस्नानमें निरत रहता है और जो कार्तिकमें दीपदान करता है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ ९९ ॥ तथा जो विष्णुभगवान्‌की पापनाशिनी मोक्षदायिनी दिव्य कथाको सुनता है, ॥१००॥

उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ १०० ॥ जिसके घरमें वैश्वदेव होता है, जिसके घरमें तुलसीका निर्मल वृक्ष है, जिसके आंगनेमें सुन्दर गायकी सेवा होती है, उसको कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता है ॥ १०१ ॥ इसकारण, हे मानसपुत्र ! तुम पापात्मक युगमें भी घर जाओ. हे पुत्र ! यह माधवमास है ॥ १०२ ॥ सबके उपकारके निमित्त मेपकी संक्रांतिमें तीस पवित्र तिथि महापुण्यफलकी देनेवाली हैं ॥ १०३ ॥ एक एक तिथि ऐसी है कि उसमे पुण्य करनेसे कोटिगुणा फल प्राप्त होता है. उनमेभी

यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा ॥ यदंगणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः ॥ १०१ ॥ तस्मान्मानसपुत्र ! त्वं युगे पापात्मकेऽपि च ॥ शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र ! मासोऽयं माधवाह्वयः ॥ १०२ ॥ सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या महापुण्यप्रदायकाः ॥ १०३ ॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तत्रापि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥ १०४ ॥ प्रिया च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायिनो ॥ ये वै पितॄन् समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वंति तद्दिने ॥ १०५ ॥ सोदकुंभं पिंडदानं तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ये च कुर्वंति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ! ॥ १०६ ॥ तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत् ॥ यदि श्राद्धं मधौ दर्शे शाकेनापि करोति च ॥ १०७ ॥ कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः ॥ कुंभं च पानकैः पूर्णं कर्पूरागरुवासितम् ॥ १०८ ॥

चैत्रकी अमावास्या तो मनुष्योंको मुक्तिकी देनेवाली है ॥ १०४ ॥ पितर और देवताओंकी प्यारी और शीघ्र मुक्तिकी देनेवाली है. अमावास्याके दिन जो कोई पितरोंके निमित्त श्राद्ध करते हैं ॥ १०५ ॥ जलका घट और पिंडदान करते हैं, उनको अक्षय फल प्राप्त होता है. हे पुत्र ! जो चैत्रमासमें अमावास्याको श्राद्ध करते हैं ॥ १०६ ॥ गयाक्षेत्रमें उन कियाहुआ श्राद्ध करोडगुना फल देनेवाला होता है. मधुमासकी अमावसके दिन जो शाकसे भी श्राद्ध करता है ॥ १०७ ॥ उसको कोटि गयाश्राद्ध

करनेका फल निस्सन्देह प्राप्त होता है. कपूर और अगरुकी वाससे युक्त ऐसा जलसे पूर्ण घट ॥१०८॥ जो मधुमासकी अमावसको नहीं देता है वह निस्सन्देह पितृघाती है. जो मधुमासकी अमावसको पीनेके पदार्थसहित करीरका दान करता है ॥ १०९ ॥ और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है, तो वह अपने कुलका उद्धार करता है. तब पितृलोकमें अमृतवर्षिणी नदी ॥ ११० ॥ कुंभदानसे बहने लगती है. श्राद्धदानसे अन्न, दाल, घी, पूआ, लपसी, खीर आदि भोजनपदार्थोंकी प्राप्ति होती है. भावार्थ यह कि

यो न दद्यान्मधौ दर्शे सपितृघ्नो न संशयः ॥ यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ १०९ ॥ श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् ॥ पितृणां च तदा लोके नदी चामृतवर्षिणी ॥११०॥ कुंभदानात् प्रसरति श्राद्धदानाद्दिदायिनाम् ॥ अन्नसूपघृतापूपले-ह्यपायसकर्दमाम् ॥ १११ ॥ तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा चामा भविष्यति ॥ कुरु श्राद्धं पिंडदानं सोदकुंभं महामते ! ॥११२॥ रा-र्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय ॥ धर्मार्थकामैः संतुष्टः प्राप्य संतानमुत्तमम् ॥११३॥ पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसंचर ॥ इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥ ११४ ॥ चैत्रे मासि मेषसंस्थे पुण्ये तस्मिन् दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वा च संतर्प्य पितृन् देवानृषींस्तथा ॥ ११५ ॥

इन पदार्थोंमें जो दिया जाता है, वही तत्काल मिलता है ॥ १११ ॥ इसकारण, तुम शीघ्र जाओ. अमावससे पहले जाओगे तो जब अमावस होगी तब हे महामते ! श्राद्ध, पिंडदान और घटदान करना ॥ ११२ ॥ सबके उपकारके निमित्त गृहस्थ-आश्रममें जाय, धर्म-अर्थ काममें सन्तुष्ट हो, उत्तम सन्तान पाय ॥ ११३ ॥ फिर मुनिकी वृत्तिको धारण कर तुम सुखसे द्वीपमें विचरो." यह आज्ञा जब पितरोंने करी, तब धर्मवर्ण शीघ्र भूमिपर आकर प्राप्त हुआ ॥ ११४ ॥ चैत्रमासमें मेषकी संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल

स्नान कर पितर, देव तथा ऋषियोंका तर्पण किया ॥ ११५ ॥ जलपूर्ण घटपान तथा पापनाशक श्राद्धको करके उसने पितरोको आवागमनसे छुड़ानेवाली मुक्ति देके ॥११६॥ अपना विवाह किया, जिससे उत्तम संतान हुई और संसारमें उस पापनाशिनी तिथिको प्रसिद्ध किया ॥ ११७ ॥ फिर आप प्रसन्नतापूर्वक भक्तिसे गन्धमादनपर जाता हुआ. इसकारण, मधुमासकी अमावास्या यह परम पुण्या और शुभफल देनेवाली है ॥ ११८ ॥ संसारमें इसके समान कोई तिथि न देखी है, न

सोदकुंभं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् ॥ तेन दत्त्वा पितॄणां च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥११६ ॥ स्वयं विवाहमकरोत् संततिं प्राप्य वै सतीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं पापनाशिनीम् ॥११७ ॥ स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गंधमादनमाययौ ॥ तस्मात् पुण्यतमा चैषा मधोर्दर्शा शुभावहा ॥११८॥ नानया सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुताऽपि वा ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे ॥ १ ॥ ये कुर्वंति च तस्यां वै प्रातःस्नानं भगोदये ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यांति विष्णोः परं पदम् ॥ २ ॥ देवान् पितॄन् मुनीन् यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तेनाधीतं च तेनेष्टं तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥३॥

सुनी है ॥ ११९ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे पितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ श्रुतदेवजी बोले—अब आगे पापनाश करनेवाले अक्षय्यतृतीयामाहात्म्यको वर्णन करता हूं. वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी तृतीया 'अक्षय तृतीया' कहाती है ॥ १ ॥ उस अक्षयतृतीयाके दिन जो सूर्योदयकालमें प्रातःस्नान करते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परमपदको जाते हैं ॥ २ ॥ जो देव, पितर और ऋषियोंके

निमित्त तर्पण करे तो उसने वेदशास्त्र पढ लिये. यज्ञ कर लिये और उसने सौ श्राद्ध कर लिये ॥ ३ ॥ तथा जो मनुष्य मधुसूदन भगवान्की पूजा करके अक्षयतृतीयाके दिन कथा सुनते हैं, वे मनुष्य मुक्तिभाग् होते हैं ॥ ४ ॥ अक्षयतृतीयाके दिन जो मनुष्य मधुसूदनभगवान्की प्रीतिके अर्थ दान करते हैं, वे दान मधुसूदन भगवान्की आज्ञासे अक्षय फल देनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ देव, ऋषि और पितरोंकी यह अतिउत्तम फल देनेवाली तिथि है. इसमें सनातन धर्म करनेसे देव, ऋषि, पितर इन तीनोंकी

मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वंति ये नराः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां ते नरा मुक्तिभागिनः ॥ ४ ॥ ये दानं तत्र कुर्वंति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् ॥ तदक्षय्यं फलत्येव मधुशासनशासनात् ॥५॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा ॥ त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे सनातने ॥ ६॥ प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चासीत्तदप्यहम् ॥ वक्ष्यामि नृपशार्दूल ! सावधानमनाः शृणु ॥ ७ ॥ पुरा पुरंदरस्यासीद्युद्धं च बलिना सह ॥ देवानां चैव दैत्यानां द्वंद्वयुद्धमभूत्ततः ॥ ८ ॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् ॥ पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥ ९ ॥ तत्रापश्यत्स तत्पत्नीं गुर्विणीं मंदगामिनीम् ॥ चलच्छ्रोणितटाबद्धकांचिदाम्ना सुमंडिताम् ॥ १० ॥

तृप्ति होती है ॥ ६ ॥ इस तिथिकी प्रसिद्धि किस प्रकारसे हुई सो मैं कहता हूं, हे राजन् ! सावधानमनसे सुनो ॥ ७ ॥ पूर्वसमय इंद्रका, राजा बलिके साथ युद्ध हुआ. देवता और दैत्योंका द्वन्द्वयुद्ध हुआ ॥ ८ ॥ अनंतर इंद्र पातालतलवासी बलिको जीतकर फिर पृथ्वीपर आया और उतथ्यके आश्रमको गया ॥ ९ ॥ वहाँ उतथ्यकी

मन्दगामिनी गर्भिणी स्त्रीको देखा जिसके कटिप्रदेशमें सुवर्णके सूत्रमें बंधी हुई किंकिणी सुशोभित हो रही ॥ १० ॥ कंकणोंकी झनकारने मदोन्मत्त भ्रमर और कोकिलाओंके शब्दको जीत लिया. अनेक प्रकारके वस्त्र धारण किये. मधुर वाणी और मन्द मुसक्यानसे शोभाको प्राप्त हो रही थी ॥ ११ ॥ कुंभस्थल और सुंदर कुचोंकरके सुशोभित हो रही, विकसित कमलसमान सुंदरमुखवाली और नीलकमलके तद्वत् सुन्दरनेत्रवाली ॥ १२ ॥ केतकीके उदरके समान मनोहर गंडस्थलवाली, श्रमसे साँस भरती हुई दीनाक्षी पर्णशालाकी ओर मुख किये हुये ॥ १३ ॥ शय्यापर शयन करती हुई. ऐसी ऋषिपत्नीको देखकर इंद्र मोहित हो गया और बलात्कारसे उस गर्भिणी स्त्रीसे संग

क्वणत्कंकणनिर्घोषजितमत्तालिकोकिलाम् ॥ वल्गुचित्रांबरां राम मंजुवाचां सुविस्मिताम् ॥ ११ ॥ लसत्कुंभस्थलाभ्यां च कुचाभ्या-
मुपशोभिताम् ॥ हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥ १२ ॥ केतक्युदरपांडुभ्यां गंडाभ्यां च मनोरमाम् ॥ श्रमोच्छ्वसंतीं दीनाक्षीं
पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥ १३ ॥ स्वपंतीं शयने क्वापि तां दृष्ट्वा मोहमागमत् ॥ बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥ १४ ॥ ग-
र्भस्थस्तु तदा पिंडः स्वस्य पातविशंकया ॥ छादयामास वै योनिद्वारं पादेन दुःखितः ॥ १५ ॥ ततश्च स्कंदवीर्यं तद्भूमावेव बलद्विषः ॥
गर्भस्थाय चुकोपासौ भगवान् पाकशासनः ॥ १६ ॥ तं शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रांतलोचनः ॥ जात्यंधो भव दुर्बुद्धे मावमंस्था यतः
पदा ॥ १७ ॥ प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतमाह्वयः ॥ पदा प्रस्कंदिताद्वीर्याज्जयंतः समजायत ॥ १८ ॥

भोग करने लगा ॥ १४ ॥ तब गर्भस्थपिंडने अपने गिरनेकी शंकासे दुःखित होकर अपने पाँवसे योनिका द्वार रोक लिया ॥ १५ ॥ तब इंद्रका वीर्य भूमीपर गिर पडा और गर्भस्थ शिशुपर इंद्रको बहुत क्रोध आ गया ॥ १६ ॥ मारे रोषके लाल लाल नेत्र करके उस गर्भस्थको यह शाप दिया कि–' हे दुर्बुद्धे ! तुमने वीर्य ठहरने नहीं दिया, इससे जन्मान्ध हो जाओ. ' पांवसे ॥ १७ ॥ योनिका द्वार रोकनेसे दीर्घतमाह्व पाँवोंद्वारा वीर्यके संचरणसे जयंत समान होता हुआ ॥ १८ ॥

तदनंतर इंद्र उतथ्य ऋषिके शापसे शंकित होकर वहाँसे शीघ्र चला गया. इन्द्रको भागते देखकर सब शिष्य हँसने लगे ॥१९॥ तब इन्द्र लज्जित होकर सुमेरुपर्वतकी कन्दरामें जाय घुसा और वहाँ बैठकर उग्र तप करने लगा ॥ २० ॥ लाजके मारे जब इंद्र मेरुमें जाय घुसा तब, राजा बलि आदि दैत्य गुप्त दूतोंके द्वारा भेद जानकर ॥२१॥ देवताओंपर चढाई कर राजा बलि अमरावतीपुरीमें इन्द्र बन बैठा और शंबरादिक बलवान् दैत्यगण दिक्पालोंकी विभूति भोगने लगे ॥२२॥ स्वामीकरके हीन देवताओंके राज्यमें





पश्चादिंद्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशंकितः ॥ पलायंतं हरिं दृष्ट्वा जहसुर्बटवोऽखिलाः ॥१९॥ ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम् ॥ तत्र ली ·श्चचारासौ दुस्तरं वै तपो महत् ॥ २० ॥ मेरौ विलीय वसति देवेंद्रे लज्जयान्विते ॥ गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां दैतेया बलिपूर्वकाः ॥ २१ ॥ सुरानाक्रम्य बुभुजुर्बलींद्रश्चामरावतीम् ॥ दिक्पालानां विभूतीश्च शंबराद्या बलीयसः ॥ २२ ॥ बलात्सुभुजिरे हीननाथं राष्ट्रं दिवौकसाम् ॥ रक्षितारमजानंतो देवा ह्यग्निपुरोगमाः ॥२३॥ गत्वा तु धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् ॥ पप्रच्छुरिंद्रवृत्तांतं क्व च तिष्ठति नः प्रभुः ॥ २४ ॥ दैत्याक्रांतमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम् ॥ कुतो नायाति देवोऽसौ भूयान् कालो गतो विभो ॥ २५ ॥

बलपूर्वक राज्य करने लगे. तब अग्नि आदि देवता अपनी रक्षा करनेवालेको न जानकर ॥ २३ ॥ बृहस्पतिके समीप जाय :इन्द्रका वृत्तांत पूछने लगे कि–" हमारा प्रभु ( इन्द्र ) कहाँ रहता है ? ॥ २४ ॥ इन्द्रके बिना देवताओंकी इस राजधानीमें दैत्योंने आक्रमण किया है. हे विभो ! बहुत समय व्यतीत हो गया. इन्द्र क्यों नहीं

आता है ? ॥ २५ ॥ जहाँ इन्द्र होय वहाँ बताओ, हम वहीं जाकर अपने स्वामीसे प्रार्थना करें." इसप्रकार देवताओंके पूछनेपर बृहस्पतिजी कहने लगे ॥ २६ ॥ "रसातलमें बलिको जीतकर इन्द्र उतथ्यके आश्रममें गया. वहाँ उतथ्य ऋषिकी स्त्रीसे बलात्कार संभोग किया. तब ऋषिके शिष्योंने निन्दा करी ॥ २७ ॥ तो लज्जित होकर इन्द्र स्वर्गमें न आकर मेरुकी गुफामें प्रवेश कर गया. वहीं शची ( इंद्राणी ) सहित निवास करता है और अपने किये हुये कर्मपर चिंता करता रहता है" ॥ २८ ॥ यह वचन बृहस्पतिका सुनकर अग्नि आदि देवतालोग इन्द्रको देखने और प्रार्थना करनेके निमित्त मेरुकी कन्दरामें गये ॥ २९ ॥ वहाँ इन्द्रको देखकर इन्द्रके बलवीर्यको प्रकाश

तं यामो यत्र मघवा प्रार्थयामश्च तं विभुम् ॥ इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥ २६ ॥ रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥ भुक्त्वा पत्नीं च धाष्टर्येन तच्छिष्यैरेवनिंदितः ॥ २७ ॥ व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह ॥ तत्रैवास्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिंतयन् विभुः ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः ॥ गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्ट्वा प्रार्थयितुं विभुम् ॥ २९ ॥ तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेंद्रं पाकशासनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥ ३० ॥ इंद्र तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाधिपाय ते ॥ वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दिताः ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽग नानादेशेषु दुःखिताः ॥ तस्मादागत्य देवेंद्र जहि शत्रून्नरिंदम ॥ ३२ ॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ लज्जयावनतो भूत्वा पश्यन् भूमिं च चक्षुषा ॥ ३३ ॥

करनेवाले लोकप्रसिद्ध स्तोत्रोंसे प्रसन्न करने लगे ॥ ३० ॥ "हे इंद्र ! हे सर्वदेवताओंके ईश ! तुमको नमस्कार है. तुमारे विना दैत्योंद्वारा हम लोग महापीडित हैं अर्थात् दैत्योंने बडा क्लेश दिया है ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्ट होनेसे दुःखित होकर हमलोग अनेक देशोंमें घूमते फिरते हैं. इसकारण हे देवेंद्र ! चलकर शीघ्र शत्रुओंका नाश करो" ॥ ३२ ॥ यह स्तुति देवताओंने करी तब इन्द्र कन्दरासे बाहर निकला; परन्तु लाजके मारे शिर झुकाये नेत्रोंसे पृथ्वीकी ओर देखता हुआ ॥ ३३ ॥ दुःखसे कंठभर

आया, जिससे कुछभी बोला नहीं गया. तब इन्द्रकी यह भयभीत दशा जानकर बृहस्पतिजी बोले ॥ ३४ ॥ " हे इन्द्र ! तुम शंका मत करो. यह जगत् कर्माधीन है; मान-अपमान, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय ॥ ३५ ॥ ये सब पूर्वजन्मार्जित कर्मोंके अनुरोधसे होते हैं. इसमें संशय नहीं है और यह जीव कर्मका अनुगामी है और दैवकी प्रेरणासे काल पाकर दुःख अपने आप आकर उपस्थित हो जाता है ॥ ३६ ॥ बुद्धिवान् लोग दुःख प्राप्त होनेपर कुछ शोच नहीं करते हैं और सुख मिलनेसे

न किंचिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः ॥ तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेंद्रं भयानतम् ॥ ३४ ॥ मा शंका ते सुरपते ! कर्माधीनमिदं जगत् ॥ मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥ ३५ ॥ पूर्वकर्मानुरोधेन भवंत्येव न संशयः ॥ जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः ॥ ३६ ॥ प्रज्ञाः प्राप्य न शोचंति न प्रहृष्यंति वै सुखात् ॥ तस्मात् प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो ! ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्य मघवन् ! दुःखं नैव शोचितुमर्हसि ॥ इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपः ॥ ३८ ॥ ॥ इंद्र उवाच ॥ ॥ परस्त्रीसंगदोषेण बलं वीर्यं यशो मम ॥ मंत्रशक्तिः शास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मानद ॥ ३९ ॥ अभवं नष्टवीर्योऽहं तूष्णीं तेन वसाम्यहम् ॥ पाकशासनवाक्यं तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥ ४० ॥

प्रसन्न भी नहीं होते हैं. इसकारण, हे प्रभो ! तुमको यह दुःख प्रारब्धसे मिला है ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! यह दुःख पाय तुमको शोच नहीं करना चाहिये. देवाधीश इन्द्रसे जब इसप्रकार गुरुदेव ( बृहस्पति ) ने कहा तब ॥ ३८ ॥ इन्द्र बोला हे मानद ! पराई स्त्रीके संगके दोषसे हमारा बल, वीर्य, यश, मन्त्रशक्ति, शास्त्रशक्ति, विद्याशक्ति, यह सब नष्ट हुये ॥ ३९ ॥ मैं नष्टवीर्य हूं, इसकारण चुपचाप यहां वास करता हूं. " इन्द्रका वाक्य सुनकर बृहस्पतिसहित सब देवतागण ॥ ४० ॥

इन्द्रको फिर बल देनेके अर्थ एकन्तमें परस्पर विचार करने लगे. तब दयाभावसे बृहस्पतिजी बोले ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिने कहा–" यह वैशाखमास है. मधुसूदन भगवान्का प्यारा है. इस माधवप्रिय मासमें सब तिथियाँ पुण्यकी देनेवाली हैं ॥ ४२ ॥ उनमेभी शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीया विशेष है. उस दिन जो कोई श्रद्धापूर्वक स्नान–दान आदि करता है ॥ ४३ ॥ उसके हजारों पाप निस्सन्देह नाश हो जाते हैं. तथा ऐश्वर्य, बल, धैर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४४ ॥ इसकारण, अक्षयतृतीयाके दिन बलिके द्वेषी

मंत्रयामासुरेकांते पुनस्तस्य बलाप्तये ॥ तदा गुरुश्च तान् प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैशाखनामाऽयं प्रियो वै मधुघातिनः ॥ सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥ ४२ ॥ तत्रापि च सिते पक्षे तृतीया चाक्षयाव्यया ॥ यस्तस्यां स्नानदानादि श्रद्धया च करोति वै ॥ ४३ ॥ तस्य पापसहस्राणि नश्यंत्येव न संशयः ॥ अनवद्यं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवंति च ॥ ४४ ॥ तस्मात् तस्यां तृतीयायां हरिणा बलिविद्विषा ॥ स्नानदानादिसद्धर्मान् कारयामो हिताप्तये ॥ ४५ ॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्यायां मंत्रशास्त्रयोः ॥ बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥ ४६ ॥ इत्येवं तु विचार्याथ गुरुर्देवैः समाहितः ॥ इंद्रेण कारयामास धर्मानेतान् हरिप्रियान् ॥ ४७ ॥

इन्द्रसे स्नानदानआदि सद्धर्म हितसाधनार्थ कराने चाहिये ॥ ४५ ॥ तो विद्या और मंत्रशास्त्रमें वही शक्ति जो पहले थी, इस स्नानदानादिके प्रभावसे आ जायगी और बल, धैर्य यशभी पहलेके समान बढ जायगा ॥ ४६ ॥ देवताओंसहित बृहस्पतिजीने इसप्रकार विचार कर इन्द्रसे हरिभगवान्के प्यारे वैशाखधर्म कराये ॥ ४७ ॥

अक्षयतृतीयाके दिन भुक्तिमुक्तिफल देनेवाले व्रत करनेसे पूर्ववत् बल-धैर्यआदिसे इन्द्र युक्त हुआ ॥ ४८ ॥ परस्त्रीसंगमका दोषभी शीघ्र दूर हो गया. तदनंतर इन्द्र अपने सब पापोंसे छूट गया, जैसे चन्द्रमा राहुसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तथा देवताओंके मध्यमें इन्द्र पूर्वकेसमान शोभाको प्राप्त हुआ. तिसपीछे इन्द्रने सब देवताओंको संग लेके असुरोंको जीत लिया ॥ ५० ॥ अक्षयतृतीयाके माहात्म्यसे भाग्यवान् इन्द्र विभवसमेत शंख-भेरी आदि बाजोंके शब्दसहित अमरावतीमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५१ ॥

अक्षय्यायां तृतीयायां भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥ तेन पूर्ववदासीद्बलं धैर्यादिकं विभोः ॥ ४८ ॥ परस्त्रीसंगदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत ॥ पश्चाद्धताशुभः शक्रो राहोर्मुक्त इवोडुपः ॥ ४९ ॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा ॥ पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनिर्जित्य नथाऽसुरान् ॥ ५० ॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् ॥ विवेश विभवैः सार्द्धं शंखतूर्यादिनिःस्वनैः ॥ ५१ ॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः ॥ ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथा पुरा ॥ ५२ ॥ पिंडभागांश्च पितरो यथापूर्वं प्रपेदिरे ॥ स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानां च पराजये ॥ ५३ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ प्रख्याता मर्त्यलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥ ५४ ॥

अनन्तर इन्द्रकी आज्ञा लेकर सब देवता भाने अपने स्थानको गये और पूर्ववत् अपना अपना यज्ञ आदिकोंका भाग लेने लगे ॥५२॥ पितरलोग पूर्ववत् पिंडभाग पाने लगे मुनिजन स्वाध्यायसे और दैत्योंके सतुष्ट हुये. दैत्यलोग पराजित हुये ॥ ५३ ॥ उसीसमयसे अक्षयतृतीया इसलोकमें प्रसिद्ध है और मनुष्योंमें देव, ऋषि, पितर इन

सबको सन्तुष्ट करनेवाली है ॥ ५४ ॥ इससे परे अधिक पुण्यफल देनेवाली, सब कर्मबन्धनोंको काटनेवाली तथा मनुष्योंको भुक्ति-मुक्ति देनेवाली दूसरी तिथि नहीं है. इसीसे इसका नाम अक्षयतृतीया है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथन नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ श्रुतदेवजी बोले " हे राजेन्द्र ! सब पुण्यतमा तिथियोंमें वैशाखशुक्लद्वादशी सब पापोंका विनाश करनेवाली है ॥ १ ॥ जिन्होंने इस द्वादशीका सेवन नहीं किया, उनके दान, तप उपवास और व्रत आदि करनेसे क्या फल है ? तथा इष्टापूर्तसे उनको क्या फल प्राप्त हो सकता है ? ॥ २ ॥ ग्रहण होनेपर

तस्मात् पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृतंनी ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाक्षयाह्वया ॥५५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे अक्षयतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ तिथिष्वेतासु पुण्यासु द्वादशी सितपक्षिणी ॥ वैशाखमासे राजेंद्र सर्वाघौघविनाशनी ॥ १ ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशीयैर्न सेविता ॥ २ ॥ गंगायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् ॥ द्वादश्यां माधवे मासि योग्याय ब्रह्मणेर्पणात् ॥ ३ ॥ गंगायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् ॥ तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् ॥ ४ ॥ यद्दत्तं चार्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे ॥ सिक्थेसिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥५ ॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम् ॥ निर्धूताखिलबंधस्तु विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥

गंगाजीमें हजार गोदान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन एक गौ योग्य ब्राह्मणके अर्थ अर्पण करनेसे मिलता है ॥ ३ ॥ अकालमें गंगाजीपर करोडोंको भोजन करानेसे जो फल मिलता है, वह फल वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जो वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन एक एक चुटकी अन्न सुपात्रके अर्थ देता है, उसको कोटिब्राह्मणभोजनका फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जो द्वादशीके दिन मधुसहित तिलपात्र दान करता है, वह सब बंधनोंसे

इनकर विष्णुलोकको जाता है ॥ ६ ॥ जो शुक्र एकादशीमें रात्रिसमय जागरण करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है और सब देवता उसपर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ७ ॥ करोडों सूर्यचन्द्र-ग्रहणसमय तीर्थमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल एकादशीके दिन प्रातःस्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो द्वादशीके दिन कोमल तुलसी दलोंसे विष्णुका पूजन करता है, वह अपने सातकुलोंका उद्धार कर वैकुंठको जाता है ॥ ९ ॥ तथा वैशाखशुक्ल द्वादशीके दिन जो बछडासमेत गोदान करता है, वह अपने करोडों कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकका अधिकारी होता है ॥ १० ॥ वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन जो मनुष्य यम, पितर, गुरु, देवता इनके लिये जलका घट-

एकादश्यां सिते पक्षे कुर्याज्जागरणं हरेः ॥ स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥७॥ कोट्यिन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्र फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥ ८ ॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥ स सप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥ ९ ॥ द्वादश्यां माधवे मासि यो दद्याद्गां सवत्सकाम् ॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥१०॥ यमं पितॄन् गुरून् देवान् विष्णुमुद्दिश्य मानवः ॥ माधवे शुक्लद्वादश्यां सोदकुंभं सदक्षिणम् ॥ ११ ॥ दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ प्रयागे प्रत्यहं चैव कुर्याद्यः कोटिभोजनम् ॥१२॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं पड्रसान्नैर्मनोरमैः ॥ तत्फलं समवाप्नोति मधुसूदनशासनात् ॥ १३ ॥ शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

दक्षिणासहित ॥ ११ ॥ और दही अन्न दान करता है, उसका फल सुनो, हे ! प्रयागतीर्थमें करोडोंको प्रतिदिन भोजन करावे ॥ १२ ॥ एक वर्षपर्यन्त इसप्रकार षड्रसयुक्त भोजन करानेसे जो पुण्य फल होता है, वह फल उसको मधुसूदन भगवान्की आज्ञासे प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जो वैशाखशुक्लद्वादशीके दिन शालिग्राम-शिलाका दान करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १४ ॥

सातद्वीपवाली भूमिका दान गंगामें ग्रहणके समय जो कोटिवार देवै तो उसके तुल्य फल प्राप्त होता है ॥१५॥ द्वादशीके दिन मधुसूदनभगवान्‌को जो दूधसे स्नान कराता है, उसको राजसूय और अश्वमेध इन दोनों यज्ञोंके करनेका फल मिलता है ॥ १६ ॥ सोई फल गंगाके स्नानसे प्राप्त होता है; इसमें संशय नहीं है और त्रयोदशीके दिन जो दूधदही मिलाकर विष्णुका यजन करता है ॥ १७ ॥ तथा उसीमें शर्करा-मधु-घृत-सहित मधुसूदनकी प्रीतिके अर्थ भक्तिपूर्वक मधुसूदन भगवान् विष्णुको पंचामृतसे स्नान

सप्तद्वीपवतीं भूमिं गंगायां च रविग्रहे ॥ यो दद्यात् कोटिवारं तु तेन तुल्यं फलं विदुः ॥ १५ ॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यां यत् फलं परिजायते ॥ १६ ॥ तत्फलं समवाप्नोति गंगायां नात्र संशयः ॥ त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः ॥१७॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये॥ पंचामृतैश्च यो विष्णुभक्त्या संस्नापयेद्विभुम्॥१८॥स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके हीयेत यो दद्यात् पानकं ह्यस्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥ १९ ॥ जीर्णं पापं जहात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ सायाह्ने चैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम् ॥२०॥ भवेन्मुक्तः कर्मबंधादुर्वारुकरसायनात् ॥ इक्षुदंडं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च ॥ २१ ॥

कराता है ॥ १८ ॥ वह अपने सब कुलोंका उद्धार करके विष्णुलोकको जाता है, तथा जो सायंकाल हरिभगवान्‌की प्रीतिके अर्थ शर्बत दान करता है ॥ १९ ॥ उसके पुराने पाप ऐसे दूर हो जाते है; जैसे सांप अपनी पुरानी कांचलीको त्याग देता है. जो सायंकालमें रसीली ककडीका दान करता है ॥२० ॥ वह उस रसीली ककडी दानके प्रतापसे कर्मबन्धनसे छूट जाता है तथा जो कोई ईख, द्राक्ष और आंबके फलोंका दान करता है ॥ २१ ॥

उसके कुलमें भी पीढ़ीपर्यन्त सन्तान होती रहती है. जो द्वादशीके दिन सायंकालमें चन्दनादिका दान करता है वह सम्पूर्ण आगन्तुक व्याधियोंसे छूट जाता है इसमें संशय नहीं है ॥२२॥ हे राजसत्तम ! द्वादशीके दिन जो कोई कुछभी पुण्य करता है ॥ २३ ॥ तो वैशाखशुक्लपक्षमें किया हुआ अक्षय फल देनेवाला होता है. अब हे राजा ! इसकी प्रसिद्धि जिससे हुई, सो कहता हूं ॥ २४ ॥ सुननेसे सब पापोंका नाश करनेवाली, सर्व मंगलदायिनी है. पूर्वसमय काश्मीर देशमें एक देवव्रत नाम ब्राह्मण

न विच्छित्तिः संततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् ॥ यो दद्याद्गंधलेपं तु सायान्हे द्वादशीदिने ॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २२ ॥ यत्किंचित् कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ! ॥ २३॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलं भवेत्॥ प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि येन जातेति भूमिप ! ॥ २४ ॥ श्रवणात् सर्वपापघ्नीं सर्वमंगलदायिनीम् ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥ २५ ॥ तस्यासीन्मालिनी नाम तनया पापरूपिणी ॥ ददौ तां सत्यशीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥ २६ ॥ तामुद्वाह्य ययौ धीमान् स्वदेशं सनालयम् ॥ रूपयौवनसंपन्ना तस्य नैव प्रियाऽभवत् ॥ २७ ॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः ॥ नान्यस्य कस्यचिद्विप्रो नांविना नृपते पतिः ॥ २८ ॥

था ॥ २५ ॥ उसकी मालिनी नाम एक पापरूपिणी कन्या सत्यशील नाम विद्वान ब्राह्मणके साथ विवाही गई ॥ २६ ॥ उसको विवाह कर वह बुद्धिमान सत्यशील अपने घर स्वदेशको आता हुआ. रूपयौवनसे युक्त होनेपर भी वह स्त्री उसकी प्यारी नहीं हुई ॥ २७ ॥ वह निठुर होकर सदा उससे द्वेष रखके. हे राजन ! उसके सिवा

अन्य किसीसे कुछ द्वेष नही रक्खे ॥ २८॥ वह उस पतिपर क्रोध कर अपने वशमें करनेकी इच्छासे अन्य स्त्रियोंसे वशीकरण पूछती हुई, जिनको उनके पतियोंनें पहलेही त्याग दिया था ॥ २९॥ तब वे स्त्रियां कहने लगीं कि—"तुमारा पति तुमारे वशमें हो जायगा; हमको भली भांति विश्वास है ॥ ३० ॥ पहले हमने अपने पतिको वशीकरण औषध देकर वशमें कर लिया था. तुम योगिनीके निकट जाओ. वह तुमको औषधी देवेगी ॥ ३१ ॥ तुम कुछ शोचविचार न करना, तुमारा पति दासके

तस्मिन् सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलंपटा ॥ अपृच्छत् प्रमदा राजन् यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥ २९ ॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्त्ता भविष्यति ॥ अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम् ॥३०॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा ॥ योगिनीं त्वं तु गच्छाद्य दास्यते भेषजं शुभम् ॥ ३१ ॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत् पतिः॥ योगिनीमंदिरे गत्वा तासां वाक्येन भूपते ॥ ३२ ॥ प्रासादमतुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी सती ॥ शतस्तंभसमायुक्तां कुटीं भेजे त्वरान्विता ॥ ३३ ॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवापातपालिकाम् ॥ प्रावृतां दीर्घवस्त्रेण संधिते राजवंतिना ॥ ३४ ॥ दीर्घाभिः शुभ्रभित्तीभिः प्रावृता दीप्तिसंयुता ॥ परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैः शनैः ॥ ३५ ॥

तुल्य हो जायगा. " हे राजन् ! यह सुनकर वह उन स्त्रियोंके कथनानुसार योगिनीके मंदिरमें चली ॥३२॥ और योगिनीको अत्यन्त प्रसन्न करनेकी इच्छासे वह दुराचारिणी बहुत शीघ्र उस कुटीमें पहुंची, जहां सौ खंभे लग रहे थे ॥ ३३ ॥ वह कुटी बहुत लंबी चौडी, कांतिवाली, जिसके चारो ओर झालरदार वस्त्र लगे हुये, जिनमें गोटा किनारी शोभा दे रही ॥ ३४ ॥ चारों ओर बडी बडी भित्तियोंमें सफेदी हो रही, दीपक जगमगा रहे. ऐसे सुन्दर स्थानमें जो सेवा करनेको आये उनको देख रही ॥ ३५ ॥

[illegible] रही. इसप्रकार योगिनीसे जब उन स्त्रीने प्रार्थना करी, तब उस योगिनीने प्रसन्न हो, मनको क्षोभ करानेवाला वशीकरण मंत्र बताया ॥ ३६ ॥ तब उसने नमस्कार कर अपने पांवोंसे हीरा जडी हुई बहुत चमकीली अंगूठी उतार कर भेंट दी ॥ ३७ ॥ उसमें उत्तम सुवर्ण जडा हुआ, सूर्यकी किरणोंके [illegible] पांवकी अंगूठीको देखकर प्रसन्न हुई ॥ ३८ ॥ उसके पतिके अपमानसे उसके हृदयका वृत्तान्त जानकर हे राजन् ! वह योगिनी उसके हि-

[illegible] सा तु जपंती प्रार्थिता तया ॥ ददौ वश्यकरं मंत्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम् ॥ ३६ ॥ ततः सा प्रणता भूत्वा पद्भ्यां दत्त्वां-[illegible] ॥ वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरिक्तप्रभान्वितम् ॥ ३७ ॥ मृदुकांचनसंयुक्तं भानुरश्मिसमद्युति ॥ ततो दृष्ट्वा तु संतुष्टा पादस्थं [illegible] ॥ ३८ ॥ हृदयं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् ॥ तदोक्ता हि तया भूप तापस्याहितयुक्तया ॥ ३९ ॥ चूर्णं रक्षान्वितं [illegible] ॥ चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥ ४० ॥ भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुंदरीम् ॥ नाप्रियं [illegible] दुश्चरिण्यास्तवापि च ॥ ४१ ॥ चूर्णं रक्षां गृहीत्वा सा प्राप्ता भर्तृगृहं पुनः ॥ प्रदाय पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥ ४२ ॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया ॥ तदा स पीतचूर्णस्तु भर्ता नृपवरोत्तम ! ॥ ४३ ॥

[illegible] ॥ ३९ ॥ यह [illegible] सब प्राणियोंको वशमें करनेवाला है: यह चूर्ण अपने पतिको देकर यह विभूति अपने गलेमें बांध ॥ ४० ॥ तुम्हारा पति तुम्हारे [illegible] आवेगा और तुम्हारे दुश्चरित्रोंको देखकरभी कुछ नहीं कहेगा ॥ ४१ ॥ तब रक्षा और चूर्णको लेकर वह अपने घर पतिके [illegible] दूधमें डालकर वह चूर्ण पतिको दे दिया ॥ ४२ ॥ और अपने गलेमें विभूति बांध ली. पर इसे रखनेका उसने कुछ विचार न किया. तब हे नृप श्रेष्ठ !

उस चूर्णको पीनेसे उसके भर्ताको ॥४३॥ उस चूर्णसे क्षय रोग हो गया कि जिससे उसका पति दिनदिन क्षीण होने लगा ! गुदस्थानमे बडा घोर घाव हो जानेसें कीडे पड गये ! ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! कुछ दिनोंके बीत जानेपर जब उसके पतिकी यह दशा हो गई, तब वह पुंश्चली दुष्टाचारिणी भी अपनी इच्छाके अनुसार घूमने लगी ॥ ४५ ॥ तेजक्षीण हो जानेसे उसके पतिकी इन्द्रियां व्याकुल हो गईं और दिनरात दुःखित होकर कहने लगा कि–" हे शोभने ! मै तुमारा दास हूं ॥ ४६ ॥ मै तुमारी

तच्चूर्णात् क्षयरोगोऽभूत् पतिः क्षीणो दिने दिने ॥ गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥ ४४ ॥ दिनैः कतिपयै राजन् ! पत्यावेवं व्यवस्थिते ॥ उवास स्वेच्छया सापि पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥४५॥ हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाकुलेंद्रियः॥ क्रंदमानो दिवारात्रं दासोऽस्मि तव शोभने ! ॥ ४६ ॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं नेच्छेहमपरां स्त्रियम् ॥ तत्तस्य विदितं ज्ञात्वा भीता सा मेदिनीपते ! ॥ ४७ ॥ अलंकारकृते पत्युर्जीवनेच्छुर्न वै हि सा ॥ योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥ तया च भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशांतये ॥ दत्ते च भेषजे तस्मिन् स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणात् पतिः ॥ ४९ ॥ पूर्वचूर्णोद्भवो दाहः शांतस्तेनाभवत्तदा ॥ ततःप्रभृति भर्ता च वश्योऽभूद्देशमसंस्थितः ॥ ५० ॥

शरण हूं, मेरी रक्षा करो; मैं दूसरी स्त्रीकी इच्छा नही करता हूं" हे राजन् ! इस प्रकार अपने पतिका वृत्तान्त जानकर वह बहुत डर गई ॥ ४७ ॥ और घवडाकर शोचने लगी कि " पति जीता रहेगा तो मै वस्त्र आभूषण धारण किये रहूंगी." यह विचार कर योगिनीके पास दौड गई और उससे सब वृत्तांत कहा ॥ ४८ ॥ तब योगिनीनें दूसरी औषधी दाहशांतिके अर्थ दीं उस औषधीके देनेसे उसका पति तुरन्त अच्छा हो गया ॥ ४९ ॥ पहले चूर्णसे उत्पन्न हुआ दाह इससे

शान्त हो गया. उसी समयसे उसका पति वशमें हो गया और घरहीमें रहने लगा ॥ ५० ॥ घरके कामके मिस उपपति घरमें रहने लगे और सब जातिके व्यभिचारी मनुष्यभी घरमें रहने लगे ॥ ५१ ॥ परंतु उसके पतिके मुखमें कुछ कहनेकी सामर्थ्य नहीं रही थी. तब इसी दोषसे सब अंगोंमें उत्पन्न हुये ॥५२॥ कीडे हाडोंमें निकर कालान्तक यमके समान हो गये. उन कीडोंने उसके नाक, जीभ और दोनों कानोंमें छेद कर दिये ॥ ५३ ॥ स्तन कट गये. अंगुलियोंके नख गिर

तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः ॥ सर्ववर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठंति वै गृहे ॥ ५१ ॥ न किंचिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथंचन ॥ ततस्तेनैव दोषेण सर्वांगेषु च जज्ञिरे ॥ ५२ ॥ कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालांतकयमोपमाः ॥ तैर्नासाजिह्वयोश्चासीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥५३॥ स्तनयोश्चांगुलीनां च पंगुत्वं चापि चागतम् ॥ तेन पंचत्वमापन्ना गता नरकयातनाम् ॥५४॥ ताम्रभांडे च सादग्धाऽयुतानि दश पंच च ॥ श्वानयोनिषु संजाता शतवारं पुनःपुनः ॥ ५५ ॥ छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिपूर्णा निरंतरम् ॥ छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहे गृहे ॥ ५६ ॥ पश्चात् सौवीरदेशेषु पद्मबंधोर्द्विजस्य च ॥ दास्या गृहे शुनी जाता बहुदुःखसमाकुला ॥५७॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छांत्रिसानुग ॥ कृमिपूर्णशिरास्यंतकृमियोनिश्च तिष्ठति ॥ ५८ ॥

गये. पांवोंसे पंगुली हो गई. इस प्रकार क्लेश पाती हुई देह छोडकर नरक भोगने लगी ॥ ५४ ॥ पंद्रह हजार वर्षोंतक ताम्रभांडनाम नरकमें वह जलती रही: फिर सौवार कुत्तोंकी योनिमें जन्मी ॥ ५५ ॥ नाक कट गई. कान कट गये: मस्तकमें निरन्तर कीडे पड रहे: पूंछ कट गई: पांव लंगडे हो गये. घरघरमें पिटती हुई घूमती रही ॥ ५६ ॥ पश्चात् सौवीरदेशमें पद्मबन्धु नाम ब्राह्मणकी दासीके घर कुतियाका जन्म पाया. तबभी बहुत दुःखसे व्याकुल हुई ॥ ५७ ॥ कान कट गये. नाक टूट

गई. पूंछ कट गई. पांवोसे भी चला नहीं जाता ! मस्तकमें कीडे भर गये; योनिमें कीडे पड गये ॥ ५८ ॥ इसप्रकार हे राजन् ! उस जन्ममें भी क्लेशसहती हुई दैवयोगसे कर्मफल पूरे हो जानेपर वैशाखमास मेषके सूर्यमें ॥ ५९ ॥ शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन पञ्चबन्धुका पुत्र नदीमें स्नान कर पवित्र हो गीले वस्त्र पहरे घरको आया ॥ ६० ॥ अपने घर तुलसीके थांभ लेके समीप आकर उसने अपने पांव धोये. उसी थाँभ लेके नीचे वह कुतिया सो रही थी ॥ ६१ ॥ सूर्यके उदयसे पहले उस पांव धोये हुये, जलमें लोट

एवं क्लेशं सह्यमाना तस्मिञ्जन्मनि भूमिप ! ॥ दैवात् कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥ ५९ ॥ शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पञ्चबंधोस्तनूद्भवः ॥ नद्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥ ६० ॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिनेजह ॥ वेदिकायामधोदेशे सा शुनी स्वापमागता ॥ ६१ ॥ प्राक् सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता ॥ सद्योध्वस्ताशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत् क्षणात् ॥ ६२ ॥ स्मृत्वा कर्म कृतं पूर्वं सा शुनी तापसंयुता ॥ चुक्रोश करुणं दीना मुने ! त्राहीति वै पुनः ॥ ६३ ॥ स्वकर्म च मुनींद्राय स्मृत्वाऽऽचख्यौ भयाकुला ॥ भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥ ६४ ॥ याऽन्यापि युवती ब्रह्मन् ! भर्तुर्वश्यं समाचरेत् ॥ वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने ॥ ६५ ॥

जानेसे कुतियाके सब पाप दूर हो गये और उसको पूर्वजन्मोंका तुरंत स्मरण हुआ ॥ ६२ ॥ पूर्वजन्ममें कियेहुये कर्मोंका स्मरण कर वह कुतिया तापसे व्याकुल हुई, फिर दीन हो करुणस्वरसे "त्राहि त्राहि" करने लगी ॥ ६३ ॥ और भयसे विकल होकर उस मुनिवरसे अपने कर्मोंका स्मरण कर अपना वृत्तान्त कहने लगी कि—मैंने अपने पतिको विष दिया तथा अनेक कुकर्मोंद्वारा चरित्र दिखाये ॥ ६४ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कोईभी धर्महीना दुराचारिणी स्त्री अपने पतिको वशमें करती है, वह ताम्रभांड-

[illegible] जाती है ॥ ६५ ॥ अपना पतिही स्वामी है, पतिही गुरु है; पतिही उत्तम देवता अर्थात् इष्टदेव है. तो साध्वी स्त्री उसके साथ अनुचित वर्ताव कर कैसे सुखको प्राप्त हो सकती है ? ॥ ६६ ॥ पतिको दुःख देनेवाली स्त्री सौ जन्मतक तिर्यग्योनि ( पशुयोनि ) में जन्मती है अर्थात् सौ बार कुतिया होती है और उसके शरीरमें सैकडों [illegible] पड जाते हैं. इस कारण, हे ब्राह्मण ! स्त्रियोंको योग्य है कि, सदैव अपने पतिकी आज्ञा मानती रहें ॥ ६७ ॥ मैं. फिर इस दुःख पानेवाली दुष्टयोनिमें नहीं आऊं [illegible] जो प्रकार मेरा उद्धार हो, हे ब्रह्मन् ! इस समय मैं आपके सामने खडी हूं ॥ ६८ ॥ इसकारण हे ब्रह्मन् ! मुझ दुष्टा पापात्माको अपना पुण्य देकर मेरा उद्धार

भर्त्ता नार्या गुरुर्भर्त्ता भर्त्ता दैवतमुत्तमम् ॥ विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात् ? ॥ ६६ ॥ तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च ॥ तस्माद्भूसुर ! कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तुर्वचः सदा ॥ ६७ ॥ नाहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम् ॥ यदि चोद्धरसि ब्रह्मन्त्वय त्वदग्रेऽस्मिसंमुखाम् ॥ ६८ ॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन् ! दुष्कृतां पापचारिणीम् ॥ सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ ६९ ॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन् ! द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी ॥ तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥ ७० ॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मन् ! तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ यस्यां तु भूसुरः स्नातः स्वगृहे मनुजः किल ॥ ७१ ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते नात्र संशयः ॥ तत्र दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ७२ ॥

[illegible] ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! पुण्यशीर्षी द्वादशीके दिन स्नानदानअन्नभोजन-आदि जो सुकृत आपने किया है, वह मुझको दीजिये ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन् ! दुराचारिणी होनेपरभी आपके सुकृतदानसे मेरी मुक्ति हो जायगी. जिस तिथिमें भूसुर ( ब्राह्मण ) ने स्नान किया अर्थात् वैशाखशुक्लद्वादशीको जो मनुष्य [illegible] ॥ ७१ ॥ सो उसको सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है. इसमें संशय नहीं. द्वादशीके दिन तप, दान, हवन, देवपूजन आदि जो कुछ सुकृत किया

जाय ॥ ७२ ॥ उसका फल अक्षय जानिये, जो द्वादशीके दिन किया जाय. इसप्रकारका जो फल हो, वह सब मुझको देओ ॥७३॥ द्वादशीके दिन व्रतस्थ रहकर त्रयोदशीके दिन पारण करनेसे जो फल होता है, उससे मोक्ष प्राप्त होगी ॥ ७४ ॥ हे महाभाग ! हे दीनवत्सल ! मुझ दीनके ऊपर दया करो. दीननाथ जगन्नाथ जनार्दन भगवान् तुम्हारेभी नाथ है ॥ ७५ ॥ भगवान्के भक्तभी एसेही होते हैं. जैसा राजा वैसी उसकी प्रजा होती है. हे वैवस्वतपदध्वंसिन् ! मैं बहुत दुःखी हूं; मेरी रक्षा करो ॥ ७६ ॥ हे दीनवत्सल. ! मै तुम्हारे द्वारपर रहनेवाली दीन कुतिया हूं. हजारों ब्रह्महत्या और हजारो गोहत्या ॥ ७७ ॥ और करोडों अगम्य दोषोंसे उत्पन्न हुये पापोंको यह

तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने ॥ एवंविधं फलं यत् स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥ ७३ ॥ द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् ॥ यत् फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ७४ ॥ दयां कुरु महाभाग ! दीनायां दीनवत्सल ! ॥ दीननाथो. जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ॥ ७५ ॥ तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः ॥ वैवस्वतपदध्वंसिन् ! परित्राहि सुदुःखिताम् ॥ ७६ ॥ त्वद्द्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल ! ॥ ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ॥ ७७ ॥ अगम्यानां च कोटिश्च दहत्येषा शुभा तिथिः ॥ तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ! ॥ ७८ ॥ मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ ! समुद्धर ॥ अंते तुभ्यं द्विजेंद्राय नम उक्तिं वदाम्यहम् ॥ ७९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शुनीमाह मुनेः सुतः ॥ स्वकृतं जंतवोऽश्नंति सुखदुःखात्मकं शुने ! ॥ ८० ॥ तस्मात् किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया ॥ यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्व्रतः ॥ ८१ ॥

तिथि नष्ट कर देती है. हे महामुने ! इस तिथिमें किया हुआ महापुण्य आप मुझको देओ ॥ ७८ ॥ और मुझ व्याकुलचित्तवालीका उद्धार करो. हे दीनजनोंके नाथ ! मुझ दीनका उद्धार करो. हे द्विजेन्द्र ! अंतमे मै तुमको नमस्कार करती हूं ॥७९॥ उसका यह वचन सुनकर उस मुनिपुत्रने कुतियासे कहा–हे कुत्ती ! अपने कियेहुये कर्मोंके सुखदुःखरूपी फल प्राणी भोगते हैं ॥८०॥ इसकारण तू क्षुद्रा और पापकर्म करनेवाली है. तू पुण्यको क्या करैगी ? जिसने रक्षा–चूर्णादिद्वारा अपने पतिको वशमें किया ॥८१॥

जो मनुष्योंके लिये पापकर्म करते हैं, उनको उससे दुःख भोगना पडता है और जो पुण्यकर्म करते है, उनके दुःखोंका परिहार होकर उनको सुख मिलता है ॥ ८२ ॥ भा०टी०
पापी मनुष्योंके लिये जो कर्म किया जाता है, वह दोनोंको भ्रष्ट करनेवाला होता है. जैसे शकर मिलाया दूध साँपको पान करानेसे ॥ ८३ ॥ केवल विष बढता है. इसीप्रकार
दुष्टजनके लिये पापकी वृद्धि होती है. ऐसे जब मुनिपुत्रने कहा, तब कुतिया बहुत दुःखी हुई ॥ ८४ ॥ फिर चीत्कार कर ऊपरको मुख उठाय उस मुनिपुत्रके पिताके

मातृभ्यो यत्र कृतं पापं स्वस्य दुःखकरं भवेत् ॥ साधुभ्यो यत् कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥ ८२ ॥ उभयभ्रंशतामेति पापेभ्यो अ०२१
यत्कृतं भवेत् ॥ शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥ ८३ ॥ विषवृद्धिकरं दुष्टमेवं पापकृतं भवेत् ॥ वदत्येवं मुनिसुते शुनी
दुःखितरूपिणी ॥८४॥ पुनश्चुक्रोशोर्ध्वमुखी तत्पित्रे बहुभाषिणी ॥ पाहि मां पाहि शुनीं त्वद्वारवासिनीम् ॥ ८५॥ त्वदुच्छिष्टाश-
नीं नित्यं त्वं पाहीति पुनःपुनः ॥ स्वपोष्या ये हि वर्त्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः ॥ ८६ ॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति वेदविदां
मतम् ॥ चांडाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः॥८७॥ गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः॥अशक्तं नोद्धरेत् पोष्यं रोगान्नुप-
हतं यदि ॥ सोऽधः पतेन्न संदेह इति वेदविदां मतम् ॥ ८८ ॥

कहने लगी- हे तपस्विन्! देरी रक्षा करो. मैं तुम्हारे द्वारपर रहनेवाली कुतिया हूं ॥ ८५ ॥ तुम्हारा झूठा प्रतिदिन खाती हूं. वारवार कहती हूं, तुम मेरी रक्षा करो
गृहस्थ महात्माके घर जो पालन होते हैं ॥ ८६ ॥ उनका उद्धार करना उचित है. यह वेदके जाननेवालोंका मत है. चांडाल, कौआ, कुत्ता ये और प्रतिदिन ॥ ८७ ॥
गृहस्थोंके दयापात्र हैं. प्रतिदिन बलिभोजन करनेवाले, अपने पाले हुए और रोगसे पीडित जीवोंका उद्धार जो प्राणी नहीं करते हैं, वे अवश्य नरकमें गिरते हैं.

यह वेदवेत्ताओंका मत है ॥ ८८ ॥ एक परमेश्वर सब जगत्का कर्ता है. वह सबको उत्पन्न कर सब जंतुओंकी रक्षा दाराआदिरूपव्यपदेशकरके करता है. इसकारण, " अपने पालेहुये जीवकी रक्षा करना " यह परमेश्वरकी आज्ञा है ॥ ८९ ॥ उस जगत्पोषक और जीवरक्षकरूप भगवान्की आज्ञाको उल्लंघन कर जो अज्ञानी बनता है, वह दैवके कोपसे अपना सर्वस्व नष्ट कर अन्तकालमें नरकगामी होता है ॥ ९० ॥ तुम कर्तव्यके पालन करनेवाले हो, दयालु हो, अतः मुझ दुष्टमतिवालीका उद्धार करो ॥ ९१ ॥ अपने घरके भीतर उस दुःखसे पीडित कुतियाका यह वचन सुनकर दयानिधि पद्मबंधु मुनि शीघ्रही घरसे बाहर निकले ॥ ९२ ॥ और कुतियासे कहा कि

कर्त्तारमेकं जगतां हि कर्त्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजंतून् ॥ दारादिरूपव्यपदशेतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥ ८९ ॥ तां पोष्यरक्षां परिहृत्य जंतुर्दैवेन क्लष्टो यदि वर्ततेऽन्यधीः॥सदैव द्रोग्धा सकलस्य हंता कीनाशलोकं नितरां प्रयाति ॥ ९० ॥ कर्त्तव्यत्वाद्दयालुत्वाद्दीनामुद्धर दुर्मतिम् ॥९१॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखार्ताया गृहे स तु॥निश्चक्राम गृहात्तूर्णं पद्मबंधुर्दयानिधिः॥९२॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् ॥ स तु पुत्रवचः श्रुत्वा तमेवं प्राह विस्मितः ॥ ९३ ॥ पद्मबंधुरुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं मया ॥ न साधूनामिदं वाक्यं भवतोह वरानन ॥ ९४ ॥ आत्मसौख्यकराः पापा भवंति परिभाविताः ॥ पश्य पुत्र ! जनाः सर्वे परोपकरणाय वै ॥९५॥ शशिः सूर्योऽथ पवनो मेदिनी हुतभुग् जलम् ॥ चंदनं पादपाः संतः परोपकरणे स्थिताः॥९६॥

" क्या बात है ? " तब पुत्रने सब वृत्तान्त कहा. तब मुनि, पुत्रके वचन सुनकर विस्मित हो, उससे इसप्रकार कहने लगे ॥९३॥ " हमारे पुत्र होकर तुमने यह क्या कहा ? हे पुत्र ! साधुओंको ऐसा वाक्य नहीं कहना चाहिये ॥ ९४ ॥ जो अपने आत्माको सुख देनेवाले कर्म करते हैं और दूसरेका नहीं करते वे पापी दूसरे लोगोंसे अपमानित होते हैं. हे पुत्र ! देखो, सब प्राणी परोपकारनिमित्त हैं ॥ ९५ ॥ चंद्र, सूर्य, पवन, पृथ्वी, अग्नि, जल, चंदन, वृक्ष और सन्तजन ये परोपकारमे स्थित हैं ॥ ९६ ॥

हे पुत्र ! दधीचि मुनिने देवताओंके उपकारनिमित्त दैत्योंको बलवान् जानकर प्रसन्नतापूर्वक अस्थिदान किया ॥९७॥ पूर्वसमय राजा शिविने अपना मांस कबूतरके निमित्त दिया. तब भूखे श्येन (बाज) ने कबूतर भक्षण किया था ॥९८॥ तथा पहले एक जीमूतवाहन नाम राजा भूमण्डलमें हुआ, उसने महात्मा गरुडके अर्थ अपना जीवन दे दिया ॥९९॥ पस: आपको तो दयालु ही होना चाहिये. मेघ शुद्ध स्थानपर वर्षता है, क्या अशुद्धस्थानपर नहीं वर्षता है ? अर्थात् सर्वत्र वर्षता है ॥ १०० ॥ चन्द्रमा क्या चांडालका घर प्रकाशित नहीं करता है ? इसकारण वारंवार मुझसे प्रार्थना करनेवाली इस कुतियाका मैं ॥ १०१ ॥ अपने पुण्यप्रभावसे उद्धार करूंगा. जैसे कीचडमें

अस्थिदानं कृतं पुत्र ! कृपया हि दधीचिना ॥ देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान् महाबलान् ॥९७॥ कपोतार्थे स्वमांसानि शिबिना भूभुजा पुरा ॥ प्रदत्तानि महाभाग ! श्येनाय क्षुधिताय च ॥९८॥ जीमूतवाहनो राजा पुरासीत् क्षितिमंडले ॥ तेनापि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥ ९९ ॥ तस्माद्दयालुना भाव्यं भवता च विपश्चिता ॥ शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति ॥ १०० ॥ किन्न दीपयते चंद्रश्चांडालानां गृहं सदा ॥ तस्मादहं शुनीमेतां याचंतीं च पुनःपुनः ॥ १०१ ॥ उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पंकमग्नां च गां यथा ॥ इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ १०२ ॥ दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसंभवम् ॥ शुनि ! गच्छ हरेर्धाम निर्धूताखिलकल्मषा ॥ १०३ ॥ तद्वाक्यात्महसा भूप दिव्याभरणभूषिता ॥ विमुच्य देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥ १०४ ॥

फंसी हुई गौका उद्धार किया जाता है. " इसप्रकार अपने पुत्रको रोककर स्वयं प्रतिज्ञा करी ॥ १०२ ॥ और कहा कि-" हे कुत्ती ! मैं द्वादशीके दिन किया हुआ पुण्य तुझको देता हूं, तू अपने सब पापोंसे छूटकर वैकुंठको चली जा " ॥ १०३ ॥ इतना कहतेही हे राजन् ! वह कुत्ती सहसा अपने जीर्णशरीरको छोडकर दिव्य आभूषण पहर और दिव्य रूप धारण कर ॥ १०४ ॥

सौ सूर्योके समान कांतिवाली सावित्रीकी मूर्तिके सदृश ब्राह्मणसे आज्ञा लेके दशौ दिशाओंको प्रकाशित करती हुई स्वर्गको चली गई ॥ १०५ ॥ वहां स्वर्गमें अनेक महाभोगोंको भोगकर पृथ्वीमें नरनारायणकी कृपासे उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥१०६॥ वह वरांगना वैशाखशुक्ल द्वादशीके प्रभावसे देवताओंकी प्यारी अप्सरा हुई॥१०७॥ योगीजन योगद्वारा जिसको पाते हैं, जो अग्निसमान प्रकाशमान्, जो अत्यंत श्रेष्ठ, जो परमार्थरूप, जिसको पाकर संतभी मोहित होते है, ऐसे अनुपम रूपको वह कुतिया प्राप्त हुई

शतादित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा ॥ जगामामंत्र्य तं विप्रं द्योतयंती दिशो दश ॥ १०५ ॥ भुक्त्वा दिवि महाभोगान् पश्चा-
ज्जाता महीतले ॥ नरनारायणाद्देवादुर्वशीनामनामतः ॥१०६॥ वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वरांगना ॥ देवानां च प्रिया जाता अप्स-
रस्त्वं च सा ययौ ॥ १०७ ॥ यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् ॥ यत् प्राप्य संतोऽपि हि यांति मोहं तत्प्राप रूपं
च शुनीह देवी ॥ १०८ ॥ पश्चात् स पद्मबंधुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम् ॥ १०९ ॥
कोटींदुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा ॥ यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥ ११० ॥ इति
श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥१०८॥तदनन्तर वह पद्मबंधु इस पुण्यवर्धिनी तिथिको लोकमें प्रसिद्ध करता हुआ; जो मधुसूदनभगवान्की प्राणप्यारी है॥१०९॥ करोडों चन्द्रसूर्य-ग्रहणसे अधिक पुण्यरूप और सब यज्ञोंसे अधिक तिथिको ब्राह्मणने तीनो लोकोंमें प्रसिद्ध कर दी ॥११०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

श्रुतदेवजी बोले—"हे राजेंद्र ! वैशाखशुक्लपक्षमें अंतकी जो तीन तिथि पूर्णिमापर्यन्त हैं, वे महाशुभ फल देनेवाली है ॥ १ ॥ ये तीनों तिथि पुष्करिणी कहाती हैं और सब पापोंका क्षय करनेवाली है. जो वैशाखमासभर स्नान नहीं करता है, उसको इन तीन तिथियोंमें स्नान करनेसे पूर्ण वैशाखमासभर स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ सब देवता वैशाखशुक्ल त्रयोदशीके दिन इकट्ठे होकर प्राणियोंको पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥ पूर्णिमाके दिन सब तीर्थ विष्णुभगवान्के साथ इकट्ठे होते हैं, शुक्लचतुर्दशीके दिन यज्ञसहित देवता इन प्राणियोंको पवित्र करती हैं. ब्रह्मघाती वा सुरापान करनेवाला कोई हो, ये सबको पवित्र कर देती हैं ॥४॥ पूर्वसमयमें वैशाखएकादशीके दिन नि-

श्रुतदेव उवाच ॥ ॥ यास्तिस्रस्तिथयः पुण्या अंतिमाः शुक्लपक्षके ॥ वैशाखे मासि राजेंद्र पूर्णिमांताः शुभावहाः ॥ १ ॥
अंत्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः ॥ माधवे मासि यः पूर्णं स्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥ तिथिष्वेतासु स स्नायात् पूर्णमेव फलं
लभेत् ॥ २ ॥ सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जंतून् पुनंति हि ॥ ३ ॥ पूर्णायां सर्वतीर्थेषु विष्णुना सह संस्थिताः ॥ चतुर्दश्यां सय-
ज्ञाश्च देवा एतान् पुनंति हि ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान् पुनंति हि ॥ ४ ॥ एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥ ५ ॥
द्वादश्यां पालितं तच्च विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ त्रयोदश्यां सुधां देवान् पाययामास वै हरिः ॥ ६ ॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान् देव-
विरोधिनः ॥ पूर्णायां सर्वदेवानां साम्राज्यमभिवभूव ह ॥ ७ ॥ ततो देवाः सुसंतुष्टा एतासां च वरं ददुः ॥ तिसृणां च तिथीनां वै
प्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः ॥ ८ ॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः ॥ पुत्रपौत्रादिफलदा नृणां पापहानिदाः ॥ ९ ॥

[illegible] अमृत उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ और द्वादशीके दिन विष्णुभगवान् प्रभुने अमृतकी रक्षा करके त्रयोदशीके दिन हरिभगवानने देवताओंको उसका पान कराया ॥ ६ ॥ और चतुर्दशीके दिन देवताओंके विरोधी दैत्योंका नाश कर दिया. पूर्णिमाके दिन सब देवताओंको राज्यसुखकी प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ तब देवताओंने प्रसन्न होकर इन तीनों तिथियोंको प्रीतिसे प्रफुल्लित नयनसे वरदान दिया ॥ ८ ॥ ये वैशाखमासकी तीनों तिथि शुभ हैं. ये पुत्रपौत्रादि फलकी देनेवाली और मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाली

हैं ॥ ९ ॥ जो अधम नर वैशाखमासभर स्नान नहीं करै, तो इन तीन तिथियोंमें स्नान करनेसे उसको पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ इन तीन तिथियोंमें भी जो मनुष्य स्नानदान-आदि नहीं करते हैं, वे चांडालयोनिमें जन्म पाकर फिर रौरव नरकमें जाय पडते हैं ॥ ११ ॥ वैशाखमासकी इन तीन तिथियोंमें जो गरम जलसे स्नान करते हैं, वे चौदह इन्द्रपर्यन्त रौरव नरकमें जाय गिरते है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य अपने पितर और देवताओंके निमित्त दही-अन्नदान नहीं करता है, वह प्रलयकाल-

योे माधवे तु संपूर्णे न स्नातो मनुजाधम ॥ तिथित्रये तु सः स्नात्वा पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ १० ॥ तिथित्रयेऽप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः ॥ चांडालीं योनिमासाद्य पश्चाद्रौरवमश्नुते ॥ ११ ॥ उष्णोदकेन यः स्नाति माधवेऽत्यतिथित्रये ॥ रौरवं नरकं याति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १२ ॥ पितॄन् देवान् समुद्दिश्य दध्यन्नं न ददाति यः ॥ पैशाचीं योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ॥१३॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यते नात्र संशयः ॥१४॥ आ-मासं नियमाशक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमंदिरे ॥ १५ ॥ यो वै देवान् पितॄन् विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ न स्नानादि करोत्यद्धामुष्यशापप्रदा वयम् ॥ १६ ॥

पर्यन्त पिशाचकी योनिमें रहता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य नियमपूर्वक वैशाखमासके कर्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं, वे विष्णुभगवान्की सायुज्यताको प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण वैशाखमासमें नियमपूर्वक न रहकर यदि तीन दिन ( तीनौं तिथियोंमें ) स्नानदानादि करै तो उसको पूर्णमासभरका फल प्राप्त होकर विष्णुलोकमें सुख मिलता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य देव, पितर, विष्णु, गुरु इनके निमित्त स्नानदान नहीं करता है, उसको हम शाप देते हैं ॥ १६ ॥

[illegible] वह संतानहीन, आयुर्हीन, धनहीन होवे." इसप्रकार देवता वर देकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ १७ ॥ इस कारण तीनों तिथि पुण्यरूप हैं; सब पापोंका नाश करनेवाली हैं; पुष्करिणी नामसे विख्यात हैं; पुत्रपौत्रवर्द्धिनी हैं ॥ १८ ॥ जो सुभगा स्त्री वैशाखी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणको मालपुआ और खीर भोजन कराती है, वह कीर्तिमान पुत्र पाती है ॥ १९ ॥ जो इन अंतिम तीनों तिथियोंमें गीतापाठ करता है, वह दिनदिन अश्वमेध यज्ञ करनेका फल निस्सन्देह पाता है ॥ २० ॥

निःसंतानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेद्दिनि ॥ इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥ १७ ॥ तस्मात्तिथित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ अंत्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥१८॥ या नारी सुभगाऽपूपपायसं पौर्णिमादिने ॥ ब्राह्मणाय सकृद्दत्त्वा कीर्तिमंतं सुतं लभेत ॥१९॥ गीतापाठं तु यः कुर्यादंतिमे च दिनत्रये ॥ दिने दिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः ॥ २० ॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्यात् दिनत्रये ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ २१ ॥ सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् ॥ पयसा स्नाप्य वै याति विष्णुलोकमकल्मषम् ॥ २२ ॥ समस्तविभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ न तस्य लोकाः क्षीयंते युगकल्पा[illegible] ॥ २३ ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि ॥ स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥ २४ ॥

[illegible] कहनेको स्वर्ग अथवा पृथ्वीमें कोई समर्थ नहीं है ॥ २१ ॥ वैशाखी पूर्णिमाके दिन सहस्रनामका पाठ [illegible] दूधसे स्नान कराये तो वह विष्णुभगवानके लोकको जाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने संपूर्ण विभवके अनुसार उत्साहसे [illegible] पूजन करता है, तो करोडों कल्पमें भी उसके लोक क्षय नहीं होते हैं ॥ २३ ॥ जो वैशाखमासभर स्नान दान नहीं करे तो वह मनुष्य

ब्रह्मघाती, गुरुघाती तथा पितृघाती होता है ॥ २४ ॥ वैशाखमासमें जो मनुष्य श्रीमद्भागवतका एक श्लोक वा आधा श्लोक वा चौथाई श्लोक प्रतिदिन पढता है, वह ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो इन तीन दिन श्रीमद्भागवतकथा सुनता है, वह कभी पापसे लिप्त नहीं होता है; जैसे कमलपत्रपर जल नहीं ठहरता है ॥२६॥ इन तीन तिथियोमें स्नान-दानादि करनेसे, कितनेही मनुष्य देवता हो गये ! कितनेही सिद्ध हो गये और कितनेही ब्रह्मत्वको प्राप्त हो गये ! ! ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानसे अथवा प्रयागतीर्थमें

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ वैशाखे च पठन् मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते॥२५॥यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये ॥ न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवांभसा ॥२६॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतेः ॥ २८ ॥ नीलं वृषभमुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतः ॥ समस्तबंधनिर्मुक्तः पुमर्थान् याति सर्वथा ॥ २९ ॥ गां दत्वा यो द्विजेंद्राय सीदते च कुटुंबिने ॥ इहापमृत्युनिर्मुक्तः परत्र च परं व्रजेत् ॥ ३० ॥ स्नानदानविहीनस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत् ॥ श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३१ ॥

मरनेसे अथवा वैशाखमासमे नियमपूर्वक स्नान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ वैशाखमें स्नान कर जो नीले बैलको छोडता है, वह सब बंधनोसे छूट जाता है और उसको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ये चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥२९॥ जो निर्धनी और कुटुंबी ब्राह्मणको गो दान करता है, वह यहां अकालमृत्युसे छूट जाता है और परलोकमे परम पद पाता है ॥ ३० ॥ जो वैशाखी पूर्णिमाको स्नानदान विना किये व्यतीत कर देता है, वह सौवार कुत्ताकी योनि पाकर विष्ठामेका कीडा होता है ॥ ३१ ॥

तीनलोकमें साढेतीन करोड तीर्थ तीनों भुवनोंमें हैं, वे सब इकट्ठे हो सब पापोंसे शंकित होकर सम्मति करने लगे ॥ ३२ ॥ कि पापी लोग अपने किये हुये सब पाप हमारे बीचमें त्याग कर देते हैं, सो हमारे पाप किसप्रकार दूर होंगे, यह विचार कर चिंता करते हुये ॥ ३३ ॥ तीर्थपाद हरिभगवान्‌की शरणमें गये और अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति कर प्रार्थना करने लगे ॥ ३४ ॥ कि हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सब पापसमूहके नाश करनेवाले! पापी लोग हममें स्नान कर अपने सब पाप ॥ ३५ ॥ छोडकर आपके लोक (वैकुंठ) में चले जाते हैं और आपकी आज्ञाको धारण किये पृथ्वी पर हैं, हे जनार्दन ! हमारे ये पाप कैसे दूर होवेंगे ? ॥ ३६ ॥ हम आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं, इसका उपाय

तिस्रः कोट्यर्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये ॥ संभूय मंत्रयांचक्रुः पापसंघातशंकिताः ॥ ३२ ॥ जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजंति स्वकं मलम् ॥ तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिंतासमन्विताः ॥ ३३ ॥ तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम् ॥ स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरंजसा ॥ ३४ ॥ देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन ॥ जना अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥ ३५ ॥ विसृज्य त्वत्पदं यांति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि ॥ अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥ ३६ ॥ तदुपायं वदार्तानां त्वत्पादशरणैषिणाम् ॥ इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान् भूतभावनः ॥ ३७ ॥ प्रहसन् प्राह तीर्थानि मेघगंभीरया गिरा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सितपक्षे मेषसूर्ये वैशाखांते दिनत्रये ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे ॥ यूयं भगोदयात् पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः ॥ ३९ ॥

बताइये आप हमारी शरण हैं. तीर्थोंने जब इसप्रकार प्रार्थना की, तब भूतभावन भगवान् ॥ ३७ ॥ तीर्थोंके प्रति हँसते हुये मेघसमान गंभीर वाणीसे बोले. श्री भगवान् कहने लगे-हे तीर्थो! शुक्लपक्षमें वैशाखशुक्लपक्षके अंतके तीन दिन ॥ ३८ ॥ सर्वतीर्थमय पुण्यरूप हैं, हमारे भी प्राणवल्लभ हैं. इनमें तुम लोग सूर्योदयसे पहले स्नान कर प्रत्येक बाहर जल में स्नान करो ॥ ३९ ॥

सब पापोंसे छूट पुण्यरूप होकर निर्मल हो जाओ और जो पुरुष तीन दिन स्नान करेंगे उनके सब पाप छूट जायंगे; जो तीन दिन स्नान नही करेंगे उनके पाप उन मनुष्योंमें स्थित रहेंगे ॥४०॥ तीन दिन नहीं स्नान करनेवालोंमें वे पाप रहेंगे जो तुममेंसे निकल जायँगे. तीर्थ हैं चरण जिनके ऐसे विष्णुभगवान्‌ने तीर्थोंको इसप्रकार वर दिया ॥ ४१ ॥ और उनको आज्ञा देकर आप योगबलसे वहीं अंतर्धान हो गये. तब सब तीर्थ फिर अपने स्थानपर आकर प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्ष वैशाखमासके अन्तमें तीन दिन विष्णु भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार अपने अपने पापोंको छोडकर निर्मल हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ जो वैशाखके अंतके तीन दिनोंमें स्नान नहीं करते हैं, उनके आश्रय

विमुक्तावाः पुण्यरूपा भवंत्वाशु सुनिर्मलाः ॥ भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्ये न स्नाता दिनत्रये ॥ ४० ॥ तेषु तिष्ठंतु तत्पापं जनैर्युष्मद्विरेचितम् ॥ इति तीर्थपदो विष्णुस्तीर्थानां च वरं ददौ ॥ ४१ ॥ अनुज्ञाप्य च तान्योगात्तत्रैवांतरधीयत ॥ स्वधामानि पुनः प्राप्य तानि तीर्थानि नित्यशः ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्षं तु वैशाखे तथैवांत्यदिनत्रये ॥ तेनाघौघं विमुच्यैव यांति निर्मलतामहो ! ॥ ४३ ॥ ये तु स्नानं न कुर्वंति वैशाखांत्यदिनत्रये ॥ ते भवंतु समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥ ४४ ॥ इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां ददाति च ॥ न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥ ४५ ॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥ ४६ ॥ अन्यथा नरकं याति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते ! महामते ॥ ४७ ॥

सब मनुष्योंके पातक आकर ठहर जाते हैं ॥ ४४ ॥ स्नान करनेवालोंकी तीर्थ इसप्रकार शाप देते हैं. उसके समान कोई पापी नहीं है जो तीन दिन स्नान नहीं करता है ॥ ४५ ॥ शास्त्रोंमें विचार करनेसे उसके समान पापी न देखा है और न सुना है. इसकारण इन तीन दिनोंमें स्नानदान आदिक और पूजन करना उचित है ॥ ४६ ॥ नहीं करनेसे मनुष्य चौदह इन्द्र ( मन्वन्तर ) पर्यन्त नरकमें रहता है. इसप्रकार यह वैशाखमाहात्म्य, महात्मा श्रुतकीर्तिने भली भांति वर्णन किया ॥ ४७ ॥

वैशाखका माहात्म्य देखा, जो जैसा देखा और जैसा सुना, तदनुसार वैशाखका माहात्म्य वर्णन किया है ॥ ४८ ॥ इस माहात्म्यको पूर्ण रीतिसे वर्णन करनेको सौवर्षपर्यन्त ब्रह्माजीमें भी सामर्थ्य नहीं है. पूर्वसमय कैलासके शिखरपर पार्वतीजीने साक्षात् महादेवसे ॥ ४९ ॥ वैशाखमाहात्म्य पूछनेपर शिवजीने सौवर्षपर्यन्त वर्णन किया, तबभी अंत नहीं हुआ; तब असमर्थ होकर शिवजी मौन हो रहे ॥ ५० ॥ विष्णु, जगन्नाथ, अनामय नारायणके विना कोईभी संपूर्ण वैशाखमासका उत्तम माहात्म्य वर्णन करनेको समर्थ 

दृष्टं वैशाखमाहात्म्यं यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ माहात्म्यस्य च लेशोऽयं माधवस्य च वर्णितः ॥ ४८ ॥ कार्त्स्न्याद्वक्तुं ब्रह्मणापि नालं वर्षशतैरपि ॥ पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शंकरः स्वयम् ॥ ४९ ॥ प्राह माधवमाहात्म्यं पृच्छत्यै शतवत्सरम् ॥ तत्रापि नांतमगमदशक्तो विरराम ह ॥ ५० ॥ को नु वर्णयितुं शक्तः कार्त्स्न्यान्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ५१ ॥ पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ लेशस्य लेशं व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥ ५२ ॥ नांतं केनापि व्याख्यातं ह्यशक्तत्वान्महीपते ॥ त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥५३॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्नोषि न संशयः ॥ इति तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकान्वयम् ॥ ५४ ॥ श्रुतदेवस्तमामंत्र्य गंतुं चक्रे मनोगतिम् ॥ जाताल्हादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ ५५ ॥ 

नहीं है ॥ ५१ ॥ पूर्वसमय सब ऋषियोंने इस पापनाशक माहात्म्य मनुष्योंके हितकी कामनासे थोडा थोडा वर्णन किया है ॥ ५२ ॥ परन्तु हे महीपते ! कोईभी कहनेमें समर्थ नहीं हुआ. तुम वैशाखमासमें स्नानदान आदि सत्कर्मोंको करो ॥ ५३ ॥ इससे निस्सन्देह भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होवेगी इसमें संशय नहीं है " इसप्रकार मिथिलापति राजा जनकको समझाय॥५४॥श्रुतदेवजी राजासे पूँछकर जानेका विचार करते भये. तब राजा आल्हादसे युक्त हो गया. उसका कंठ रुक गया, नेत्रोंसे जल बहने लगा॥५५॥

फिर अपनी अभिवृद्धिके अर्थ सुन्दर उत्सव करने लगा. गाँवकी प्रदक्षिणा कर श्रुतदेवजीको पालकीमें बिठाकर॥५६॥ चतुरंगिणी सेनाके साथ भेजता हुआ; पीछे पीछे आपभी चला. गाँवकी प्रदक्षिणा करानेउपरांत अंतःपुरमें ले जाकर अपने सब विभवके अनुसार ॥ ५७ ॥ वस्त्र, अलंकार, गो, पृथ्वी, तिल, सुवर्ण आदि भेंट रख प्रणामपूर्वक परिक्रमा कर हाथ जोड मुनिके आगे खडा हुआ ॥ ५८ ॥ तब महातेजवान् महायशस्वी श्रुतदेवजी प्रसन्न हो परमप्रीतिपूर्वक अपने धामको पधारे ॥ ५९ ॥ नारदजी बोले

उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनस्ततः ॥ ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिबिकामधिरोप्य तम् ॥ ५६ ॥ चतुरंगबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथान्वगात् ॥ पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥ ५७ ॥ वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः ॥ प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥ ५८ ॥ ततः स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः ॥ संतुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ इत्येतत्परमाख्यानमंबरीष तवोदितम् ॥ श्रवणात् सर्वपापघ्नं सर्वसंपद्विधायकम् ॥ ६० ॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दति ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा अंबरीषो महायशाः ॥ ६१ ॥ प्रहृष्टांतरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः ॥ प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दंडवत्पतितो भुवि ॥ ६२ ॥

“ हे राजा अंबरीष ! यह उत्तम आख्यान मैंने तुमारे आगे वर्णन किया; इसके सुननेसे सब पाप दूर हो जातेहैं और सब प्रकारकी संपदा प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ इससे भुक्ति, मुक्ति और ज्ञान तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है.” नारद मुनिका यह वचन सुनकर महायशस्वी राजा अंबरीष ॥६१॥ मनमें ऐसा प्रसन्न हुआ कि बाहरके सब व्यापार

एक गये अर्थात् वैसी श्रुति मुनि ज्ञानी रही. इसतरह भूमिपर गिर शिरसे प्रणाम करता हुआ ॥ ६२ ॥ फिर सब प्रकारके ऐश्वर्यवाले पदार्थोंसे श्रीनारदजीका पूजन किया. पूजित होकर राजासे पूछ भगवान् नारद मुनि ॥ ६३ ॥ दूसरे लोकको पधारे. क्योंकि, शापके कारण वह एक स्थानपर नहीं ठहर सकते हैं. राजर्षि अंबरीषभी नारदजीके कहे हुये इन शुभ धर्मोंको करते हुये निर्गुणब्रह्ममें लीन हो गये ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले "जो इस पापनाशक पुण्यवर्द्धक परम अद्भुत आख्यानको सुनता है, वा पढता है

विप्रैर्वसलिलैश्चापि पूजयामास तं पुनः ॥ संपूजितस्तमामंत्र्य नारदो भगवान् मुनिः ॥ ६३ ॥ लोकान्तरं ययौ धीमान् शापान्नैकत्र संस्थितिः ॥ अंबरीषोऽपि राजर्षिर्नारदोक्तानिमान् शुभान् ॥ धर्मान् कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ॥ ६४ ॥ सूत उवाच ॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ६५ ॥ लिखितं पुस्तकं येषां गृहे तिष्ठति मानद ॥ तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे फलश्रुतिकथनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ इति वैशाखमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥ ॥

वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ हे मानद! जिनके घरमें लिखी हुई पुस्तक रहती है, उनके हाथमें मुक्ति होती है। सुननेसे तो फिर कहनाही क्या है अर्थात् इस आख्यानको सुननेसे मोक्ष होनेमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६६ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदांबरीषसंवादे [illegible] भाषाटीकायां फलश्रुतिकथनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ इति भाषाटीकासमन्वितं वैशाखमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥ शुभम् ॥ मंगलमस्तु ॥



Printed by [illegible] at [illegible] Press, Girgaon [illegible] House No. 9 Bombay. Published by [illegible] for [illegible] Bombay.

इदं पुस्तकं

पंडित ब्रजवल्लभ हरिप्रसाद

इत्येतैः

मोहमय्यां 'जगदीश्वर' मुद्रणालये मुद्रापयित्वा

हरिप्रसाद भगीरथजी ( प्राचीन पुस्तकालय, काल्कादेवीरोड—मुंबई )

इत्यस्मिस्थले प्रकाशितम् ।

संवत् १९७१ सन १९१५.

। इति भाषाटीकासहितं वैशाखमाहात्म्यं समाप्तम् ॥